अप्रैल-जून, 2017 [संयुक्तांक]

उच्चतम न्यायालय निर्णय पत्रिका

प्रधान संपादक
डा. मिथिलेश चन्द्र पांडेय

संपादक
विनोद कुमार आर्य

महत्वपूर्ण निर्णय

संविधान, 1950 – अनुच्छेद 15(1) और 51क(ङ) [सपठित दंड संहिता, 1860 की धारा 153क, 153ख और 505(2)] – मूलवंशीय विभेद – जन्म-स्थान और निवास-स्थान के आधारों पर विभिन्न समूहों के बीच शत्रुता फैलाना – उत्तर-पूर्व राज्य के नागरिकों के विरुद्ध देश के विभिन्न भागों और महानगरों में मूलवंशीय छेड़छाड़ और उत्पीड़न की घटनाओं पर उच्चतम न्यायालय द्वारा गंभीरता से विचार किया गया और केंद्रीय सरकार तथा राज्य सरकारों को एम. पी. बेजबरुआ समिति की रिपोर्ट के क्रियान्वयन पर मार्ग-दर्शक सिद्धांत जारी किए गए ।

कर्मा दोरजी और अन्य बनाम **भारत संघ और अन्य** 156

संसद् के अधिनियम

पर्यावरण संरक्षण अधिनियम, 1986 का हिन्दी में प्राधिकृत पाठ (1) – (16)

पृष्ठ संख्या 1 – 197 **[2017] 2 उम. नि. प.**

विधि साहित्य प्रकाशन
विधायी विभाग
विधि और न्याय मंत्रालय
भारत सरकार

उच्चतम न्यायालय निर्णय पत्रिका – अप्रैल-जून, 2017 [संयुक्तांक] [पृष्ठ संख्या 1 – 197]

संपादक-मंडल

डा. जी. नारायण राजू,
सचिव, विधायी विभाग

डा. रीटा वशिष्ठ, अपर सचिव,
विधायी विभाग

डा. बी. एन. मणि,
सेवानिवृत्त अपर विधि सलाहकार,
विधि मंत्रालय

डा. सुरेन्द्र कुमार शर्मा, प्रिन्सिपल,
विधि विभाग, डी आई आर डी, गुरु
गोविंद सिंह इन्द्रप्रस्थ विश्वविद्यालय

डा. ऋषिपाल सिंह,
सेवानिवृत्त संयुक्त सचिव एवं विधायी
परामर्शी, राजभाषा खंड

श्री कृष्ण गोपाल अग्रवाल,
सेवानिवृत्त संपादक, वि.सा.प्र.

डा. अनुराग दीप,
एसोसिएट प्रोफेसर,
भारतीय विधि संस्थान

डा. मिथिलेश चन्द्र पांडेय,
प्रधान संपादक

श्री विनोद कुमार आर्य,
संपादक

श्री कमला कान्त,
संपादक

श्री अविनाश शुक्ला,
संपादक

सहायक संपादक : सर्वश्री असलम खान और पुण्डरीक शर्मा

उप-संपादक : सर्वश्री महीपाल सिंह और जसवन्त सिंह

कीमत : डाक-व्यय सहित

एक प्रति : ₹ 57

वार्षिक : ₹ 225

© 2017 भारत सरकार, विधि और न्याय मंत्रालय

प्रकाशन और विक्रय प्रबंधक, विधि साहित्य प्रकाशन, विधि और न्याय मंत्रालय (विधायी विभाग), भगवानदास मार्ग, नई दिल्ली-110001 द्वारा प्रकाशित तथा.................................. द्वारा मुद्रित ।

उच्चतम न्यायालय निर्णय पत्रिका

अप्रैल-जून, 2017

निर्णय-सूची

पृष्ठ संख्या

ए. सत्यनारायण रेड्डी और अन्य **बनाम** पीठासीन अधिकारी, श्रम न्यायालय और अन्य 75

कर्मा दोरजी और अन्य **बनाम** भारत संघ और अन्य 156

गिरीश रघुनाथ मेहता **बनाम** सीमा-शुल्क निरीक्षक और एक अन्य 41

जमनादास **बनाम** मध्य प्रदेश राज्य 1

दोकीसीला रामुलू **बनाम** अरि संगमेश्वर स्वामी वारू और अन्य 132

धारीवाल इंडस्ट्रीज लिमिटेड **बनाम** किशोर वधवानी और अन्य 29

पंकज **बनाम** राजस्थान राज्य 49

यूको बैंक और एक अन्य **बनाम** दीपक देव बर्मा और अन्य 114

राष्ट्रीय दलित मानव अधिकार अभियान और अन्य **बनाम** भारत संघ और अन्य 174

लोक प्रहरी, इसके महासचिव एस. एन. शुक्ला के माध्यम से **बनाम** उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य 93

शासुन केमिकल्स एंड ड्रग्स लि. (मैसर्स) **बनाम** आय-कर आयुक्त, चेन्नई 61

संसद् के अधिनियम

पर्यावरण संरक्षण अधिनियम, 1986 का हिन्दी में प्राधिकृत पाठ 1 – 16

विषय-सूची

पृष्ठ संख्या

आंध्र प्रदेश (आंध्र क्षेत्र) संपदा (उत्सादन और रैयतवाड़ी में संपरिवर्तन) अधिनियम, 1948

– धारा 3 और 11 [सपठित आंध्र प्रदेश चेरिटेबल एंड हिंदू रिलिजियस इंस्टीट्यूशन्स एंड इंडोमेंट ऐक्ट, 1987 की धारा 82] – राज्य सरकार द्वारा अधिसूचना जारी करके गांव की कतिपय भूमि ग्रहण किया जाना – अधिसूचना की तारीख के बहुत पहले से अपीलार्थी और उसके पूर्वजों का भूमि पर जोत अभिधारी होना – अधिसूचना के परिणामस्वरूप भूमिधारक और जोत अभिधारी के संबंध समाप्त हो जाना – जोत अभिधारी धारा 11 के अनुसार रैयतवाड़ी पट्टे का हकदार होना – चूंकि अपीलार्थी को साक्ष्य के आधार पर रैयतवाड़ी पट्टे का हकदार पाया गया था और प्रत्यर्थी 1987 के अधिनियम की धारा 82 का फायदा लेने के हकदार नहीं थे, अतः उच्च न्यायालय द्वारा अपनाया गया मत उचित नहीं है ।

दोकीसीला रामुलू बनाम **अरि संगमेश्वर स्वामी वारू और अन्य** 132

आय-कर अधिनियम, 1961 (1961 का 43)

– धारा 35घ – निर्धारिती कंपनी द्वारा अपनी विद्यमान इकाइयों का विस्तार – पूंजी व्यय की पूर्ति के लिए शेयरों का निर्गमन किया जाना – उपगत व्यय के क्रमिक अपाकरण का दावा किया जाना – निर्धारण अधिकारी द्वारा 10 वर्षों की ब्लाक अवधि के प्रथम दो निर्धारण वर्षों में कटौती का फायदा मंजूर किया जाना – पश्चात्‌वर्ती वर्षों में कटौती से इनकार किया जाना – प्रथम दो निर्धारण वर्षों में उन्हीं उपबंधों के अधीन फायदा मंजूर किए जाने के पश्चात्‌ इसे पश्चात्‌वर्ती निर्धारण वर्षों

पृष्ठ संख्या

में नामंजूर नहीं किया जा सकता था ।

शासुन केमिकल्स एंड ड्रग्स लि. (मैसर्स) बनाम **आय-कर आयुक्त, चेन्नई** 61

– धारा 36, 40क(9) और 43ख – निर्धारिती कंपनी द्वारा न्यास के माध्यम से अपने कर्मकारों को बोनस का संदाय किया जाना – कंपनी द्वारा कटौती का दावा किया जाना – बोनस का संदाय प्रत्यक्ष रूप से नकद में न करने के आधार पर निर्धारण अधिकारी द्वारा दावा नामंजूर किया जाना – बोनस के रूप में संदाय किया गया व्यय धारा 36(1) के खंड (ii) के अधीन कटौती के लिए अनुज्ञेय है और धारा 43ख और 40क(9) की रोक इसके आड़े नहीं आती है, अतः उच्च न्यायालय ने निर्धारिती की कारबार से आय की गणना करते समय इस व्यय को कटौती के रूप में नामंजूर करके गलती की है ।

शासुन केमिकल्स एंड ड्रग्स लि. (मैसर्स) बनाम **आय-कर आयुक्त, चेन्नई** 61

औद्योगिक विवाद अधिनियम, 1947 (1947 का 14)

– धारा 2(ग)(ध), धारा 10 और धारा 33ग(2) – कामबंदी प्रतिकर – स्वैच्छिक सेवानिवृत्ति योजना – कर्मकार का नियोजक से धन या ऐसी प्रसुविधा जो धन के रूप में संगणित की जा सकती है प्राप्त करने का हक – यद्यपि स्वैच्छिक सेवानिवृत्ति योजना में नियोजक और नियोक्ता के संबंध समाप्त हो जाते हैं किन्तु यदि इस योजना के अन्तर्गत पूर्ववर्ती कानूनी देयों जैसेकि कामबंदी प्रतिकर, निर्वाह भत्ता इत्यादि को सम्मिलित नहीं किया जाता तो कर्मकार श्रम न्यायालय की शरण में जाने का हकदार होगा ।

ए. सत्यनारायण रेड्डी और अन्य बनाम **पीठासीन अधिकारी, श्रम न्यायालय और अन्य** 75

पृष्ठ संख्या

दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 (1974 का 2)

– धारा 302 और 301 – अभियोजन चलाने की अनुज्ञा – मजिस्ट्रेट के पास स्वतंत्र रूप से अभियोजन चलाने के लिए परिवादी को अनुज्ञा देने की शक्ति है – धारा 301 के अधीन इत्तिला देने वाले या प्राइवेट पक्षकार की अभियोजन चलाने की भूमिका सेशन विचारण के समक्ष सीमित है – धारा 302 का फायदा लेने के लिए परिवादी को लिखित आवेदन फाइल करना चाहिए ।

धारीवाल इंडस्ट्रीज लिमिटेड बनाम **किशोर वधवानी और अन्य** 29

दंड संहिता, 1860 (1860 का 45)

– धारा 300 [सपठित आयुध अधिनियम, 1959 की धारा 25 और भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1872 की धारा 32] – अपीलार्थी-अभियुक्त द्वारा मृतक की अभिकथित रूप से अत्यंत नजदीक से गोली मारकर हत्या – हेतु का अभाव – मृतक द्वारा किया गया मृत्युकालिक कथन संदेहास्पद होने, गोली चलाने की दूरी के विषय में इत्तिलाकर्ता तथा डाक्टर के कथनों में तात्विक विरोधाभास होने तथा हेतु के अभाव में अभियुक्त संदेह का फायदा प्राप्त करने का हकदार है और उसे दोषमुक्त करना उचित होगा ।

पंकज बनाम **राजस्थान राज्य** 49

– धारा 302 [सपठित धारा 34, 304ख और 498क] – दहेज मृत्यु – नवविवाहिता की विवाह के छह मास के भीतर जघन्य हत्या – मृतका की घर के अंदर हत्या की गई और उसके शरीर को पार्क में फेंक दिया गया – मामले के तथ्यों और परिस्थितियों से यह साबित होता है कि अपीलार्थी और दो अन्य अभियुक्तों का विवाहिता की

पृष्ठ संख्या

जघन्य हत्या करने का सामान्य आशय था और सभी अभियुक्तों ने मिलकर नवविवाहिता की हत्या कारित की, अतः सभी दोषसिद्ध व्यक्ति धारा 302/34 के अधीन आजीवन कारावास और जुर्माने से दंडित किए जाने के दायी हैं ।

जमनादास बनाम **मध्य प्रदेश राज्य** 1

संविधान, 1950

– अनुच्छेद 15, 17, 46, 338 और 338क [सपठित अस्पृश्यता (अपराध) अधिनियम, 1955 की धारा 3 से 7 और अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति (अत्याचार निवारण) अधिनियम, 1989 की धारा 14 तथा अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति (अत्याचार निवारण) नियम, 1955 का नियम 3, 8, 9, 10, 15(1), 16 और 17] – अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति के अधिकारों का प्रवर्तन – केंद्रीय सरकार और राज्य सरकारों का यह दायित्व है कि वह उपरोक्त अधिनियम के प्रभावी क्रियान्वयन के लिए समुचित उपाय करें और अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति के सभी सदस्यों को समता के संवैधानिक अधिकार का संरक्षण प्रदान करें, अतः केंद्रीय सरकार, राज्य सरकारों तथा राष्ट्रीय आयोगों को अधिनियम के उपबंधों का कठोर अनुपालन सुनिश्चित करने तथा अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति को संरक्षित करने के अपने कर्तव्यों का निर्वहन करने का निदेश दिया जाता है ।

राष्ट्रीय दलित मानव अधिकार अभियान और अन्य बनाम **भारत संघ और अन्य** 174

– अनुच्छेद 15(1) और 51क(ङ) [सपठित दंड संहिता, 1860 की धारा 153क, 153ख और 505(2)] – मूलवंशीय विभेद – जन्म-स्थान और निवास-स्थान के आधारों

पृष्ठ संख्या

पर विभिन्न समूहों के बीच शत्रुता फैलाना – उत्तर-पूर्व राज्य के नागरिकों के विरुद्ध देश के विभिन्न भागों और महानगरों में मूलवंशीय छेड़छाड़ और उत्पीड़न की घटनाओं पर उच्चतम न्यायालय द्वारा गंभीरता से विचार किया गया और केंद्रीय सरकार तथा राज्य सरकारों को एम. पी. बेजबरुआ समिति की रिपोर्ट के क्रियान्वयन पर मार्ग-दर्शक सिद्धांत जारी किए गए ।

कर्मा दोरजी और अन्य बनाम **भारत संघ और अन्य** 156

– अनुच्छेद 132, 246, 254 और सातवीं अनुसूची की सूची I की प्रविष्टि 45 तथा सूची II की प्रविष्टि 18 और 45 [सपठित वित्तीय आस्तियों का प्रतिभूतिकरण और पुनर्गठन तथा प्रतिभूति हित का प्रवर्तन अधिनियम, 2002 की धारा 13 तथा त्रिपुरा भूमि राजस्व और भूमि सुधार अधिनियम, 1960 की धारा 187] – विधायी शक्तियों का बंटवारा – संसद् और राज्य विधान-मंडल द्वारा एक दूसरे की शक्तियों का अधिक्रमण करते हुए एक ही विषय पर विधान बनाना – संसद् की विधि का अधिष्ठायी प्रभाव होना – यदि संयोगवश राज्य विधान-मंडल और संसद् अपनी-अपनी विधायी शक्तियों का प्रयोग करते हुए एक ही विषय पर कोई विधि बनाते हैं तो संसद् द्वारा बनाई गई विधि ही प्रवर्तित होगी और राज्य विधान-मंडल की विधि विरोध और असंगतता की मात्रा तक शून्य और अविधिमान्य होगी ।

यूको बैंक और एक अन्य बनाम **दीपक देव बर्मा और अन्य** 114

– अनुच्छेद 243यघ [सपठित उत्तर प्रदेश योजना और विकास अधिनियम, 1999] – विधायक निधि स्कीम का क्रियान्वयन – विधायक निधि स्कीम स्वतः अनुच्छेद 243यघ और उत्तर प्रदेश योजना और विकास अधिनियम,

पृष्ठ संख्या

1999 का अतिक्रमण नहीं करती, अतः भीम सिंह वाले मामले में संविधान न्यायपीठ द्वारा अधिकथित मार्गदर्शक सिद्धांतों के साथ स्थानीय स्वशासन की संस्थाओं के सहयोग और समर्थन से निर्वाचित प्रतिनिधियों को अपनी पूरक भूमिका का पालन करना चाहिए ।

लोक प्रहरी, इसके महासचिव एस. एन. शुक्ला के माध्यम से बनाम **उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य** 93

स्वापक ओषधि और मन:प्रभावी पदार्थ अधिनियम, 1985 (1985 का 61)

– धारा 8, 15, 42 और 67 – अपीलार्थी द्वारा विनिषिद्ध पदार्थ-पोस्त तृण की वाणिज्यिक मात्रा का सह-अभियुक्त को अनुज्ञप्ति के बिना विक्रय किया जाना – विक्रय के पश्चात् क्रेता-सह-अभियुक्त से खुले स्थान में विनिषिद्ध पदार्थ की बरामदगी – अपीलार्थी द्वारा विनिषिद्ध पदार्थ का विक्रय किए जाने के संबंध में संस्वीकृति कथन करने, विक्रय के तुरंत पश्चात् विनिषिद्ध पदार्थ की बरामदगी होने तथा रसायन परीक्षक की रिपोर्ट के आधार पर निचले न्यायालयों द्वारा की गई अभियुक्त की दोषसिद्धि उचित है और हस्तक्षेप करने की आवश्यकता नहीं है ।

गिरीश रघुनाथ मेहता बनाम **सीमा-शुल्क निरीक्षक और एक अन्य** 41

तुलनात्मक सारणी
उच्चतम न्यायालय निर्णय पत्रिका

[2017] 2 उम. नि. प.

अप्रैल-जून, 2017

क्र. सं.	निर्णय का नाम व तारीख	उम. नि. प.	ए. आई. आर. (एस. सी.)	एस. सी. सी.
1	2	3	4	5
1.	जमना दास **बनाम** मध्य प्रदेश राज्य (29 जून, 2016)	[2017] 2 1	2016 3270	(2016) 13 12
2.	धारीवाल इंडस्ट्रीज लिमिटेड **बनाम** किशोर वधवानी और अन्य (6 सितंबर, 2016)	29	4369	10 738
3.	गिरीश रघुनाथ मेहता **बनाम** सीमा-शुल्क निरीक्षक और एक अन्य (7 सितंबर, 2016)	41	4317	- -
4.	पंकज **बनाम** राजस्थान राज्य (9 सितंबर, 2016)	49	4150	- -
5.	शासुन केमिकल्स एंड ड्रग्स लि. (मैसर्स) **बनाम** आय-कर आयुक्त, चेन्नई (16 सितंबर, 2016)	61	4435	- -
6.	ए. सत्यनारायण रेड्डी और अन्य **बनाम** पीठासीन अधिकारी, श्रम न्यायालय और अन्य (30 सितंबर, 2016)	75	4556	9 462

1	2	3	4	5
7.	लोक प्रहरी, इसके महासचिव एस. एन. शुक्ला के माध्यम से **बनाम** उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य (21 नंवबर, 2016)	[2017] 2 93	2016 3537	(2016) 8 389
8.	यूको बैंक और एक अन्य **बनाम** दीपक देव बर्मा और अन्य (25 नवंबर, 2016)	114	-	(2017) 2 585
9.	दोकीसीला रामुलू **बनाम** अरि संगमेश्वर स्वामी वारू और अन्य (29 नवंबर, 2016)	132	-	2 69
10.	कर्मा दोरजी और अन्य **बनाम** भारत संघ और अन्य (14 दिसंबर, 2016)	156	2017 113	1 799
11.	राष्ट्रीय दलित मानव अधिकार अभियान और अन्य **बनाम** भारत संघ और अन्य (15 दिसंबर, 2016)	174	-	2 432

[2017] 2 उम. नि. प. 1

जमनादास

बनाम

मध्य प्रदेश राज्य

29 जून, 2016

न्यायमूर्ति प्रफुल्ल सी. पंत और न्यायमूर्ति (डा.) डी. वाई. चंद्रचूड़

दंड संहिता, 1860 (1860 का 45) – धारा 302 [सपठित धारा 34, 304ख और 498क] – दहेज मृत्यु – नवविवाहिता की विवाह के छह मास के भीतर जघन्य हत्या – मृतका की घर के अंदर हत्या की गई और उसके शरीर को पार्क में फेंक दिया गया – मामले के तथ्यों और परिस्थितियों से यह साबित होता है कि अपीलार्थी और दो अन्य अभियुक्तों का विवाहिता की जघन्य हत्या करने का सामान्य आशय था और सभी अभियुक्तों ने मिलकर नवविवाहिता की हत्या कारित की, अतः सभी दोषसिद्ध व्यक्ति धारा 302/34 के अधीन आजीवन कारावास और जुर्माने से दंडित किए जाने के दायी हैं ।

अभियोजन वृत्तांत संक्षेप में इस प्रकार है कि तारीख 16 सितंबर, 2006 को लगभग 7.50 बजे अपराह्न में कांस्टेबल निर्मल कुमार पाटिल को पुलिस नियंत्रण कक्ष में टेलीफोन पर एक सूचना प्राप्त हुई कि एक औसत आयु की महिला स्कूटी पर आई और उसने बिस्तर की चादरों में लिपटे हुए दो पुलिंदे सेवा राम गीलानी गार्डन, पटेल नगर, इंदौर में फेंके और यह कि उन पुलिंदों पर रक्त के धब्बे दिखाई दे रहे थे । टेलीफोन पर दी गई इस सूचना के आधार पर प्रदर्श पी-33 नियंत्रण कक्ष पर अभिलिखित किया गया । 5 मिनट के भीतर लगभग 7.55 बजे अपराह्न में, यह सूचना संबद्ध पुलिस थाना जूनी को भेज दी गई और इस संबंध में सूचना प्रदर्श पी-34 अभिलिखित की गई । देहाती मर्ग संसूचना के पश्चात् प्रदर्श पी-1 की प्रविष्टि की गई, हेड कांस्टेबल अशरफ अली पुलिस थाने से कांस्टेबल मोहम्मद एम. अहमद को साथ लेकर घटनास्थल की ओर रवाना हुआ । उसी दिन सायंकाल में पूछताछ की गई जिसके दौरान मुकेश जयसवाल ने यह बताया कि उस दिन अर्थात् 16 सितंबर, 2006 को

लगभग 5.30 बजे अपराह्न में रोजाना की भांति वह मंदिर गया था और मनोहर **उर्फ** मन्नू, उधर दास और नारायण के साथ बैठा हुआ था । उन्होंने फुग्गा **उर्फ** कमल को दूध लाने के लिए भेजा और थोड़ी देर बाद फुग्गा **उर्फ** कमल वापस आया और उन्होंने बताया कि पगडंडी के निकट पार्क में एक पैकेट पड़ा हुआ है जिस पर रंगीन बिस्तर की चादर लिपटी हुई है, उस पैकेट पर रक्त के धब्बे दिखाई दे रहे हैं । उपरोक्त चारों व्यक्ति फुग्गा के साथ उस स्थान की ओर गए और उन्होंने रक्त-रंजित पुलिंदा देखा । इसके तत्काल पश्चात् उन्होंने एक्टिवा स्कूटर पर आती हुई एक महिला को देखा जिसने एक अन्य पैकेट फेंका और चली गई । इस पर टेलीफोन द्वारा नियंत्रण कक्ष को सूचना दी गई । इसके पश्चात् उप-निरीक्षक मोहन लाल पुरोहित द्वारा मृत्यु समीक्षा की गई जिसने अज्ञात व्यक्तियों के विरुद्ध अगले दिन 17 सितंबर, 2006 को 2006 की अपराध सं. 431 के अनुसार मामला दर्ज किया । मृतका के चचेरे भाई संजय छावड़ा द्वारा मृतका के शव की शनाख्त की गई कि वह भूमि **उर्फ** ऋचा का है और इसके पश्चात् लगभग दोपहर के समय तारीख 17 सितंबर, 2006 को ही पुलिस द्वारा मृत्यु समीक्षा रिपोर्ट प्रदर्श पी-6 तैयार की गई । शव शवपरीक्षण के लिए मोहर-बंद करके भेज दिया गया । इसके पश्चात्, अपीलार्थी के घर अर्थात् 40, सर्वोदय नगर, इंदौर की तलाशी ली गई । अन्वेषण के दौरान अपीलार्थियों के मकान में रक्त के धब्बे पाए गए । रक्त के नमूने लिए गए और तलाशी ज्ञापन प्रदर्श पी-54, पी-56 और पी-57 सुरेश नीमा और रमेश नाम के व्यक्ति की मौजूदगी में तैयार किए गए । सिल्वर रंग का एक एक्टिवा स्कूटर जिसका रजिस्ट्रेशन नं. एम पी 09/जे एक्स-7556 भी अभिगृहीत किया गया । अन्वेषण से यह प्रकट होता है कि भूमि **उर्फ** ऋचा (मृतका) अर्थात् राजेश कुमार नचानी की पुत्री का विवाह इंदौर में 22 अप्रैल, 2006 को अपीलार्थी मनोज के साथ हुआ था जिसके पश्चात् वह 40, सर्वोदय नगर अपने पति मनोज, श्वसुर, सास, देवर और अप्राप्तवय (ननद हीना **उर्फ** माधुरी) के साथ रहने लगी । अन्वेषण के पशचात् चारों अभियुक्तों अर्थात् मनोज (पति), जमनादास (श्वसुर), धनवंतरी (सास) और विशाल (देवर) के विरुद्ध दंड संहिता की धारा 302 (सपठित धारा 34), 201, 304ख और 498क के अधीन दंडनीय अपराधों के लिए विचारण किए जाने हेतु आरोप पत्र फाइल किया गया । उपरोक्त सभी अपराधों के लिए प्रथम तीन अभियुक्तों के विरुद्ध आरोप विरचित किए जाने के लिए मजिस्ट्रेट द्वारा यह मामला सेशन न्यायालय को सुपुर्द कर दिया गया जहां पर विचारण न्यायालय ने प्रथम तीन अभियुक्तों के विरुद्ध सभी अपराधों के लिए आरोप

विरचित किए । अभियुक्त विशाल के विरुद्ध आरोप केवल दंड संहिता की धारा 201 के अधीन दंडनीय अपराध के लिए विरचित किया गया । सभी अभियुक्तों ने दोषी न होने का अभिवाक् किया और विचारण किए जाने का दावा किया । विचारण न्यायालय ने पक्षकारों को सुनने के पश्चात् यह निष्कर्ष निकाला कि अभियुक्त विशाल (मृतका का देवर) के विरुद्ध यह आरोप कि वह अपराध में शामिल था, युक्तियुक्त संदेह के परे साबित नहीं किया गया, इसलिए उसे दोषमुक्त कर दिया गया । विचारण न्यायालय ने शेष तीनों अभियुक्तों अर्थात् धनवंतरी, जमनादास और मनोज को दंड संहिता की धारा 34 के साथ पठित धारा 302 के अधीन दंडनीय अपराध के लिए सामान्य आशय और हत्या के संबंध में दोषी पाया और उन्हें तद्नुसार दोषसिद्ध किया । अभियुक्त धनवंतरी को हत्या का साक्ष्य मिटाने के अपराध के लिए दंड संहिता की धारा 201 के अधीन भी दोषसिद्ध किया गया । दंडादेश पर विचार करने के पश्चात् छठे अपर सेशन न्यायाधीश, इंदौर ने अपने तारीख 24 अगस्त, 2009 के आदेश के अनुसार प्रत्येक अभियुक्त को दंड संहिता की धारा 302/34 के अधीन आजीवन कारावास के लिए दंडादिष्ट किया और 5,000/- रुपए जुर्माने का संदाय करने का भी निदेश दिया । यह भी निदेश दिया कि जुर्माने के संदाय में व्यतिक्रम करने पर दोषसिद्ध व्यक्तियों को अतिरिक्त एक वर्ष का कठोर कारावास भोगना है । दोषसिद्ध धनवंतरी को दंड संहिता की धारा 201 के अधीन दंडनीय अपराध के लिए 5,000/- रुपए के जुर्माने के साथ तीन वर्ष का कठोर कारावास भोगने और जुर्माने के संदाय में व्यतिक्रम किए जाने पर अतिरिक्त तीन मास का कठोर कारावास भोगने का दंडादेश दिया गया । इस अभियुक्त को अन्य अपराधों के लिए लगाए गए आरोपों से दोषमुक्त कर दिया । तीनों दोषसिद्ध किए गए व्यक्तियों ने उच्च न्यायालय के समक्ष अलग-अलग अपीलें फाइल कीं और उनकी सुनवाई एक साथ की गई तथा तारीख 23 अगस्त, 2012 के एक ही निर्णय और आदेश द्वारा उनका निपटारा किया गया और यही आदेश इन अपीलों में आक्षेपित है । उच्च न्यायालय के इस एक ही निर्णय और आदेश के विरुद्ध उच्चतम न्यायालय में अपील कीं । उच्चतम न्यायालय द्वारा अपीलें खारिज करते हुए,

अभिनिर्धारित – शवपरीक्षण रिपोर्ट से यह प्रतीत होता है कि घटना दिन में किसी समय पर घटित हुई है और अपीलार्थियों का उनके कार्यस्थल पर मौजूद होना स्वाभाविक है और यह बात परमानन्द शर्मा के कथन से भी स्पष्ट हो जाती है जिसने यह बताया था कि अपीलार्थी तारीख 16 सितंबर, 2006 को 9.30 बजे पूर्वाह्न से 7.30 बजे अपराह्न तक दुकान पर थे ।

यह दलील दी गई है कि मुकेश जयसवाल, नारायण, उधर दास और मनोहर **उर्फ** मन्नू ने यह कथन किया है कि यह वही महिला थी जो बंडल लेते हुए और उसे पटेल नगर, इंदौर के निकट स्थित सेवा राम गीलानी गार्डन में फेंकते हुए देखी गई थी । किंतु वर्तमान अपीलार्थियों के विरुद्ध उनके साक्ष्य में कोई सामग्री नहीं है । निःसंदेह, जैसाकि वर्तमान मामले में अभिलेख पर साबित किया गया है कि मृतका की हत्या घर के अंदर की गई है और उसका शव पार्क में फेंका गया है और वह अपने नातेदार के यहां जाने के पश्चात् घर से लापता नहीं हुई थी जैसाकि अपीलार्थियों द्वारा दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 313 के अधीन उनके कथन में अभिवाक् किया गया था । अपीलार्थियों ने पूर्णतया मिथ्या अभिवाक् किया है । वर्तमान मामले में अपीलार्थियों ने यह प्रतिरक्षा ली है कि अपीलार्थी जमनादास एक व्यापारी है जिसकी 5/2, मुराई मोहल्ला, संयोगिता गंज, इन्दौर पर एक दुकान है । वह दुकान पर 9.00 बजे पूर्वाह्न से 8.00-9.00 बजे अपराह्न तक रहता है । यह दलील दी गई है कि उत्तरी भारत में आमतौर पर दुकानदार अपनी दुकानों पर ही दोपहर का भोजन करते हैं और अपीलार्थी भोजन करने के लिए अपने निवास पर नहीं गए थे । यह भी अभिवाक् किया गया है कि घटना के दिन अर्थात् 16 सितंबर, 2006 को लगभग 7.30 बजे अपराह्न में अपीलार्थी जमनादास अपनी दुकान पर अपीलार्थी मनोज और छोटे पुत्र विशाल के साथ मौजूद था और उस समय उसने अपनी पत्नी धनवंतरी की टेलीफोन काल प्राप्त की जो उस समय घर पर थी और उसने यह बताया कि ऋचा **उर्फ** भूमि (मृतका) अपने नातेदार के यहां चली गई है और वह वापस नहीं आई है । यह सुनकर, जमनादास अपने दोनों पुत्रों के साथ घर पर आया और उसने अपनी पुत्रवधू को तलाश किया । यह भी अभिवाक् किया गया है कि तारीख 16 सितंबर, 2006 को 9.00 बजे अपराह्न में जब ऋचा **उर्फ** भूमि घर वापस नहीं आई, तब जमनादास अपने दोनों पुत्रों के साथ मृतका के लापता होने की रिपोर्ट पुलिस थाने में दर्ज कराने गया । लगभग 10.00 बजे अपराह्न में जमनादास की पत्नी धनवंतरी और उनकी अप्राप्तवय पुत्री हिना **उर्फ** माधुरी भी पुलिस थाने आई और इसके पश्चात् पुलिस ने उन्हें औपचारिक रूप से गिरफ्तार किए बिना अवैध रूप से 3 घंटे के लिए बैठाए रखा । किंतु यह प्रतिरक्षा वृत्तांत पूर्णतया अविश्वसनीय हो जाता' है क्योंकि अभियोजन पक्ष ने यह साबित किया है कि भूमि **उर्फ** ऋचा की हत्या अपीलार्थियों के मकान के अंदर की गई थी और इस बात का कोई प्रश्न ही नहीं उठता है कि मृतका अपने नातेदार के यहां गई थी या वह लापता हो गई थी ।

अपीलार्थियों के विरुद्ध अभिलेख पर परिस्थितियों की शृंखला निम्न प्रकार साबित हो गई है : (i) यह सिद्ध हो गया है कि भूमि **उर्फ** ऋचा (मृतका) अपीलार्थियों के मकान में तारीख 16 अप्रैल, 2006 को हुए अपने विवाह के बाद से अपीलार्थी मनोज के साथ रहती थी । (ii) यह भी संदेह के परे सिद्ध हो गया है कि मृतका की मृत्यु मानव वध प्रकृति की है जो तारीख 16 सितंबर, 2006 को हुई है । (iii) यह भी सिद्ध हो गया है कि मृतका की हत्या अपीलार्थियों के मकान में की गई है जहां पर रक्त के धब्बे पाए गए थे । (iv) यह भी निश्चायक रूप से सिद्ध हो गया है कि हत्या कारित किए जाने के पश्चात् मृतका का शव दो भागों में काट दिया गया था । (v) यह भी साबित हो गया है कि धनवंतरी (मृतका की सास) द्वारा शव पार्क में फेंका गया था और धनवंतरी को ऐसा करते हुए अभि. सा. 1 से अभि. सा. 5 द्वारा देखा गया था । (vi) शवपरीक्षण रिपोर्ट में उल्लिखित मृत्यु पूर्व और मृत्यु के पश्चात् आईं क्षतियों का परिशीलन डा. एन. एम. उन्डा (अभि. सा. 15) के साक्ष्य के साथ करने पर संदेह के परे यह सिद्ध हो जाता है कि यह अपराध केवल एक व्यक्ति द्वारा कारित नहीं किया जा सकता था । (vii) मृतका के अतिरिक्त इस परिवार में कुल मिलाकर 5 सदस्य थे जिनमें तीन पुरुष (मृतका का श्वसुर जमनादास, पति मनोज और देवर विशाल) और दो महिलाएं (मृतका की सास धनवंतरी और ननद हिना **उर्फ** माधुरी) थे । (viii) अपीलार्थी सं. 1 की अप्राप्तवय पुत्री अर्थात् हिना **उर्फ** माधुरी (अभि. सा. 32) की आयु बहुत कम थी । जब विचारण के दौरान उसका कथन अभिलिखित किया गया था तब वह आठवीं कक्षा की छात्रा थी और इस साक्षी ने यह कथन किया है कि वह घटना के दिन स्कूल गई हुई थी और वापस आने के पश्चात् वह सो गई थी । (इस साक्षी को पक्षद्रोही घोषित किया गया है क्योंकि उसने अभियोजन पक्षकथन का समर्थन पूर्ण रूप से नहीं किया है ।) किसी भी पक्ष ने यह नहीं कहा है कि इस साक्षी ने अपराध में किसी भी प्रकार से भाग लिया है । आरोप पत्र में चार अभियुक्तों को नामित किया गया है जिनमें देवर विशाल को विचारण न्यायालय द्वारा दोषमुक्त कर दिया गया था (बल्कि उसे हत्या के अपराध से उन्मुक्त किया गया है) । इस अभियुक्त की दोषमुक्ति उच्च न्यायालय द्वारा कायम रखी गई है और उसे किसी भी व्यक्ति द्वारा चुनौती नहीं दी गई है । शेष अभियुक्तों ने अपील फाइल की है जिनमें सास धनवंतरी और अपीलार्थी हैं । (ix) अपीलार्थी यह साबित करने में असफल रहे हैं कि मृतका की मृत्यु किस प्रकार हुई जो कि विशेषकर उनकी जानकारी में थी । (x) किसी भी पक्ष का यह पक्षकथन नहीं है कि उस मकान में कोई व्यक्ति

बाहर से आया था । (xi) अपीलार्थियों द्वारा पुलिस में कोई भी रिपोर्ट मृतका की मानव वध से की गई मृत्यु के संबंध में नहीं कराई गई है जो कि अपीलार्थी मनोज की पत्नी और अपीलार्थी जमनादास की पुत्रवधू थी जैसाकि ऊपर कहा गया है । (xii) दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 313 के अधीन दिए गए कथनों में अपीलार्थियों द्वारा मिथ्या स्पष्टीकरण दिए गए हैं कि मृतका अपने नातेदार के यहां गई थी और वहां से लापता हो गई जो कि अभिलेख पर अपीलार्थियों के विरुद्ध साक्ष्य की श्रृंखला को पूरा करने के लिए एक अतिरिक्त कड़ी है । (पैरा 17, 25, 29 और 30)

निर्दिष्ट निर्णय

		पैरा
[2015]	(2015) 7 एस. सी. सी. 178 : **तोमासो ब्रूनो और एक अन्य** बनाम **उत्तर प्रदेश राज्य** ;	21
[2015]	(2015) 2 एस. सी. सी. 227 : **सुरेश और एक अन्य** बनाम **हरियाणा राज्य** ;	24
[2013]	(2013) 7 एस. सी. सी. 417 : **रूमी बोरा दत्त** बनाम **असम राज्य** ;	27
[2010]	(2010) 7 एस. सी. सी. 263 : **सेल्वी और अन्य** बनाम **कर्नाटक राज्य** ;	19
[2006]	(2006) 10 एस. सी. सी. 681 : **त्रिमुख मारूति किरकन** बनाम **महाराष्ट्र राज्य** ;	22
[2004]	(2004) 10 एस. सी. सी. 699 : **नरेन्द्र सिंह और एक अन्य** बनाम **मध्य प्रदेश राज्य** ;	23
[2004]	(2004) 12 एस. सी. सी. 77 : **राजकुमार** बनाम **मध्य प्रदेश राज्य** ;	28
[2000]	(2000) 5 एस. सी. सी. 7 : **कुलदीप सिंह** बनाम **राजस्थान राज्य** ;	26
[2000]	(2000) 8 एस. सी. सी. 382 : **पश्चिमी बंगाल राज्य** बनाम **मीर मुहम्मद उमर और अन्य** ;	20

[1984] (1984) 4 एस. सी. सी. 116 :
शरद बिरधीचन्द शारदा बनाम **महाराष्ट्र राज्य** ; 18

[1935] (1935) ए. सी. 462 :
वूलमिंगटन बनाम **लोक अभियोजन निदेशक** । 19

अपीली (दांडिक) अधिकारिता : 2015 की दांडिक अपील सं. 156.

2007 की दांडिक अपील सं. 977 में मध्य प्रदेश उच्च न्यायालय की इंदौर न्यायपीठ द्वारा तारीख 23 अगस्त, 2012 के निर्णय और आदेश के विरुद्ध अपील ।

अपीलार्थियों की ओर से सर्वश्री सुशील कुमार जैन (ज्येष्ठ अधिवक्ता), पुनीत जैन, अभिनव गुप्ता, (सुश्री) छाया कीर्ति, (सुश्री) अंकिता गुप्ता, (सुश्री) प्रतिभा जैन और पी. के. जैन

प्रत्यर्थियों की ओर से सर्वश्री सी. डी. सिंह, संदीपन पाठक, (सुश्री) सिलोना महापात्रा और (सुश्री) सोमेय कालरा

न्यायालय का निर्णय न्यायमूर्ति प्रफुल्ल सी. पंत ने दिया ।

न्या. पंत – ये अपीलें मध्य प्रदेश उच्च न्यायालय की इंदौर न्यायपीठ द्वारा 23 अगस्त, 2012 को पारित उस निर्णय और आदेश के विरुद्ध की गई हैं जिसके द्वारा 2007 की दांडिक अपील सं. 977 (जो मृतका के श्वसुर द्वारा फाइल की गई थी), 2007 की दांडिक अपील सं. 993 (जो मृतका के पति द्वारा फाइल की गई थी) और 2007 की दांडिक अपील सं. 1000 (जो मृतका के सास द्वारा फाइल की गई थी) खारिज की गईं । प्रारंभ में, यह उल्लेख करना सुसंगत होगा कि धनवंतरी (मृतका की सास) द्वारा फाइल की गई अपील, तारीख 16 सितंबर, 2014 को वापस लिए जाने पर खारिज कर दी गई । 2015 की वर्तमान दांडिक अपील सं. 156 और 155 क्रमशः मृतका के श्वसुर और पति की ओर से विशेष इजाजत याचिका से उद्‌भूत हुई हैं ।

2. यह एक ऐसा मामला है जिसमें एक नवयौवना वधु की हत्या उसके विवाह के 6 मास के भीतर ही कर दी गई, उसके शरीर को दो भागों में काट दिया गया और पार्क में फेंक दिया गया ।

(बल देने के लिए रेखांकन किया गया है)

3. अभियोजन वृत्तांत संक्षेप में इस प्रकार है कि तारीख 16 सितंबर, 2006 को लगभग 7.50 बजे अपराह्न में कांस्टेबल निर्मल कुमार पाटिल को पुलिस नियंत्रण कक्ष में टेलीफोन पर एक सूचना प्राप्त हुई कि एक औसत आयु की महिला स्कूटी पर आई और उसने बिस्तर की चादरों में लिपटे हुए दो पुलिंदे सेवा राम गीलानी गार्डन, पटेल नगर, इंदौर में फेंके और यह कि उन पुलिंदों पर रक्त के धब्बे दिखाई दे रहे थे । टेलीफोन पर दी गई इस सूचना के आधार पर प्रदर्श पी-33 नियंत्रण कक्ष पर अभिलिखित किया गया । 5 मिनट के भीतर लगभग 7.55 बजे अपराह्न में, यह सूचना संबद्ध पुलिस थाना जूनी को भेज दी गई और इस संबंध में सूचना प्रदर्श पी-34 अभिलिखित की गई । देहाती मर्ग संसूचना के पश्चात् प्रदर्श पी-1 की प्रविष्टि की गई, हेड कांस्टेबल अशरफ अली (अभि. सा. 17) पुलिस थाने से कांस्टेबल मोहम्मद एम. अहमद को साथ लेकर घटनास्थल की ओर रवाना हुआ । उसी दिन सायंकाल में पूछताछ की गई जिसके दौरान मुकेश जयसवाल (अभि. सा. 1) ने यह बताया कि उस दिन अर्थात् 16 सितंबर, 2006 को लगभग 5.30 बजे अपराह्न में रोजाना की भांति वह मंदिर गया था और मनोहर **उर्फ** मन्नू (अभि. सा. 5), उधर दास (अभि. सा. 4) और नारायण (अभि. सा. 3) के साथ बैठा हुआ था । उन्होंने फुग्गा **उर्फ** कमल (अभि. सा. 2) को दूध लाने के लिए भेजा और थोड़ी देर बाद फुग्गा **उर्फ** कमल (अभि. सा. 2) वापस आया और उन्होंने बताया कि पगडंडी के निकट पार्क में एक पैकेट पड़ा हुआ है जिस पर रंगीन बिस्तर की चादर लिपटी हुई है, उस पैकेट पर रक्त के धब्बे दिखाई दे रहे हैं । उपरोक्त चारों व्यक्ति फुग्गा के साथ उस स्थान की ओर गए और उन्होंने रक्त-रंजित पुलिंदा देखा । इसके तत्काल पश्चात् उन्होंने एक्टिवा स्कूटर पर आती हुई एक महिला को देखा जिसने एक अन्य पैकेट फेंका और चली गई । इस पर टेलीफोन द्वारा नियंत्रण कक्ष को सूचना दी गई । इसके पश्चात् उप-निरीक्षक मोहन लाल पुरोहित (अभि. सा. 35) द्वारा मृत्यु समीक्षा की गई जिसने अज्ञात व्यक्तियों के विरुद्ध अगले दिन 17 सितंबर, 2006 को 2006 की अपराध सं. 431 के अनुसार मामला दर्ज किया । मृतका के चचेरे भाई संजय छावड़ा (अभि. सा. 6) द्वारा मृतका के शव की शनाख्त की गई कि वह भूमि **उर्फ** ऋचा का है और इसके पश्चात् लगभग दोपहर के समय तारीख 17 सितंबर, 2006 को ही पुलिस द्वारा मृत्यु समीक्षा रिपोर्ट प्रदर्श पी-6 तैयार की गई । शव शवपरीक्षण के लिए मोहर-बंद करके भेज दिया गया ।

4. इसके पश्चात्, अपीलार्थी के घर अर्थात् 40, सर्वोदय नगर, इंदौर

की तलाशी ली गई । अन्वेषण के दौरान अपीलार्थियों के मकान में रक्त के धब्बे पाए गए । रक्त के नमूने लिए गए और तलाशी ज्ञापन प्रदर्श पी-54, पी-56 और पी-57 सुरेश नीमा (अभि. सा. 30) और रमेश नाम के व्यक्ति की मौजूदगी में तैयार किए गए । सिल्वर रंग का एक एक्टिवा स्कूटर जिसका रजिस्ट्रेशन नं. एम पी 09/जे एक्स 7556 भी अभिगृहीत किया गया ।

5. अन्वेषण से यह प्रकट होता है कि भूमि **उर्फ** ऋचा (मृतका) अर्थात् राजेश कुमार नचानी (अभि. सा. 22) की पुत्री का विवाह इंदौर में 22 अप्रैल, 2006 को अपीलार्थी मनोज के साथ हुआ था जिसके पश्चात् वह 40, सर्वोदय नगर अपने पति मनोज, श्वसुर (जमनादास) सास (धनवंतरी), देवर (विशाल) और अप्राप्तवय (ननद हीना **उर्फ** माधुरी) के साथ रहने लगी ।

6. तारीख 19 सितंबर, 2006 को अपीलार्थी मनोज और जमनादास तथा धनवंतरी (सास) को गिरफ्तार किया गया । उनकी गिरफ्तारी के पश्चात् अभियुक्तों की डा. जी. एल. सोधी (अभि. सा. 27) द्वारा चिकित्सा परीक्षा कराई गई जिन्होंने धनवंतरी के शरीर पर सामान्य क्षतियां देखीं और इस संबंध में चिकित्सा रिपोर्ट प्रदर्श पी-50 तैयार की गई । तारीख 23 सितंबर, 2016 को मृतका के देवर विशाल को भी गिरफ्तार किया गया ।

7. अन्वेषण के पशचात् चारों अभियुक्तों अर्थात् मनोज (पति), जमनादास (श्वसुर), धनवंतरी (सास) और विशाल (देवर) के विरुद्ध दंड संहिता की धारा 302 (सपठित धारा 34), 201, 304ख और 498क के अधीन दंडनीय अपराधों के लिए विचारण किए जाने हेतु आरोप पत्र फाइल किया गया । उपरोक्त सभी अपराधों के लिए प्रथम तीन अभियुक्तों के विरुद्ध आरोप विरचित किए जाने के लिए मजिस्ट्रेट द्वारा यह मामला सेशन न्यायालय को सुपुर्द कर दिया गया जहां पर विचारण न्यायालय ने प्रथम तीन अभियुक्तों के विरुद्ध सभी अपराधों के लिए आरोप विरचित किए । अभियुक्त विशाल के विरुद्ध आरोप केवल दंड संहिता की धारा 201 के अधीन दंडनीय अपराध के लिए विरचित किया गया । सभी अभियुक्तों ने दोषी न होने का अभिवाक् किया और विचारण किए जाने का दावा किया ।

8. अभियोजन पक्ष ने मुकेश जयसवाल (अभि. सा. 1) की परीक्षा कराई जिसने धनवंतरी को मृतका का शव ठिकाने लगाते हुए देखा था, फुग्गा **उर्फ** कमल (अभि. सा. 2) की भी परीक्षा कराई जिसने पहला पुलिंदा देखा था, नारायण (अभि. सा. 3) जो अभि. सा. 1 के साथ था उधव दास (अभि. सा. 4) जो अभि. सा. 1 के साथ था, मनोहर **उर्फ** मन्नू (अभि. सा. 5) जो उपरोक्त चारों व्यक्तियों के साथ था और उसने पुलिस

नियंत्रण कक्ष को सूचना दी थी, संजय छावड़ा (अभि. सा. 6) जो मृतका का चचेरा भाई है और जिसने मृतका के शव की शनाख्त की थी, दिनेश (अभि. सा. 7) जो पार्किंग स्टैंड वाला व्यक्ति है, योगेन्द्र (अभि. सा. 8) जो पक्षद्रोही साक्षी है, राजेश अग्रवाल (अभि. सा. 9) जो पार्क की चाहरदीवारी का ठेकेदार है, कांस्टेबल राम बाबू शर्मा (अभि. सा. 10) जिसे ऊना अस्पताल से मोहरबंद 10 पैकेट न्यायालयिक प्रयोगशाला भेजे जाने के लिए प्राप्त हुए थे । हेड कांस्टेबल राधेश्याम शर्मा (अभि. सा. 11) जिसने मृत्यु समीक्षा/संसूचना प्रदर्श पी-25 तैयार की थी, कांस्टेबल मोहम्मद एम. अहमत (अभि. सा. 12), कांस्टेबल श्रीमती सावित्री (अभि. सा. 13), कांस्टेबल महाबल सिंह चौहान (अभि. सा. 14), डा. एन. एम. उन्डा (अभि. सा. 15) जिसने शव का शवपरीक्षण किया था, डा. अनिल कपूर (अभि. सा. 16), हेड कांस्टेबल अशरफ अली (अभि. सा. 17), डा. भारतीय द्विवेदी (अभि. सा. 18), कांस्टेबल निर्मल कुमार पाटिल (अभि. सा. 19) जो पुलिस नियंत्रण कक्ष, इंदौर में तैनात था और जिसने ड्यूटी अधिकारी को सूचना दी थी, मनोज चौहान (अभि. सा. 20) जो वायरलैस आपरेटर है जिसने अभि. सा. 19 से संदेश प्राप्त किया था, पंकज नागपाल (अभि. सा. 21), राजेश कुमार नचानी (अभि. सा. 22) जो मृतका का पिता है, राजेन्द्र कुमार (अभि. सा. 23), केशव कुमार (अभि. सा. 24), सोनम (अभि. सा. 25), उमेश नारा (अभि. सा. 26) जो मृतका का चाचा है, डा. जी. एल. सोधी (अभि. सा. 27) जिसने धनवंतरी के शरीर पर आईं क्षतियों का मुआयना किया था, जीवन लोटानी (अभि. सा. 28), हरीश (अभि. सा. 29), सुरेश नीमा (अभि. सा. 30), योगेश गुप्ता (अभि. सा. 31), माधुरी (अभि. सा. 32) जो मृतका की अप्राप्तवय ननद है, पदविलोचन शुक्ला (अभि. सा. 33) जो अन्वेषण अधिकारी है, राकेश पाल सिंह (अभि. सा. 34) जो पुलिस थाना जूनी का भारसाधक अधिकारी है, मोहन लाल पुरोहित (अभि. सा. 35) और उप-निरीक्षक के. एल. पांडे (अभि. सा. 36) की परीक्षा कराई ।

9. प्रत्येक अभियुक्त के समक्ष दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 313 के अधीन अभियोजन साक्ष्य प्रस्तुत किया या जिस पर उन्होंने यह उत्तर दिया कि यह साक्ष्य मिथ्या है । अभियुक्तों द्वारा यह अभिवाक् किया गया है कि भूमि **उर्फ** ऋचा अपने नातेदार के यहां गई थी और उसके बाद से वह लापता हो गई थी । अपीलार्थी द्वारा यह भी अभिवाक् किया गया है कि वे दिन के समय दुकान पर थे जब भूमि **उर्फ** ऋचा लापता हुई थी । अपनी प्रतिरक्षा में परमानन्द शर्मा (प्रतिरक्षा साक्षी 1) जो कि दुकान पर नौकरी करता है की परीक्षा अपीलार्थियों के अन्यत्र उपस्थित होने के

अभिवाक् के समर्थन में कराई गई ।

10. विचारण न्यायालय ने पक्षकारों को सुनने के पश्चात् यह निष्कर्ष निकाला कि अभियुक्त विशाल (मृतका का देवर) के विरुद्ध यह आरोप कि वह अपराध में शामिल था, युक्तियुक्त संदेह के परे साबित नहीं किया गया, इसलिए उसे दोषमुक्त कर दिया गया । विचारण न्यायालय ने शेष तीनों अभियुक्तों अर्थात् धनवंतरी, जमनादास और मनोज को दंड संहिता की धारा 34 के साथ पठित धारा 302 के अधीन दंडनीय अपराध के लिए सामान्य आशय और हत्या के संबंध में दोषी पाया और उन्हें तद्नुसार दोषसिद्ध किया । अभियुक्त धनवंतरी को हत्या का साक्ष्य मिटाने के अपराध के लिए दंड संहिता की धारा 201 के अधीन भी दोषसिद्ध किया गया । दंडादेश पर विचार करने के पश्चात् छठे अपर सेशन न्यायाधीश, इंदौर ने अपने तारीख 24 अगस्त, 2009 के आदेश के अनुसार प्रत्येक अभियुक्त को दंड संहिता की धारा 302/34 के अधीन आजीवन कारावास के लिए दंडादिष्ट किया और 5,000/- रुपए जुर्माने का संदाय करने का भी निदेश दिया । यह भी निदेश दिया कि जुर्माने के संदाय में व्यतिक्रम करने पर दोषसिद्ध व्यक्तियों को अतिरिक्त एक वर्ष का कठोर कारावास भोगना है । दोषसिद्ध धनवंतरी को दंड संहिता की धारा 201 के अधीन दंडनीय अपराध के लिए 5,000/- रुपए के जुर्माने के साथ तीन वर्ष का कठोर कारवास भोगने और जुर्माने के संदाय में व्यतिक्रम किए जाने पर अतिरिक्त तीन मास का कठोर कारावास भोगने का दंडादेश दिया गया । इस अभियुक्त को अन्य अपराधों के लिए लगाए गए आरोपों से दोषमुक्त कर दिया ।

11. तीनों दोषसिद्ध किए गए व्यक्तियों ने उच्च न्यायालय के समक्ष अलग-अलग अपीलें फाइल कीं और उनकी सुनवाई एक साथ की गई तथा तारीख 23 अगस्त, 2012 के एक ही निर्णय और आदेश द्वारा उनका निपटारा किया गया और यही आदेश इन अपीलों में आक्षेपित है ।

12. आगे चर्चा करने के पूर्व हम मृतका (भूमि **उर्फ** ऋचा) के शरीर पर आईं मृत्युपूर्व क्षतियों का उल्लेख करना उचित समझते हैं जिन्हें डा. एन. एम. उन्डा, निदेशक न्यायालयिक आयुर्विज्ञान और विष-विज्ञान विभाग, एम. जी. एम. कालेज तथा एम. वाई. अस्पताल, इन्दौर द्वारा तारीख 17 सितंबर, 2006 को 2.00 बजे अपराह्न में प्रदर्श पी-27 के रूप में अभिलिखित की गई थी । शवपरीक्षण रिपोर्ट में निम्न प्रकार उल्लेख किया गया है :–

"शव मुहरबंद अवस्था में प्राप्त किया गया है जो दो भागों में

बिस्तर की चादर में लिपटा हुआ है और चादर रक्त-रंजित है । शव साफ और धुला हुआ दिखाई पड़ता है । शव पर रक्त के हल्के धब्बे दिखाई पड़ रहे हैं और रक्त का थक्का कहीं भी दिखाई नहीं दे रहा है । हाथों और अंगुलिओं के पृष्ठ भाग पर त्वचा सिकुड़ी हुई है और सभी भाग आकार में छोटे हैं जिनसे बहुत ही कम रक्त निकलता दिखाई दे रहा है किंतु ऊपरी भाग साफ सुथरा है । शरीर को कठोर और धारदार वस्तु से नाभी के निकट से कई बार वार करके काटा गया प्रतीत होता है और कशेरुक-दंड मंडल के निकट से कटा हुआ है साथ ही उपास्थि और कशेरुक भी कटे हुए हैं । छोटी और बड़ी आंत लुप्त है, मल मौजूद है और उदर का निचला भाग भी कटा हुआ है; अस्थि और शिथिल ऊतक भी कटे हुए हैं । शव के प्रथक्करण से उदरीय और श्रोणि गुहा का भाग की क्षतियां मरणोत्तर प्रकृति की हैं और अंतड़ी में निकास द्वार प्रकट हो रहा है । वृक्क से जुड़ी रक्त वाहिनी का कुछ मार्ग और शिथिल ऊतक मौजूद नहीं है ।

पैर, टांग और कलाई के ऊपर के भागों में मरणोत्तर प्रकृति के अनेक घाव हैं जिनसे अभियुक्त का यह आशय पता चलता है कि उसने शव को ठिकाने लगाने के लिए उसके टुकड़े किए थे ।

शव के दोनों हाथों पर कई प्रतिरक्षा-घाव हैं । हथेली में आए कटाव से यह प्रतीत होता है कि मृतका ने बंद मुट्ठी में कोई वस्तु पकड़ी हुई थी जिसके खींचने से हथेली में कटाव आया । बाएं हाथ की हथेली में तीन गहरे कटाव मौजूद हैं । दोनों हाथों पर छोटे-छोटे घाव आए हैं जिनकी कुल संख्या का उल्लेख अन्य पृष्ठ पर किया गया है ।

शव के निचले आधे भाग की लंबाई 96 सें.मी. और ऊपरी भाग की लंबाई 63 सें.मी. है ।

शव की काठी औसत है, आंखें बंद हैं । मुख आंशिक रूप से बंद है और होंठ भी भागतः बंद हैं । पूरे शरीर में शव-काठिन्य मौजूद है । शरीर के पश्च भाग में रक्ताधिक्य मौजूद है जो कि फीका है । 2 कटे हुए ऊपरी भाग की परिधि 73 सें.मी. और 23 सें.मी. है और उदरीय भाग की परिधि और व्यास 27 सें.मी. × 20 सें.मी. है और दोनों भाग एक दूसरे से मेल खाते हैं जिनमें बहुत से कटाव हैं । खोपड़ी पर कहीं-कहीं बाल मौजूद हैं । शरीर के अन्य अंगों पर भी बाल हैं ।

आमाशय में हल्के भूरे रंग का 190 मिली लीटर द्रव मौजूद है जिसमें से हल्की सी गंध आ रही है और म्यूकोसा ठीक हालत में है । छोटी आंत में थोड़ा पचा हुआ भोजन है । बड़ी आंत के शेष बचे निचले भाग में मल मौजूद है । यकृत और प्लीहा का रंग पीला है और ठीक हालत में हैं । वृक्क का डोरसेलीन निचला भाग मौजूद नहीं है । गुप्तांग - मौजूद हैं किंतु निचले भाग में वेधित घाव है जिसके पार्श्व में एक बड़ा तन्तु है । गर्भाशय का आकार छोटा है । गर्भाशय-ग्रीवा के मुखद्वार और मूत्र-गुहा तथा योनिक लेप का फोहा लेकर स्लाइड तैयार की गई, अन्य किसी व्यक्ति के बालों का पता लगाने के आशय से गुप्तांग के निकट के बाल उस्तरे से मूंडे गए हैं । हिस्टोपैथोलॉजिकल परीक्षण करने के लिए गर्भाशय की माप की गई है । गुदाद्वार फैला हुआ तथा कीपाकार है जिसकी ऊपरी सतह पर घाव के अनेक चिह्न हैं जिनमें अधिकांश में विरोपण भी दिखाई देता है ।

दोनों फेफड़े पीले रंग के स्वस्थ हैं ।

श्वास-नली पीले रंग की है और स्वस्थ है, इसमें क्षति दिखाई देती है जिसका उल्लेख क्षति सं. 3 के रूप में किया गया है ।

हृदय व्यवहारिक रूप से पूर्णतया रिक्त है ।

करोटि पर बाह्य क्षति कारित हुई है जिसका उल्लेख क्षति वाले कालम में किया गया है ।

खोपड़ी पर कटाव के निशान हैं, शेष भाग स्वस्थ है ।

मस्तिष्क पूर्णतया सिकुड़ा हुआ है और उसमें से अजीब सी गंध आ रही है (जिसकी शनाख्त नहीं की जा सकती) । मस्तिष्क को रासायनिक विश्लेषण के लिए परिरक्षित कर लिया गया है और उसे रोग-संबंधी परीक्षण के लिए भेज दिया गया है, किसी भी प्रकार का सबड्यूअल या एक्स्ट्राड्यूअल द्रव नहीं पाया गया है ।

शरीर पर मृत्युपूर्व कारित की गई अनेक क्षतियों के परिणास्वरूप आघात और रक्तस्राव से मृत्यु हुई है । मृत्यु मानव वध से हुई है ।

मृत्युपूर्व की क्षतियों के साथ-साथ मरणोत्तर क्षतियां भी दिखाई देती हैं जो शवपरीक्षण के दौरान शरीर को दो भागों में बांटने से आई हैं और ऐसे चिह्न भी दिखाई देते हैं कि शव को अनके टुकड़ों में

काटने का प्रयास किया गया है, आंत के कुछ भाग, वृक्क का निचला भाग, अन्त्रयोजनी तथा रक्त वाहिनियां कटी हुई हैं तथा मौजूद नहीं हैं ।

प्रतिरक्षा करने के दौरान आए घाव मौजूद हैं और धब्बे हटाए जाने का प्रभाव दिखाई दे रहा है ।

परिरक्षण –

1. रासायनिक विश्लेषण के लिए अभ्यंतरांग (अंतड़ियां) को परिरक्षित किया गया है ।

2. योनिक लेप, गर्भनलीर के लेप तथा मूत्र गुहा के द्रव की स्लाइड बनाकर परिरक्षित की गई हैं ।

3. गुदा से लिए गए लेप की भी स्लाइड परिरक्षित की गई है ।

4. मस्तिष्क के गूदे को रासायनिक विश्लेषण के लिए अलग से परिरक्षित किया गया है ।

5. जघन प्रदेश के बालों को मूंडने के बाद अन्य सामग्री के साथ परिरक्षित कर लिया गया है ।

6. सभी अंगुलियों के नाखूनों को कतर कर उनमें लगे मैल के साथ परिरक्षित किया गया है ।

7. सिर के बालों को त्वचा के टुकड़ों के साथ लिया गया है ।

8. शरीर के अन्य भागों से भी बाल लिए गए हैं ।

9. बिस्तर की दोनों चादरों को लिया गया है ।

मस्तिष्क तथा गर्भाशय की हिस्टोपैथोलॉजी परीक्षण के लिए परिरक्षित किया गया है ।

सभी वस्तुओं को मुहरबंद किया गया और पुलिस थाने को सुपुर्द कर दिया गया ।

शवपरीक्षण किए जाने के समय तक मृत्यु को 12 से 36 घंटे बीत चुके थे ।"

(बल देने के लिए रेखांकन किया गया है ।)

शवपरीक्षण रिपोर्ट के साथ उपाबद्ध अलग से एक पृष्ठ लगाया गया है जिसमें निम्न क्षतियों का उल्लेख है :–

I. बाएं नेत्र से बाएं कान तक चार छिन्न घाव हैं जिनके आकार 11 सें.मी. × 1.5 सें.मी., 10 सें.मी. × 0.5 सें.मी., 9 सें.मी. × 0.75 सें.मी. और 7 सें.मी. × 2 सें.मी. हैं और इन सभी घावों की दिशा ऊर्ध्वाधर है जो ललाट के बाईं ओर तक हैं ।

II. चेहरे के दाईं ओर 11 (ग्यारह) छिन्न घाव हैं जिनका आकार 1.5 सें. मी. × 1.0 सें.मी. से लेकर 1 सें.मी. × 1 सें.मी. तक है और इन घावों की गहराई मास पेशी तक है जिनमें से कुछ घाव ऊपरी होंठ पर हैं । शेष घाव कपोल के निकट हैं ।

III. कपोलास्थि के जोड़ पर गुमटा मौजूद है जो 3.5 सें.मी. × 1.3 सें.मी. आकार के दो छिन्न घावों के बीच है और दिशा अनुप्रस्थ है ।

IV. मुख के पार्श्व में दाएं कपोल पर 3 सें.मी. × 1.5 सें. मी. माप का वेधित घाव है जो जिह्वा तक गहरा है और 3.2 सें.मी. की दूरी पर एक अन्य छोटा छिन्न घाव है जो त्वचा तक गहरा है और आकार 2 सें.मी. × 1 सें.मी. है ।

V. ग्रीवा पर आईं क्षतियां – मध्य रेखा के दाईं ओर अग्र भाग में 3 सें.मी. × 1.0 सें.मी. माप के दो घाव हैं और उसके आगे मध्यरेखा के बाईं ओर दो घाव हैं । ग्रीवा के घाव ऊतक तक गहरे हैं किंतु उसके अग्र भाग में कोई भी दीर्घ वाहिनी कटी हुई नहीं है, सभी मृदु ऊतक दाईं ओर श्वास नली से जुड़े हुए हैं और कटाव के चिह्न दिखाई दे रहे हैं । ग्रीवा के पीछे की ओर का भाग – मध्य रेखा के निकट फरसे की काट का चिह्न दिखाई पड़ता है जिसका आकार 6.9 सें.मी. × 2.9 सें.मी. है और गहराई मेरुदंड तक है तथा दिशा अनुप्रस्थ है जिसमें एक-दूसरे को ढकते हुए दो कटाव हैं जिनकी मध्य रेखा से दूरी 4.5 सें.मी. है और सभी मांस-पेशियों में गहरे घाव और कटाव हैं ।

VI. बाएं चूचुक के मध्य में 4.0 सें.मी. की दूरी पर दो

छिन्न घाव मौजूद हैं जिनमें एक 3.0 सें.मी. × 1.2 सें.मी. का छठी पसली के निकट है और दूसरा मध्य रेखा से 3.0 सें.मी. की दूरी पर सातवीं पसली के निकट 2.8 सें.मी. × 1.0 सें.मी. आकार का है जिसकी गहराई अस्थि तक है । वक्ष पर रेखीय चिह्न बनाते हुए बहुत से छोटे-छोटे घाव हैं जिनकी गहराई 1.0 सें.मी. है और लंबाई भिन्न-भिन्न हैं ।

VII. दाएं अग्रबाहु पर 15 सें.मी. × 6 सें.मी. माप का घाव है जिसकी गहराई मांसपेशी से होती हुई अस्थि तक है किंतु अस्थि पर कोई भी कटाव का चिह्न नहीं है । 5 सें.मी. × 2 सें.मी. माप की अन्य दो क्षतियां भी हैं जिनकी गहराई मांसपेशी तक है और 3 चिह्न ऊपरी क्षतियों के दिखाई पड़ते हैं ।

VIII. अग्रबाहु में अनेक ऊपरी क्षतियां हैं जिनका आकार अपेक्षाकृत बड़ा है और दिशा तिरछी है तथा स्पष्ट रेखीय अवस्था में हैं । (माप का उल्लेख नहीं किया गया है ।) दाईं हथेली पर तिरछी दो क्षतियां हैं जिनमें से एक अधरतल पर है और उसकी माप 6 सें.मी. × 2 सें.मी. है और गहराई अस्थि तक है तथा दूसरी क्षति पृष्ठतल पर है जिसकी माप 6 सें.मी. × 0.3 सें.मी. है और मध्य रेखा के निकट है । यह घाव प्रतिरक्षा में कारित हुआ है । दाएं अग्रबाहु के पश्चभाग में 3 छिन्न घाव हैं जो मध्य रेखा के निकट हैं जिनकी माप 1 सें.मी. × 4 सें.मी., 3 सें.मी. × 1.0 सें.मी. और 2.7 सें.मी. × 1.3 सें.मी. हैं । दाएं अंगूठे के पृष्ठ भाग पर 1.2 सें.मी. × 0.2 सें.मी. माप का घाव है जिसकी गहराई त्वचा तक है । दाएं हाथ की तर्जनी में 5 घाव हैं जिनकी लंबाई 10 सें.मी. से 1.4 सें.मी. तक है और चौड़ाई 0.2 से 0.3 सें.मी. है और गहराई अस्थि तक है और अंगूठे के जोड़ पर गुमटा मौजूद है ।

IX. बाएं अग्रबाहु की क्षतियां – बाएं अग्रबाहु पर 4 छिन्न घाव मौजूद हैं जिनकी माप 4 सें.मी. × 2 सें.मी., 3.5 सें.मी. × 2.0 सें.मी., 1.5 सें.मी. × 1.0 सें.मी. और 1 सें.मी. × 1 सें.मी. हैं । ये सभी क्षतियां मांसपेशी तक गहरी हैं । बाहु के पश्चभाग में तीन क्षतियां मौजूद हैं जिनकी माप 6 सें.मी. × 3 सें.मी., 3 सें.मी. × 1 सें.मी. और 2.5 सें.मी. × 1.0 सें.मी. है

और उनकी गहराई मांसपेशी तक है । बाएं अग्रबाहु के अग्र मध्य भाग में 4 सें.मी. × 2 सें.मी. माप की क्षति है जिसकी गहराई मांसपेशी तक है । व्यवहारिक रूप से 3 से 4 कटे हुए घाव हैं जिनकी माप 6 सें.मी. × 4.0 सें.मी. है । ये क्षतियां शवपरीक्षण के दौरान की हैं ......(अपठनीय भाग) ।

X. उदर में एक वेधित घाव मौजूद है जिसकी माप 3.9 सें.मी. × 2.0 सें.मी. है और गहराई गुहा तक है और उदर में ही 6 अन्य छोटे-छोटे छिन्न घाव हैं जिनकी गहराई अधरूत्वक ऊतक तक है ।

XI. दाएं नितंब पर नीचे की ओर चार छिन्न घाव मौजूद हैं जिनकी माप 2 सें.मी. × 1 सें.मी., 3 सें.मी. × 1.5 सें.मी., 2 सें.मी. × 1.5 सें.मी. और 3 सें.मी. × 1.5 सें.मी. हैं जिनकी गहराई मांसपेशी तक है ।

XII. जंघास्थि के त्रिकोण पर दो वेधित घाव मौजूद हैं जिनकी माप 9.2 सें.मी. × 3.5 सें.मी. है और उसकी स्थिति एल/3 की श्रेणी में आता है, इस घाव की गहराई अस्थि तक है और घाव की कुल गहराई 8.5 सें.मी. है जिसमें सभी ऊतक और ऊर्ध्वाधर संरचनाएं कटी हुई हैं और घाव के किनारे धारदार हैं । हल्के-फीके गुमटे मौजूद हैं । घाव की दिशा अग्र-पश्चीय है । दो घाव छिन्न प्रकृति के हैं जिनकी माप 5.2 से.मी. है और एक-दूसरे पर आच्छादित हैं ।

XIII. दायीं जंघा के अग्र भाग में शवपरीक्षण के दौरान कारित हुआ घाव है जिसकी माप 5 सें.मी. × 1 सें.मी. और गहराई मांसपेशी तक है । दायीं टांग के एल/3 भाग में 9.2 सें.मी. लंबी क्षति है ।

दोनों पैरों पर कटाव हैं और पैर के निचले मध्य भाग में क्षति के चिह्न मौजूद हैं और बाएं पैर के पार्श्विक भाग में क्षति मौजूद है । दाएं पैर पर 6 घाव हैं । जिनकी माप 11.0 सें.मी. × 0.5 सें.मी. से 11.0 सें.मी. × 1.2 सें.मी. तक है और अस्थि तक 2 सें.मी. गहरे हैं ।

(बल देने के लिए रेखांकन किया गया है ।)

13. डा. एन. एम. उण्डा (अभि. सा. 15) ने यह कथन किया है कि

पैरा IX और पैरा XIII में उल्लिखित क्षतियां मरणोपरांत की हैं । उन्होंने यह भी राय व्यक्त की है कि गुमटे और मृत्युपूर्व की क्षतियों के सिवाय शेष सभी क्षतियां मरणोपरांत की हैं जो किसी कठोर और धारदार वस्तु से कारित की गई थीं । ऊपर उल्लिखित शवपरीक्षण रिपोर्ट तथा डा. एन. एम. उण्डा (अभि. सा. 15) के कथन से यह स्पष्ट हो जाता है कि मृतका की मृत्यु शरीर को अनेक क्षतियां पहुंचने के परिणामस्वरूप आघात और रक्तस्राव से हुई है । भूमि **उर्फ** ऋचा की मृत्यु ऊपर उल्लिखित बारह मृत्युपूर्व की क्षतियों के परिणामस्वरूप मानव वध प्रकृति की है । डा. उण्डा (अभि. सा. 15) ने रिपोर्टें (प्रदर्श पी.-30, पी.-30ए, पी.-बी., पी.-30सी., पी.-30डी. और पी.-30ई.) भी साबित की हैं जो तारीख 25 सितंबर, 2006 को हथियारों (चाकू और कैंची) के संबंध में तैयार की गईं थीं और एम. जी. एम. मेडिकल कालेज और एम. वाई. अस्पताल, इंदौर को भेज दी गईं।

14. डा. एन. एम. उण्डा (अभि. सा. 15) द्वारा उल्लिखित मृत्युपूर्व की क्षतियों से स्पष्ट रूप से यह पता चलता है कि मृतका ने स्वयं को बचाने का प्रयास किया था और उसने अपनी मृत्यु के पूर्व अपनी पूरी शक्ति से हमले का प्रतिरोध किया था, और ऐसा प्रतीत होता है कि हमलावरों ने उसे काबू करके उसकी बर्बरतापूर्ण हत्या कर दी ।

15. अब हम इस घटना में सह-अभियुक्त धनवंतरी को पहुंची क्षतियों पर विचार करेंगे । एम. वाई. अस्पताल, इंदौर के मुख्य चिकित्सा अधिकारी डा. जी. एल. सोधी (अभि. सा. 27) ने तारीख 20 सितंबर, 2006 को धनवंतरी (सह-अभियुक्त अर्थात् मृतका की सास) के शरीर पर पाई गई क्षतियों का मुआयना किया और प्रदर्श - पी.-50 के अनुसार वे क्षतियां निम्न प्रकार हैं :–

> "(i) दाएं अंगूठे पर 1.5 सें.मी. × 0.2 सें.मी. माप का भूरे रंग का विरोपणमय खुरंट है । घाव की दिशा अनुप्रस्थ है ।
>
> (ii) दायीं तर्जनी के मध्य में तीसरे पश्चीय भाग में 1 सें.मी. × 0.5 सें.मी. माप का भूरे रंग का विरोपणमय घाव है जिसकी दिशा अनुप्रस्थ है और हथेली पर 0.75 सें.मी. × 0.5 सें.मी. माप का अनुप्रस्थीय तिरछा घाव है जिसमें विरोपण दिखाई दे रहा है ।
>
> (iii) दायीं अनामिका के मध्य पृष्ठ भाग में रेखीय घाव है जिसकी माप 0.75 सें.मी. × 0.2 सें.मी. है और रंग भूरा है तथा इस

घाव में विरोपण दिखाई पड़ता है ।

(iv) दाएं अग्रबाहु में दो रेखीय विरोपणमय भूरे रंग के खुरंट हैं जिनकी माप 2 सें.मी. × 0.2 सें.मी. तथा 1.75 सें.मी. × 0.2 सें.मी. है और दिशा तिरछी व समांतर है ।

(v) दाएं अग्रबाहु में क्षति सं. (iv) से पार्श्व में 1.5 सें.मी. की दूरी पर रेखीय विरोपणमय घाव है जिसकी माप 1 सें.मी. × 0.2 सें.मी. है और उस पर भूरे रंग का खुरंट बना हुआ है ।

(vi) दाएं कंधे के पीछे की ओर 0.5 सें.मी. × 0.2 सें.मी. माप की रगड़ मौजूद है जिस पर भूरे रंग का खुरंट बना हुआ है ।

क्षतियां किस कारण पहुंचीं, इस पर राय नहीं दी जा सकी क्योंकि घावों पर विरोपण आरंभ हो गया है और खुरंट भी पाया गया है । क्षतियों का मुआयना किए जाने के दिन से 3 से 6 दिनों के भीतर क्षतियां कारित की गईं हो सकती हैं और ये क्षतियां सामान्य प्रकृति की हैं ।

16. अभिलेख पर क्षेत्रीय न्यायालयिक विज्ञान प्रयोगशाला, राव (इंदौर) द्वारा जारी की गई रिपोर्ट भी उपलब्ध है । तारीख 31 अक्तूबर, 2006 की रिपोर्ट (प्रदर्श पी.-73) का सुसंगत भाग जो तीन अभियुक्तों के नाखूनों पर पाए गए रक्त के संबंध में है, इस प्रकार है :–

सं.	पैकेट चिह्न	पैकेट में पाई गई सामग्री प्रदर्श/ब्यौरा		किसके कब्जे से सामग्री अभिगृहीत की गई	डिब्बों की संख्या, आकार, रंग और वितरण
35.	वीएचबी	नाखून (4अदद)	वी.1	तारीख 20 सितंबर, 2016 को एम. जी. एम. इंदौर से प्राप्त किया गया अभियुक्त धनवंतरी का ज्ञापन	....

		फोहा नाखून (8 अदद) फोहा	वी. 2 वी. 3 वी. 4	-यथा- -यथा- -यथा-	....
36.	डब्ल्यू.	नाखून (8 अदद)	डब्ल्यू.	अभियुक्त मनोज 20.09.2016	....
37.	डब्ल्यू. 1	नाखून (8 अदद)	डब्ल्यू. 1	-यथा-	....
38.	एक्स.	नाखून (8 अदद)	एक्स.	अभियुक्त जमनादास 20.09.2016	....
39.	एक्स. 1	नाखून (8 अदद)	एक्स.	-यथा-	....

प्रदर्श पी.-73 में यह रिपोर्ट दी गई है कि प्रदर्शों पर बन्जेड्रीन/फिनॉफ्थेलीन और क्रिस्टल परीक्षण किए गए थे जिसमें यह पाया गया कि प्रदर्श वी. 1, वी. 2, वी. 3 और वी. 4 (अर्थात् मृतका की सास धनवंतरी के नाखूनों पर) रक्त पाया गया था और इन प्रदर्शों पर पाए गए रक्त के ग्रुप का पता लगाया गया किंतु प्रदर्श डब्ल्यू., डब्ल्यू. 1, एक्स. और एक्स. 1 (अर्थात् अपीलार्थियों के नाखूनों पर) रक्त नहीं पाया गया ।

17. उपरोक्त निष्कर्ष के आधार पर अपीलार्थियों के विद्वान् काउंसेल ने यह दलील दी कि मृतका की सास धनवंतरी के संबंध में निकाले गए निष्कर्ष के विपरीत यह स्पष्ट हो जाता है कि वर्तमान अपीलार्थियों के विरुद्ध अपराध में फंसाने वाला कोई भी निष्कर्ष नहीं निकाला गया है । यह दलील दी गई है कि शवपरीक्षण रिपोर्ट (प्रदर्श पी.-27) से यह प्रतीत होता है कि घटना दिन में किसी समय पर घटित हुई है और अपीलार्थियों का उनके कार्यस्थल पर मौजूद होना स्वाभाविक है और यह बात परमानन्द शर्मा (प्रतिरक्षा साक्षी-1) के कथन से भी स्पष्ट हो जाती है जिसने यह बताया था कि अपीलार्थी तारीख 16 सितंबर, 2006 को 9.30 बजे पूर्वाह्न से 7.30 बजे अपराह्न तक दुकान पर थे । यह दलील दी गई है कि मुकेश जयसवाल (अभि. सा. 1), नारायण (अभि. सा. 3), उधव दास (अभि. सा. 4) और मनोहर **उर्फ** मन्नू (अभि. सा. 5) ने यह कथन किया है कि

यह वही महिला थी जो बंडल लेते हुए और उसे पटेल नगर, इंदौर के निकट स्थित सेवाराम गीलानी गार्डन में फेंकते हुए देखी गई थी । किंतु वर्तमान अपीलार्थियों के विरुद्ध उनके साक्ष्य में कोई सामग्री नहीं है ।

18. हमने ऊपर दी गई दलीलों पर अभिलेख पर प्रस्तुत साक्ष्य और ऐसे मामलों को लागू होने वाली अधिकथित विधि के आधार पर विचार किया है । निःसंदेह, यह पारिस्थितिक साक्ष्य का मामला है । **शरद बिरधीचन्द शारदा** बनाम **महाराष्ट्र राज्य**[1] वाले मामले में उस न्यायालय की तीन न्यायाधीशों की न्यायपीठ ने यह विधि अधिकथित की है कि पारिस्थितिक साक्ष्य के मामले में आरोप कब सिद्ध माना जा सकता है । उक्त मामले में जो पांच बातें प्रगणित की गईं हैं, वे निम्न प्रकार हैं :–

(i) जिन परिस्थितियों से दोषी होने का निष्कर्ष निकाला गया है वे पूरी तरह सिद्ध की जानी चाहिए । इससे पहले कि न्यायालय अभियुक्त को दोषसिद्ध करे वह स्पष्ट रूप से दोषी होना चाहिए न कि वह संभवतः दोषी हो और 'दोषी होना चाहिए' तथा 'दोषी हो सकता है' के बीच बड़ा अंतर होना चाहिए और अस्पष्ट अनुमानों तथा निश्चित निष्कर्षों के बीच विभेद प्रकट होना चाहिए ;

(ii) इस प्रकार सिद्ध किए गए तथ्य अभियुक्त के दोषी होने की परिकल्पना के साथ ही संगत होने चाहिए, अर्थात् वे अन्य ऐसी किसी परिकल्पना के साथ संगत न हों कि अभियुक्त दोषी नहीं है ;

(iii) परिस्थितियां निश्चायक प्रकृति और प्रवृत्ति की होनी चाहिए ;

(iv) परिस्थितियां ऐसी होनी चाहिए जो साबित की गई परिकल्पना के सिवाय प्रत्येक संभावित परिकल्पना को अपवर्जित करें ;

(v) साक्ष्य की श्रृंखला संपूर्ण होनी चाहिए और इस निष्कर्ष पर पहुंचने का ऐसा कोई भी युक्तियुक्त आधार न हो जो अभियुक्त की निर्दोषिता के साथ संगत हो और उससे यह दर्शित होता हो कि सभी मानवीय संभाव्यताओं के आधार पर अपराध का कृत्य अभियुक्त द्वारा ही किया गया है ।

19. अपीलार्थियों की ओर से यह दलील दी गई है कि अभियुक्त को मौन रहने का अधिकार है और उसके मौन धारण से मृतका की मृत्यु

---

[1] (1984) 4 एस. सी. सी. 116.

कारित किए जाने से संबंधित कोई भी प्रतिकूल निष्कर्ष नहीं निकाला जा सकता है । संबंध में, **सेल्वी और अन्य** बनाम **कर्नाटक राज्य**[1] वाले मामले के पैरा 141 का अवलंब लिया गया है, जो निम्न प्रकार है :–

> "141. इस समागम पर, यह दोहराया जाना चाहिए कि भारतीय विधि में 'मौनधारण का प्रतिकूल निष्कर्ष निकाले जाने के विरुद्ध नियम' को निगमित किया गया है जोकि विचारण के प्रक्रम पर प्रवृत्त होता है । जैसाकि पहले ही उल्लेख किया गया है कि यह स्थिति भारत के संविधान के अनुच्छेद 20(3) और दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 161(2), 313(3) और धारा 315(1) के परंतुक (ख) का संचयी रूप से परिशीलन करने पर उद्भूत होती है । इस स्थिति का सार यह है कि भले ही कोई अभियुक्त अपने विचारण में एक सक्षम साक्षी होता है, फिर भी उसे इस प्रश्न का उत्तर देने के लिए बाध्य नहीं किया जा सकता जो उसे अपराध में फंसाता हो और विचारण न्यायाधीश अभियुक्त द्वारा इस प्रकार किए गए इनकार से प्रतिकूल निष्कर्ष नहीं निकाल सकता । इस स्थिति को और प्रबलित इस प्रकार किया गया है कि अभियुक्त द्वारा उत्तर न दिए जाने पर पक्षकारों को टिप्पणी करने से प्रतिषिद्ध किया गया है । इस नियम को **वूलमिंगटन** बनाम **लोक अभियोजन निदेशक**[2] वाले इंग्लिश मामले में स्पष्ट किया है जो निम्न प्रकार है –
>
> > 'मौन रहने का अधिकार सामान्य विधि का एक सिद्धांत है और इसका यह अर्थ हुआ कि सामान्यतया न्यायालय या ट्रायब्युनल से जो तथ्यों की जांच करते हैं, पक्षकारों द्वारा यह निवेदन नहीं किया जाना चाहिए कि संदिग्ध व्यक्ति या अभियुक्त मात्र इस कारण से दोषी है कि उसने उसे प्रश्न का उत्तर देने से इनकार किया है जो उससे पुलिस ने या न्यायालय ने पूछा था ।'
>
> दांडिक मामलों में अन्वेषण के प्रयासों को बेहतर बनाने के लिए स्वापक विश्लेषण, बहुलेखीय परीक्षण और मस्तिष्क का विद्युत-सक्रीयकरण खाका परीक्षण (ब्रेन इलेक्ट्रीकल एक्टीवेशन प्रोफाइल अर्थात् बी.ई.ए.पी.) जैसी कतिपय वैज्ञानिक तकनीकियों के अनैच्छिक

---

[1] (2010) 7 एस. सी. सी. 263.

[2] (1935) ए. सी. 462.

प्रबंधन से संबंधित अनेक दांडिक अपीलों में उठाए गए विधिक प्रश्नों का उत्तर देने के लिए इस न्यायालय द्वारा उपर्युक्त मताभिव्यक्तियां की गई हैं । वर्तमान मामले के तथ्य और परिस्थितियां अलग-अलग हैं । हमारी राय में ऊपर उल्लिखित मामला वर्तमान मामले में अपीलार्थियों की कुछ भी सहायता नहीं करता है ।

20. **पश्चिमी बंगाल राज्य** बनाम **मीर मुहम्मद उमर और अन्य**[1] वाले मामले में अभियोजन पक्ष पर सबूत के भार की सीमा का निर्वचन करते हुए, इस न्यायालय ने निम्न मत व्यक्त किया :–

"31. यह मूल नियम कि अभियुक्त का दोष साबित करने के लिए सबूत का भार अभियोजन पक्ष पर होता है, जीवाश्म सिद्धांत के रूप में नहीं माना जाना चाहिए क्योंकि इसमें बुद्धिमत्ता का प्रयोग नहीं होता है । उपधारणा का सिद्धांत उपरोक्त सिद्धांत से अलग नहीं है और न ही इस सिद्धांत से मूल नियम का महत्व कम होता है । इसके प्रतिकूल अभियोजन पक्ष पर पड़ने वाले सबूत के भार से संबंधित पारम्परिक नियम को अत्यधिक महत्वपूर्ण मान लिया जाए, तब गंभीर अपराध करने वाले अपराधियों को सबसे अधिक लाभ होगा और समाज इसका शिकार होगा ।

....

36. इस संदर्भ में हम साक्ष्य अधिनियम की धारा 106 में उल्लिखित विधिक सिद्धांत का उचित प्रयोग कर सकते हैं जो इस प्रकार है : 'जबकि कोई तथ्य विशेषतः किसी व्यक्ति के ज्ञान में है, तब उस तथ्य को साबित करने का भार उस पर है ।'

37. इस धारा का आशय अभियुक्त के दोष को संदेह के परे साबित करने के भार से अभियोजन पक्ष को मुक्त करना नहीं है । अपितु यह धारा ऐसे मामलों को लागू होगी जिनमें अभियोजन पक्ष ऐसे तथ्यों को साबित करने में सफल हो गया हो जिनसे कतिपय अन्य तथ्यों की विद्यमानता के संबंध में युक्तियुक्त निष्कर्ष निकाला जा सके परंतु यह तब जबकि अभियुक्त अपनी विशेष जानकारी के आधार पर ऐसे तथ्यों के संबंध में कोई भी ऐसा स्पष्टीकरण देने में असफल न रहे जिससे न्यायालय भिन्न निष्कर्ष निकाल सके ।"

21. अपीलार्थियों के विद्वान् ज्येष्ठ काउंसेल श्री एस. के. जैन ने

[1] (2000) 8 एस. सी. सी. 382.

हमारा ध्यान **तोमासो ब्रूनो और एक अन्य** बनाम **उत्तर प्रदेश राज्य**[1] वाले की ओर दिलाया है और यह दलील दी है कि साक्ष्य अधिनियम की धारा 106 का अवलंब लेने के लिए अभियोजन पक्ष को घटना के समय अपीलार्थियों की उनके घर में मौजूदगी साबित करनी चाहिए । हमने सावधानीपूर्वक हमारे समक्ष उद्धृत किए गए मामले का परिशीलन किया है । यह ऐसा मामला है जिसमें होटल के सी. सी. टी. वी. फुटेज उपलब्ध कराया गया था किंतु होटल में अभियुक्तों की मौजूदगी दर्शाने के लिए प्रस्तुत नहीं किया गया और इस प्रकार अन्यत्र उपस्थित होने का यह अभिवाक् स्वीकार किया गया कि अभियुक्त 'सुबह-ए-बनारस' देखने के लिए होटल से गए थे । वर्तमान मामला एक भिन्न घटना से संबंधित है जिसमें वधु की घर में बर्बरतापूर्ण हत्या की गई है और उसके शव के टुकड़े-टुकड़े करके पार्क में फेंक दिया गया ।

22. **त्रिमुख मारुति किरकन** बनाम **महाराष्ट्र राज्य**[2] वाला मामला वर्तमान मामले जैसा है जिसमें इस न्यायालय ने निम्न अभिनिर्धारित किया है :–

> "15. जब हत्या जैसा कोई अपराध घर के अंदर गुप्त रूप से कारित किया जाता है, तब मामला सिद्ध करने का भार प्रथम रूप से निःसंदेह अभियोजन पक्ष पर आता है, किंतु उतना ठोस साक्ष्य अभियोजन पक्ष द्वारा प्रस्तुत नहीं किया जा सकता जितना ठोस पारिस्थितिक साक्ष्य के अन्य मामलों में अपेक्षित होता है । ऐसे मामले में अभियोजन पक्ष पर सबूत का भार अपेक्षाकृत कम पड़ता है । साक्ष्य अधिनियम की धारा 106 को दृष्टिगत करते हुए घर के सदस्यों पर समवर्ती भार आता है कि वे तर्कसम्मत स्पष्टीकरण दें कि अपराध किस प्रकार कारित हुआ था । घर से सदस्य मौन रहकर और बिना कोई स्पष्टीकरण दिए इस आधार पर बचकर नहीं जा सकते कि सबूत का भार पूर्ण रूप से अभियोजन पक्ष पर है और यह कि अभियुक्त का कोई कर्तव्य नहीं है कि वह कोई स्पष्टीकरण दे ।"

23. अब हम अपीलार्थियों द्वारा किए गए अन्यत्र उपस्थित होने के अभिवाक् पर विचार करेंगे कि वे घटना के समय दुकान में मौजूद थे । अपीलार्थियों की ओर से **नरेन्द्र सिंह और एक अन्य** बनाम **मध्य प्रदेश**

---

[1] (2015) 7 एस. सी. सी. 178.

[2] (2006) 10 एस. सी. सी. 681.

राज्य[1] वाले मामले का अवलंब लिया गया है जिसमें यह अभिनिर्धारित किया गया है कि ऐसे मामले में जिसमें अन्यत्र उपस्थित होने का अभिवाक् किया गया हो सबूत का भार अभियोजन पक्ष पर ही रहता है और यह भी मत व्यक्त किया गया है कि निर्दोषिता की उपधारणा करना एक मानव अधिकार है ।

24. उपरोक्त का उत्तर देते हुए मध्य प्रदेश राज्य की ओर से विद्वान् काउंसेल श्री सी. डी. सिंह ने **सुरेश और एक अन्य** बनाम **हरियाणा राज्य**[2] वाला मामला निर्दिष्ट किया जिसमें इस मुद्दे पर चर्चा करते हुए पैरा 19 में निम्न मत व्यक्त किया है :–

> "9. निःसंदेह, सबूत का भार अभियोजन पक्ष पर होता है और धारा 106 का अर्थ यह नहीं है कि अभियोजन पक्ष को अपने कर्तव्य से मुक्ति मिल जाए अपितु उक्त उपबंध उस दशा में लागू होता है जब अभियोजन पक्ष के लिए ऐसे तथ्यों को सिद्ध करना असंभव हो जाए या आनुपातिक रूप से कठिन हो जाए जो केवल अभियुक्त की जानकारी में थे .... ।"

25. निःसंदेह, जैसाकि वर्तमान मामले में अभिलेख पर साबित किया गया है कि मृतका की हत्या घर के अंदर की गई है और उसका शव पार्क में फेंका गया है और वह अपने नातेदार के यहां जाने के पश्चात् घर से लापता नहीं हुई थी जैसाकि अपीलार्थियों द्वारा दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 313 के अधीन उनके कथन में अभिवाक् किया गया था । अपीलार्थियों ने पूर्णतया मिथ्या अभिवाक् किया है ।

26. **कुलदीप सिंह और अन्य** बनाम **राजस्थान राज्य**[3] वाले मामले में पैरा 18 में इस न्यायालय की तीन न्यायाधीशों की न्यायपीठ ने यह अभिनिर्धारित किया है कि पारिस्थितिक साक्ष्य के मामले में जब अभियुक्त स्पष्टीकरण देता है और वह स्पष्टीकरण असत्य पाया जाता है, तब ऐसी स्थिति में ऐसे स्पष्टीकरण के लिए अतिरिक्त साक्ष्य की आवश्यकता होती है ताकि परिस्थितियों की शृंखला पूर्ण हो सके ।

27. **रूमी बोरा दत्त** बनाम **असम राज्य**[4] वाले मामले में इस न्यायालय

---

[1] (2004) 10 एस. सी. सी. 699.

[2] (2015) 2 एस. सी. सी. 227.

[3] (2000) 5 एस. सी. सी. 7.

[4] (2013) 7 एस. सी. सी. 417.

द्वारा ऐसा ही मत व्यक्त किया गया है और यह स्वीकार किया गया है कि परिस्थितियों की ओर अभियुक्त का ध्यान दिलाए जाने पर उसके द्वारा दिया गया मिथ्या उत्तर उसे अपराध में फंसाने वाली परिस्थिति बन जाता है अर्थात् ऐसी स्थिति मिथ्या उत्तर उसके विरुद्ध साक्ष्य की शृंखला को पूरा करने के लिए शेष कमी को दूर कर देता है ।

28. उपरोक्त का उत्तर देते हुए अपीलार्थियों ने **राजकुमार** बनाम **मध्य प्रदेश राज्य**[1] वाले मामले का अवलंब लिया जिसमें यह अभिनिर्धारित किया गया था कि मात्र मिथ्या अभिवाक् करने से अभियुक्त को अपराध से संबद्ध करने के लिए अभियोजन पक्ष पर पड़ने वाले सबूत का भार समाप्त नहीं हो जाता । ऊपर निर्दिष्ट मामले का सावधानीपूर्वक परिशीलन करने पर हमारा यह निष्कर्ष है कि यह ऐसा मामला है जिसमें दो मत संभव हैं और विचारण न्यायालय ने यह मत अपनाया है कि आरोप साबित नहीं किया जा सका है किंतु उच्च न्यायालय ने इस मत को उलट दिया है । वर्तमान मामले में दोनों निचले न्यायालयों द्वारा एक ही मत व्यक्त किया गया है कि अपीलार्थियों ने सह-अभियुक्त धनवंतरी के साथ सामान्य आशय से मृतका की हत्या कारित की है ।

29. वर्तमान मामले में अपीलार्थियों ने यह प्रतिरक्षा ली है कि अपीलार्थी जमनादास एक व्यापारी है जिसकी 5/2, मुराई मोहल्ला, संयोगिता गंज, इन्दौर पर एक दुकान है । वह दुकान पर 9.00 बजे पूर्वाह्न से 8.00-9.00 बजे अपराह्न तक रहता है । यह दलील दी गई है कि उत्तरी भारत में आमतौर पर दुकानदार अपनी दुकानों पर ही दोपहर का भोजन करते हैं और अपीलार्थी भोजन करने के लिए अपने निवास पर नहीं गए थे । यह भी अभिवाक् किया गया है कि घटना के दिन अर्थात् 16 सितंबर, 2006 को लगभग 7.30 बजे अपराह्न में अपीलार्थी जमनादास अपनी दुकान पर अपीलार्थी मनोज और छोटे पुत्र विशाल के साथ मौजूद था और उस समय उसने अपनी पत्नी धनवंतरी की टेलीफोन काल प्राप्त की जो उस समय घर पर थी और उसने यह बताया कि ऋचा **उर्फ** भूमि (मृतका) अपने नातेदार के यहां चली गई है और वह वापस नहीं आई है । यह सुनकर, जमनादास अपने दोनों पुत्रों के साथ घर पर आया और उसने अपनी पुत्रवधु को तलाश किया । यह भी अभिवाक् किया गया है कि तारीख 16 सितंबर, 2006 को 9.00 बजे अपराह्न में जब ऋचा **उर्फ** भूमि घर वापस नहीं आई, तब जमनादास अपने दोनों पुत्रों के साथ मृतका के

---

[1] (2004) 12 एस. सी. सी. 77.

लापता होने की रिपोर्ट पुलिस थाने में दर्ज कराने गया । लगभग 10.00 बजे अपराह्न में जमनादास की पत्नी धनवंतरी और उनकी अप्राप्तवय पुत्री हिना **उर्फ** माधुरी भी पुलिस थाने आई और इसके पश्चात् पुलिस ने उन्हें औपचारिक रूप से गिरफ्तार किए बिना अवैध रूप से 3 घंटे के लिए बैठाए रखा । किंतु यह प्रतिरक्षा वृत्तांत पूर्णतया अविश्वसनीय हो जाता है क्योंकि अभियोजन पक्ष ने यह साबित किया है कि भूमि **उर्फ** ऋचा की हत्या अपीलार्थियों के मकान के अंदर की गई थी और इस बात का कोई प्रश्न ही नहीं उठता है कि मृतका अपने नातेदार के यहां गई थी या वह लापता हो गई थी ।

30. अपीलार्थियों के विरुद्ध अभिलेख पर परिस्थितियों की श्रृंखला निम्न प्रकार साबित हो गई है :–

"(i) यह सिद्ध हो गया है कि भूमि **उर्फ** ऋचा (मृतका) अपीलार्थियों के मकान में तारीख 16 अप्रैल, 2006 को हुए अपने विवाह के बाद से अपीलार्थी मनोज के साथ रहती थी ।

(ii) यह भी संदेह के परे सिद्ध हो गया है कि मृतका की मृत्यु मानव वध प्रकृति की है जो तारीख 16 सितंबर, 2006 को हुई है ।

(iii) यह भी सिद्ध हो गया है कि मृतका की हत्या अपीलार्थियों के मकान में की गई है जहां पर रक्त के धब्बे पाए गए थे ।

(iv) यह भी निश्चायक रूप से सिद्ध हो गया है कि हत्या कारित किए जाने के पश्चात् मृतका का शव दो भागों में काट दिया गया था ।

(v) यह भी साबित हो गया है कि धनवंतरी (मृतका की सास) द्वारा शव पार्क में फेंका गया था और धनवंतरी को ऐसा करते हुए अभि. सा. 1 से अभि. सा. 5 द्वारा देखा गया था ।

(vi) शवपरीक्षण रिपोर्ट में उल्लिखित मृत्यु पूर्व और मृत्यु के पश्चात् आई क्षतियों का परिशीलन डा. एन. एम. उण्डा (अभि. सा. 15) के साक्ष्य के साथ करने पर संदेह के परे यह सिद्ध हो जाता है कि यह अपराध केवल एक व्यक्ति द्वारा कारित नहीं किया जा सकता था ।

(vii) मृतका के अतिरिक्त इस परिवार में कुल मिलाकर 5 सदस्य थे जिनमें तीन पुरुष (मृतका का श्वसुर जमनादास, पति मनोज और देवर विशाल) और दो महिलाएं (मृतका की सास धनवंतरी और ननद हिना **उर्फ** माधुरी) थे ।

(viii) अपीलार्थी सं. 1 की अप्राप्तवय पुत्री अर्थात् हिना **उर्फ** माधुरी (अभि. सा. 32) की आयु बहुत कम थी । जब विचारण के दौरान उसका कथन अभिलिखित किया गया था तब वह आठवीं कक्षा की छात्रा थी और इस साक्षी ने यह कथन किया है कि वह घटना के दिन स्कूल गई हुई थी और वापस आने के पश्चात् वह सो गई थी । (इस साक्षी को पक्षद्रोही घोषित किया गया है क्योंकि उसने अभियोजन पक्षकथन का समर्थन पूर्ण रूप से नहीं किया है ।) किसी भी पक्ष ने यह नहीं कहा है कि इस साक्षी ने अपराध में किसी भी प्रकार से भाग लिया है । आरोप पत्र में चार अभियुक्तों को नामित किया गया है जिनमें देवर विशाल को विचारण न्यायालय द्वारा दोषमुक्त कर दिया गया था (बल्कि उसे हत्या के अपराध से उन्मुक्त किया गया है) । इस अभियुक्त की दोषमुक्ति उच्च न्यायालय द्वारा कायम रखी गई है और उसे किसी भी व्यक्ति द्वारा चुनौती नहीं दी गई है । शेष अभियुक्तों ने अपील फाइल की है जिनमें सास धनवंतरी और अपीलार्थी हैं ।

(ix) अपीलार्थी यह साबित करने में असफल रहे हैं कि मृतका की मृत्यु किस प्रकार हुई जोकि विशेषकर उनकी जानकारी में थी ।

(x) किसी भी पक्ष का यह पक्षकथन नहीं है कि उस मकान में कोई व्यक्ति बाहर से आया था ।

(xi) अपीलार्थियों द्वारा पुलिस में कोई भी रिपोर्ट मृतका की मानव वध से की गई मृत्यु के संबंध में नहीं कराई गई है जोकि अपीलार्थी मनोज की पत्नी और अपीलार्थी जमनादास की पुत्र वधु थी जैसाकि ऊपर कहा गया है ।

(xii) दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 313 के अधीन दिए गए कथनों में अपीलार्थियों द्वारा मिथ्या स्पष्टीकरण दिए गए हैं कि मृतका अपने नातेदार के यहां गई थी और वहां से लापता हो गई जोकि अभिलेख पर अपीलार्थियों के विरुद्ध साक्ष्य की शृंखला को पूरा करने के लिए एक अतिरिक्त कड़ी है ।"

31. अपीलार्थियों के विरुद्ध परिस्थितियों की उपर्युक्त शृंखला पूर्ण हो गई है और प्रतिरक्षा पक्ष की यह कहानी कि वे दुकान पर थे, स्वीकार नहीं की जा सकती । अतः, अभिलेख पर प्रस्तुत सम्पूर्ण साक्ष्य का पुनर्मूल्यांकन करने के पश्चात्, हम निचले न्यायालयों द्वारा निकाले गए निष्कर्षों से सहमत हैं कि अपीलार्थी जमनादास और मनोज ने धनवंतरी के साथ मिलकर

सामान्य आशय से भूमि **उर्फ** ऋचा की बर्बरतापूर्ण हत्या कारित की है । यह ऐसा मामला है जिसमें किए गए आक्षेपित आदेश में कोई भी हस्तक्षेप करना उचित नहीं होगा ।

32. ऊपर चर्चा किए गए कारणों के आधार पर ये अपीलें खारिज किए जाने योग्य हैं और तद्नुसार खारिज की जाती हैं ।

अपीलें खारिज की गईं ।

अस./पां.

[2017] 2 उम. नि. प. 29

धारीवाल इंडस्ट्रीज लिमिटेड

बनाम

किशोर वधवानी और अन्य

6 सितंबर, 2016

न्यायमूर्ति दीपक मिश्रा और न्यायमूर्ति आदर्श कुमार गोयल

दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 (1974 का 2) – धारा 302 और 301 – अभियोजन चलाने की अनुज्ञा – मजिस्ट्रेट के पास स्वतंत्र रूप से अभियोजन चलाने के लिए परिवादी को अनुज्ञा देने की शक्ति है – धारा 301 के अधीन इत्तिला देने वाले या प्राइवेट पक्षकार की अभियोजन चलाने की भूमिका सेशन विचारण के समक्ष सीमित है – धारा 302 का फायदा लेने के लिए परिवादी को लिखित आवेदन फाइल करना चाहिए ।

तथ्य जो वर्तमान अपील के न्यायनिर्णयन के प्रयोजन के लिए कथित किए जाने अपेक्षित हैं, वे इस प्रकार हैं कि अपीलार्थी ने दंड संहिता की धारा 109, 193, 196, 200, 465, 467 और 471 के साथ पठित धारा 120ख के अधीन दंडनीय अपराधों के लिए दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 200 के अधीन परिवाद फाइल किया था । विद्वान् मजिस्ट्रेट ने दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 156(3) के अधीन शक्ति का प्रयोग करते हुए अभिकथनों पर अन्वेषण करने के लिए पुलिस को निदेश दिया था । अन्वेषक अभिकरण ने प्रथम इत्तिला रिपोर्ट रजिस्ट्रीकृत की और तत्पश्चात् न्यायालय के समक्ष आरोप पत्र प्रस्तुत किया और इसके पश्चात् सी. सी. सं. 927/पी. डब्ल्यू./2007 के रूप में मामले को रजिस्ट्रीकृत किया गया था । आरोप पत्र

फाइल किए जाने के पश्चात् अभियुक्त व्यक्तियों ने उन्मुक्त होने की ईप्सा करते हुए दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 239 के अधीन आवेदन फाइल किया था । इस प्रक्रम पर अपीलार्थी ने सहायक लोक अभियोजक के साथ सुने जाने के लिए अनुज्ञा चाहने हेतु विद्वान् मजिस्ट्रेट के समक्ष मौखिक अनुरोध किया । विद्वान् मजिस्ट्रेट ने पक्षकारों के विद्वान् काउंसेल को सुनने के पश्चात् यह अवलोकन किया कि मूल परिवादी कार्रवाइयों में असंबद्ध नहीं है और इसलिए आरोप विरचित करने के प्रक्रम पर भी उसके पास सुने जाने का अधिकार है, तद्नुसार अनुज्ञा प्रदान दी गई । वर्तमान अपील में मुंबई उच्च न्यायालय द्वारा 2010 की दांडिक रिट याचिका सं. 3438 में तारीख 13 फरवरी, 2012 को पारित किए गए आदेश को आक्षेपित किया गया है । अपीलार्थी द्वारा उच्च न्यायालय के निर्णय और आदेश से व्यथित होकर उच्चतम न्यायालय में विशेष इजाजत याचिका फाइल की । उच्चतम न्यायालय द्वारा दांडिक अपील का निपटान करते हुए,

अभिनिर्धारित – इत्तिला देने वाले या प्राइवेट पक्षकार की भूमिका सेशन न्यायालय में किसी मामले में अभियोजन चलाने के दौरान सीमित है । उसके द्वारा नियुक्त किए गए काउंसेल को लोक अभियोजक के निदेशों के अधीन अपना कार्य करना अपेक्षित है । जहां तक दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 302 का संबंध है, मजिस्ट्रेट को यह शक्ति प्रदत्त की गई है कि परिवादी को स्वतंत्र अभियोजन चलाने के लिए अनुज्ञा प्रदान कर सके । परन्तु दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 302 के अधीन कोई आवेदन फाइल नहीं किया गया था, इसलिए, अनुरोध पर सुनवाई किए जाने को निर्बंधित किया गया था जो दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 301 के अधीन अनुबंधित है । अनुज्ञा चाहने के लिए आवेदन फाइल किया जाना चाहिए था । न्यायालय की उत्सुकता इस बात पर विचार करने की है और न्यायालय यह सोचने के लिए बाध्य है कि जब परिवादी फायदा लेना चाहता है जैसा कि दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 302 के अधीन मामले पर लिखित आवेदन फाइल करना चाहिए था ताकि मजिस्ट्रेट अपनी अधिकारिता का प्रयोग कर सके । (पैरा 18 और 19)

निर्दिष्ट निर्णय

		पैरा
[2014]	(2014) 16 एस. सी. सी. 623 : **संदीप कुमार बाफना** बनाम **महाराष्ट्र राज्य और एक अन्य** ;	6

[2001] (2001) 3 एस. सी. सी. 462 :
जे. के. इंटरनेशनल बनाम **राज्य और अन्य (राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र, दिल्ली सरकार)** ; 6

[1999] (1999) 7 एस. सी. सी. 467 :
शिव कुमार बनाम **हुकुम चंद और एक अन्य** । 6

अपीली (दांडिक) अधिकारिता : 2016 की दांडिक अपील सं. 859.

2010 की दांडिक रिट याचिका सं. 3438 में मुंबई उच्च न्यायालय द्वारा तारीख 13 फरवरी, 2012 को पारित किए गए निर्णय और आदेश के विरुद्ध दांडिक अपील ।

अपीलार्थी की ओर से सर्वश्री के. टी. एस. तुलसी और पी. एच. पारिख, ज्येष्ठ अधिवक्ता, ललित चौहान, राजकमल, विशाल प्रसाद, (सुश्री) रतिका सेठी, के. राज और अभिषेक विनोद देशमुख (मैसर्स पारिख एंड कंपनी) अधिवक्तागण

प्रत्यर्थियों की ओर से सर्वश्री डा. ए. एम. सिंघवी, विकास सिंह, ज्येष्ठ अधिवक्ता, (श्रीमती) प्रिया पुरी, अमित भंडारी, अनिल नायडू और (सुश्री) चूर्वी एम., अधिवक्तागण

न्यायालय का निर्णय न्यायमूर्ति दीपक मिश्रा ने दिया ।

न्या. मिश्रा – इजाजत दी जाती है ।

2. विशेष इजाजत मंजूर किए जाने के पश्चात् वर्तमान अपील फाइल की गई है जिसमें मुंबई उच्च न्यायालय द्वारा 2010 के दांडिक रिट याचिका सं. 3438 में तारीख 13 फरवरी, 2012 को पारित किए गए आदेश को आक्षेपित किया गया है जिसके द्वारा विद्वान् एकल न्यायाधीश ने तारीख 30 अगस्त, 2010 के आदेश को उपान्तरित किया जिसके अधीन अपर मुख्य मेट्रोपोलिटन मजिस्ट्रेट, आठवां न्यायालय, इसप्लान्दे, मुंबई ने सी. सी. सं. 927/पी. डब्ल्यू./2007 में यह विचार अभिव्यक्त करने के लिए दंड प्रक्रिया संहिता (जिसे संक्षेप में "द.प्र.सं." कहा गया है) की धारा 349 के अधीन आरोप विरचित करने के प्रक्रम पर सुने जाने के लिए अपीलार्थी को अनुज्ञात किया था कि दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 301 के अधीन

परिवादी की भूमिका सीमित है और उसे न्यायालय को प्रत्यक्ष रूप से संबोधित करने के लिए अभियोजन पर नियंत्रण रखने हेतु अनुज्ञात नहीं किया जा सकता । परन्तु उसे मामले के आरोप में सहायक लोक अभियोजक के निदेशों के अधीन कार्य करना चाहिए ।

3. तथ्य जो वर्तमान अपील के न्यायनिर्णयन के प्रयोजन के लिए कथित किए जाने अपेक्षित हैं, वे इस प्रकार हैं कि अपीलार्थी ने दंड संहिता की धारा 109, 193, 196, 200, 465, 467 और 471 के साथ पठित धारा 120ख के अधीन दंडनीय अपराधों के लिए दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 200 के अधीन परिवाद फाइल किया था । विद्वान् मजिस्ट्रेट ने दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 156(3) के अधीन शक्ति का प्रयोग करते हुए अभिकथनों पर अन्वेषण करने के लिए पुलिस को निदेश दिया था । अन्वेषक अभिकरण ने प्रथम इत्तिला रिपोर्ट रजिस्ट्रीकृत की और तत्पश्चात् न्यायालय के समक्ष आरोप पत्र प्रस्तुत किया और इसके पश्चात् सी. सी. सं. 927/पी. डब्ल्यू./2007 के रूप में मामले को रजिस्ट्रीकृत किया गया था ।

4. आरोप पत्र फाइल किए जाने के पश्चात् अभियुक्त व्यक्तियों ने उन्मुक्त होने की ईप्सा करते हुए दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 239 के अधीन आवेदन फाइल किया था । इस प्रक्रम पर अपीलार्थी ने सहायक लोक अभियोजक के साथ सुने जाने के लिए अनुज्ञा चाहने हेतु विद्वान् मजिस्ट्रेट के समक्ष मौखिक अनुरोध किया । विद्वान् मजिस्ट्रेट ने पक्षकारों के विद्वान् काउंसेल को सुनने के पश्चात् यह अवलोकन किया कि मूल परिवादी कार्रवाइयों में असंबद्ध नहीं है और इसलिए आरोप विरचित करने के प्रक्रम पर भी उसके पास सुने जाने का अधिकार है, तद्नुसार अनुज्ञा प्रदान की गई ।

5. पूर्वोक्त आदेश से असंतुष्ट होकर अभियुक्त-प्रत्यर्थियों ने उच्च न्यायालय के समक्ष दांडिक रिट याचिका फाइल की । उच्च न्यायालय ने दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 301 तथा इस न्यायालय की कतिपय नजीरों का उल्लेख किया और यह अभिनिर्धारित किया जो इस प्रकार है :–

> "निस्संदेह, प्रथम इत्तिला देने वाले ने पहले की अपेक्षा अत्यधिक भूमिका निभाई है जैसा कि पूर्ववर्ती पैराओं में पहले ही देखा गया है । वास्तव में याचिका के परिशीलन से यह दर्शित होता है कि याचियों ने प्रथम इत्तिला देने वालों के साथ सहभागीदारी करने से इनकार करने की भी इच्छा व्यक्त नहीं की है । वे दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 301 के अधीन अपनी भूमिका को केवल सीमित रूप से निभाना चाहते हैं ।

उन्मुक्त होने के लिए दिए गए आवेदन का परिणाम अभियोजन चलने के दौरान आंशिक या पूर्णतया उसके समाप्त होने पर निर्भर हो सकता है । दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 173(2) के अधीन मजिस्ट्रेट द्वारा पुलिस रिपोर्ट पर विचार करने के प्रक्रम की भांति इस प्रक्रम पर विचार करना और अभियुक्त व्यक्ति द्वारा फाइल किए गए परिवाद को अभिखंडित करने के लिए कार्रवाइयां करने का प्रक्रम समान है । अतः प्रथम इत्तिला देने वाला इस बात पर विचार करने के लिए संभवतः हितबद्ध है कि मामला विचारण के प्रक्रम पर पहुंचे और साक्ष्य अभिलिखित करने के पश्चात् उसका निपटारा किया जाए । यदि न्यायिक निर्णयों से पूर्ववर्ती दो प्रक्रमों पर उसके लिए सुनवाई मंजूर की जाती है, तो उसे उन्मुक्त किए जाने के प्रक्रम पर भी सुनवाई का अवसर प्रदान किया जा सकता है यद्यपि, दंड प्रक्रिया संहिता उस प्रक्रम पर उसे सुनवाई का अवसर देने के लिए कोई उपबंध नहीं करता है । यदि प्रथम इत्तिला देने वाला न्यायालय के समक्ष हाजिर होता है और आवेदन में भागीदारी करने की वांछा रखता है तो अवसर देने से उसे इनकार नहीं किया जा सकता । अब दूसरा प्रश्न यह उद्भूत होता है कि प्रथम इत्तिला देने वाले को सुने जाने की प्रकृति क्या होगी । लोक अभियोजक को सुने जाने की प्रकृति से सुनवाई की स्वतंत्र प्रकृति होगी या यह सुनवाई लोक अभियोजक के माध्यम से की जाएगी । मेरी यह राय है कि एन्थोनी डीसूजा वाले मामले में वर्णित एक ही कारणों पर दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 301 के अधीन उसकी भूमिका सीमित होगी और लोक अभियोजक की भूमिका को केन्द्रित किया जाएगा । उसे इस बात के लिए अनुज्ञात नहीं किया जा सकता कि वह प्रत्यक्ष रूप से न्यायालय को संबोधित करने के लिए अनुज्ञात किए जाने पर अभियोजन पर नियंत्रण रखे । अतः, यह याचिका आंशिक रूप से मंजूर की जाती है और आक्षेपित आदेश को इस सीमा तक उपान्तरित किया जाता है कि प्रत्यर्थी सं. 2 द्वारा नियुक्त किया गया काउंसेल मामले के भारसाधक सहायक लोक अभियोजक के निदेशों के अधीन कार्य करेगा ।"

6. कानूनी औचित्य और उच्च न्यायालय के दृष्टिकोण को प्रश्नगत करते हुए अपीलार्थी की ओर से हाजिर होने वाले विद्वान् ज्येष्ठ काउंसेल श्री के. टी. एस. तुलसी ने यह निवेदन किया है कि माननीय उच्च न्यायालय ने दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 301 का अवलंब लेकर गंभीर गलती की है तथा दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 302 में अन्तर्निहित नियमों की पूर्णतया उपेक्षा की है । श्री तुलसी के अनुसार किसी मजिस्ट्रेट और सेशन विचारण के समक्ष विचारण के बीच विभेद है और दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 302 के पास

मजिस्ट्रियल विचारण को लागू करने की अनन्य अधिकारिता है और इसलिए, परिवादी यदि उसे न्यायालय द्वारा अनुज्ञात किया जाता है तो वह प्रत्यक्ष रूप से न्यायालय को संबोधित कर सकता है । उक्त निवेदन पर बल देते हुए उन्होंने **जे. के. इंटरनेशनल** बनाम **राज्य और अन्य (राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र, दिल्ली सरकार)**[1] और **संदीप कुमार बाफना** बनाम **महाराष्ट्र राज्य और एक अन्य**[2] वाले मामलों की नजीरों की हमारे समक्ष सिफारिश की ।

7. श्री विकास सिंह, विद्वान् ज्येष्ठ काउंसेल ने यह तर्क दिया कि दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 301 मामलों के सभी प्रवर्गों पर लागू होती है और इसलिए परिवादी लोक अभियोजक के निदेशों के अधीन न्यायालय की सहायता करने का हकदार है । इसके अलावा, श्री सिंह ने यह निवेदन किया कि उसके पास न्यायालय से अनुज्ञा लेकर लिखित तर्क फाइल करने के लिए केवल एक दूसरी स्वतंत्रता है । श्री सिंह ने पुरजोर यह भी तर्क दिया कि अपीलार्थी ने दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 302 के अधीन मामले को संचालित करने की कभी भी कोई ईप्सा नहीं की थी जैसा कि परिकल्पित है, इस बारे में कोई आवेदन फाइल नहीं किया गया था इसलिए, उच्च न्यायालय के आदेश के साथ फाइल करने में कोई दोष नहीं हो सकता । यह भी निवेदन किया गया जैसा कि तथ्यों से प्रकट होता है कि विद्वान् मजिस्ट्रेट ने मौखिक निवेदन के आधार पर प्रार्थना को मंजूरी दी जो दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 301 के अधीन प्रकट है और ऐसी स्थिति में दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 302 के फायदे लेने के लिए उसे कोई शिथिलता नहीं दी जानी चाहिए । इसके अतिरिक्त श्री सिंह ने यह भी वर्णन किया कि **जे. के. इंटरनेशनल** (उपरोक्त) और **शिव कुमार** बनाम **हुकुम चंद और एक अन्य**[3] वाले मामलों के निर्णयों में थोड़ी बहुत असामंजस्यता है जिनका समाधान करना जरूरी है ।

8. दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 301 इस प्रकार है :–

"लोक अभियोजकों द्वारा हाजिरी – (1) किसी मामले का भारसाधक लोक अभियोजक या सहायक लोक अभियोजक किसी न्यायालय में, जिसमें वह मामला जांच, विचारण या अपील के अधीन है, किसी लिखित प्राधिकार के बिना हाजिर हो सकता है और अभिवचन कर सकता है ।

---

[1] (2001) 3 एस. सी. सी. 462.

[2] (2014) 16 एस. सी. सी. 623.

[3] (1999) 7 एस. सी. सी. 467.

(2) किसी ऐसे मामले में यदि कोई प्राइवेट व्यक्ति किसी न्यायालय में किसी व्यक्ति को अभियोजित करने के लिए किसी अभिवक्ता को अनुदेश देता है तो मामले का भारसाधक लोक अभियोजक या सहायक लोक अभियोजक अभियोजन का संचालन करेगा और ऐसे अनुदिष्ट अभिवक्ता उसमें लोक अभियोजक या सहायक लोक अभियोजक के निदेश के अधीन कार्य करेगा और न्यायालय की अनुज्ञा से उस मामले में साक्ष्य की समाप्ति पर लिखित रूप से तर्क पेश कर सकेगा ।"

9. **शिव कुमार** (उपरोक्त) वाले मामले में न्यायालय ने स्पष्ट रूप से अभिनिर्धारित किया है कि उक्त उपबंध मजिस्ट्रेट तथा सेशन न्यायालय के समक्ष विचारणों पर लागू होता है ।

10. दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 302, जो वर्तमान मामले के लिए सुसंगत है, जिसका परिशीलन करने पर इस प्रकार है :–

"अभियोजन संचालन करने की अनुज्ञा – (1) किसी मामले की जांच या विचारण करने वाला कोई मजिस्ट्रेट निरीक्षक की पंक्ति से नीचे के पुलिस अधिकारी से भिन्न किसी भी व्यक्ति द्वारा अभियोजन के संचालित किए जाने की अनुज्ञा दे सकता है ; किन्तु महाधिवक्ता या सरकारी अधिवक्ता या लोक अभियोजक या सहायक लोक अभियोजक से भिन्न कोई व्यक्ति ऐसी अनुज्ञा के बिना ऐसा करने का हकदार न होगा :

परन्तु यदि पुलिस के किसी अधिकारी ने उस अपराध के अन्वेषण में, जिसके बारे में अभियुक्त का अभियोजन किया जा रहा है, भाग लिया है तो अभियोजन का संचालन करने की उसे अनुज्ञा न दी जाएगी ।

(2) अभियोजन का संचालन करने वाला कोई व्यक्ति स्वयं या अभिवक्ता द्वारा ऐसा कर सकता है ।"

11. **शिव कुमार** (उपरोक्त) वाले मामले में उक्त उपबंध का निर्वचन किया गया है । न्यायालय द्वारा उस पर यह नियम व्यक्त किया गया है :–

"8. यह भी ध्यान दिया जाना चाहिए कि वाद वाला उपबंध केवल मजिस्ट्रेट न्यायालयों के लिए आशयित है । यह मजिस्ट्रेट को इस बात के लिए समर्थ बनाता है कि अभियोजन चलाने के लिए किसी व्यक्ति को अनुज्ञात किया जाता है । केवल इसमें यह अनुवृद्धि

की गई है कि कोई मजिस्ट्रेट निरीक्षक की पंक्ति से नीचे के पुलिस अधिकारी को ऐसी अनुज्ञा नहीं दे सकता । ऐसे व्यक्ति का लोक अभियोजक होना अपरिहार्य रूप से जरूरी नहीं है ।

9. मजिस्ट्रेट के न्यायालय में कोई व्यक्ति (निरीक्षक की पंक्ति से नीचे किसी पुलिस अधिकारी को छोड़कर) अभियोजन का संचालन कर सकता है, यदि मजिस्ट्रेट ऐसा करने के लिए उसे अनुज्ञात करता है । संबंधित व्यक्ति के लिए एक बार ऐसी अनुज्ञा प्रदान की जाती है तो वह मजिस्ट्रेट के न्यायालय में अपनी ओर से अभियोजन चलाने के लिए किसी काउंसेल को नियुक्त कर सकता है ।

* * * * *

11. पुरानी दंड प्रक्रिया संहिता, 1898 में धारा 270 के समरूप उपबंध अन्तर्विष्ट किया गया है । लोक सेवक से यह अभिप्रेत है कि धारा 24 के अधीन नियुक्त किया गया कोई व्यक्ति और उसमें लोक अभियोजक, [संहिता की धारा 2(यू.) देखिए] के निदेशों के अधीन कार्य करने वाला कोई भी व्यक्ति सम्मिलित है ।

12. पूर्वोक्त उपबंधों की पृष्ठभूमि में हमें संहिता की धारा 301 के तात्पर्य को समझना पड़ेगा । संहिता के उत्तरोत्तर उपबंध से भिन्न जिसे लागू करना मजिस्ट्रेट न्यायालयों को परिरुद्ध करता है, यह विशिष्ट धारा दांडिक अधिकारिता के सभी न्यायालयों पर प्रयोज्य है । धारा 301 में ऐसे विभेद को प्रकट करने से शब्दों के नियोजन से किसी न्यायालय से प्रभेद किया जा सकता है । उत्तरोत्तर धारा में किए गए उपबंध को ध्यान में रखते हुए, जैसा कि धारा 301(2) में मजिस्ट्रेट न्यायालयों के लिए बल दिया गया है, और इसे इस भांति समझा जाना चाहिए क्योंकि यह बिना किसी अपवाद के सभी अन्य न्यायालयों पर भी लागू है । प्रथम उपधारा लोक अभियोजक को इस बात के लिए सशक्त करती है कि वह बिना किसी लिखित प्राधिकार के न्यायालय में अभिवाक् करे, बशर्ते कि वह मामले का भारसाधक हो । दूसरी उपधारा जिसका अपीलार्थी द्वारा अवलंब लेने की ईप्सा की गई है, किसी प्राइवेट पक्षकार द्वारा नियुक्त किए गए काउंसेल पर अंकुश लगाने जैसा है । इससे न्यायालय में लोक अभियोजक के निदेशों के अधीन ऐसे अभियोजन के दौरान न्यायालय में उसकी कार्य करने की भूमिका को सीमित करना है । केवल एक ऐसी अन्य स्वतंत्रता, जो विचारण में साक्ष्य की समाप्ति के पश्चात् लिखित दलील प्रस्तुत करने के लिए एक संभव प्रयोग हो सकता है परन्तु

ऐसा केवल तब हो सकता है यदि ऐसा करने के लिए उसे न्यायालय अनुज्ञा देती है ।"

12. यहां पर यह भी ध्यान दिया जाना चाहिए कि उक्त विनिश्चय में यह भी अभिनिर्धारित किया गया है कि दंड प्रक्रिया संहिता की स्कीम में विधान-मंडल का यह स्पष्ट आशय है कि सेशन न्यायालय में अभियोजन लोक अभियोजक से भिन्न किसी व्यक्ति द्वारा संचालित नहीं किया जा सकता । इसका कारण यह है कि विधान-मंडल ने राज्य को यह स्मरण दिलाया है कि सेशन न्यायालय में अभियुक्त के विचारण करने के दौरान ऋजुता के लिए पूर्णतया समरूपता की नीति होनी चाहिए । न्यायालय ने यह भी मत व्यक्त किया है कि लोक अभियोजक से यह आशा नहीं की जाती है जिससे यह दर्शित हो कि मामले में किसी प्रकार अभियुक्त की दोषिता के संबंध में मामले के निष्कर्ष में पहुंचने के लिए किसी किस्म की कोई लालसा प्रकट करने या सत्य तथ्यों को ध्यान में लाए जाने की आशा नहीं की जाती है ।

13. **जे. के. इंटरनेशनल** (उपरोक्त) वाले मामले में तीन न्यायाधीशों की न्यायपीठ ने दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 302 के ब्यौरे का उल्लेख किया था । उस संदर्भ में यह राय दी गई थी कि प्राइवेट व्यक्ति, जिसे मजिस्ट्रेट के न्यायालय में अभियोजन चलाने के लिए अनुज्ञात किया जाता है, अपनी ओर से न्यायालय में आवश्यकता के अनुरूप पैरवी करने के लिए किसी काउंसेल को नियुक्त कर सकता है । यदि कोई प्राइवेट व्यक्ति किसी अपराध से व्यथित है, जो उसके विरुद्ध किया गया है या किसी व्यक्ति के विरुद्ध किया गया है, जिसमें वह हितबद्ध है, तब वह मजिस्ट्रेट को समावेदन कर सकता है और अपनी ओर से अभियोजन चलाने के लिए अनुज्ञा की ईप्सा कर सकता है । इस न्यायालय ने यह मत व्यक्त करते हुए आगे कार्रवाई की है कि न्यायालय इस बात के लिए स्वतंत्र है कि उसके अनुरोध पर विचार करे और यदि न्यायालय यह सोचता है कि न्याय हित में ऐसी अनुज्ञा प्रदान करना उत्तम होगा तब न्यायालय सामान्यतया ऐसी अनुज्ञा प्रदान करेगा । आगे यह भी स्पष्ट करते हुए यह अभिनिर्धारित किया गया कि इसका व्यापक विस्तार मजिस्ट्रेट के न्यायालय तक सीमित है, ऐसे प्राइवेट व्यक्ति के अधिकार, जो सेशन न्यायालय में अभियोजन चलाने के लिए भागीदारी प्रदान करता है, उसे अत्यधिक निर्बंधित किया गया है और ऐसा अधिकार लोक अभियोजक के नियंत्रण के अध्यधीन है ।

14. दोनों विनिश्चयों का सावधानीपूर्वक परिशीलन करने पर हम इन दोनों के विश्लेषण करने या न्यायालय द्वारा अन्ततः पहुंचे गए निष्कर्ष में

किसी किस्म की विलक्षणता नहीं पाते हैं । हम इस फायदे की ओर भी ध्यान दिला सकते हैं कि **शिव कुमार** (उपरोक्त) वाले मामले में न्यायालय ने दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 301 की परिधि पर विचार किया था और उस संदर्भ में यह मत व्यक्त किया कि दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 302 केवल मजिस्ट्रेट न्यायालय के लिए आशयित है । **जे. के. इन्टरनेशनल** (उपरोक्त) वाले मामले में प्रकट अंश पर हमने इसमें पूर्व में यह उत्कथित किया है जिससे यह स्पष्ट है कि न्यायालय ने यह मत अभिव्यक्त किया है कि कोई प्राइवेट व्यक्ति मजिस्ट्रेट के न्यायालय में अभियोजन चलाने के लिए अनुज्ञात किया जा सकता है और अपनी ओर से आवश्यक कार्रवाई करने के लिए किसी काउंसेल को नियुक्त कर सकता है । इसमें आगे यह मत व्यक्त किया गया कि जब किसी प्राइवेट व्यक्ति द्वारा अभियोजन चलाने के लिए अनुज्ञा की ईप्सा की गई है तो न्यायालय इस बात के लिए स्वतंत्र है कि उसके इस अनुरोध पर विचार करे । न्यायालय यह कहने के लिए भी अग्रसर हुआ है कि न्यायालय को यह राय बनानी चाहिए कि न्याय हित का लक्ष्य उत्तम होना चाहिए और ऐसी अनुज्ञा प्रदान करना उत्तम है और सामान्यतया, ऐसी अनुज्ञा प्रदान की जाएगी । इस प्रकार, इस राय में कोई मतभेद नहीं है ।

15. **संदीप कुमार बाफना** (उपरोक्त) वाले मामले में न्यायालय ने दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 439 के अधीन जमानत के आदेश को अस्वीकार करने के बारे में विचार किया था और "अभिरक्षा" से क्या अभिप्रेत है । यद्यपि, संदर्भ भिन्न-भिन्न था फिर भी यह ध्यान देने योग्य है कि न्यायालय ने अभियोजन में लोक अभियोजक और प्राइवेट काउंसेल की भूमिका का उल्लेख किया है तथा इस बारे में यह अभिनिर्धारित किया गया जो निम्नलिखित है :–

> " ....शिव कुमार **बनाम** हुकुम चंद (उपरोक्त) वाले मामले में यह प्रश्न उद्भूत हुआ है कि जो अन्य तीन न्यायाधीशों की पीठ के समक्ष प्रकट था कि क्या व्यथित व्यक्ति के पास लोक अभियोजक की उपस्थिति के बावजूद अभियोजन चलाने के लिए अपने स्वयं के काउंसेल को नियुक्त करने का अधिकार है । इस न्यायालय ने सम्यक् रूप से यह ध्यान दिलाया है कि ठोस अभियोजन चलाने के लिए लोक अभियोजक की भूमिका को विधि में कायम रखा गया है और प्राइवेट वकील की मौजूदगी से ऋजुता और निष्पक्षता को दुर्बल बनाता है जो प्रत्येक उचित अभियोजन में विभेद को प्रश्न चिह्नित करेगा । उस मामले में व्यथित पक्षकार द्वारा अधिवक्ता को नियुक्त किया गया था

जिससे साक्षी की प्रतिपरीक्षा करने में जोखिम उठाना पड़ा तथा जिसे विचारण न्यायालय द्वारा मंजूर किया गया था परन्तु उच्च न्यायालय द्वारा पुनरीक्षण में उसे विपरीत करार दर्शाया गया था और उच्च न्यायालय ने साक्ष्य समाप्ति के पश्चात् लिखित तर्क के निवेदन को ही अनुज्ञात किया । उच्च न्यायालय के मत को कायम रखते हुए इस न्यायालय द्वारा यह मत व्यक्त किया गया कि मजिस्ट्रेट के समक्ष कोई व्यक्ति (निरीक्षक की पंक्ति से नीचे किसी पुलिस अधिकारी के सिवाय) अभियोजन का संचालन कर सकता है, परन्तु ऐसी शिथिलता दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 225 के फलस्वरूप सेशन न्यायालय में अननुज्ञेय है जिसमें तर्क संगत रूप से यह कथन किया गया है कि अभियोजन लोक अभियोजक द्वारा संचालित किया जाएगा .... ।"

16. विद्वान् ज्येष्ठ काउंसेल श्री तुलसी ने पूर्वोक्त नजीर की ओर प्रेरणा देते हुए उसका ध्यान दिलाया क्योंकि **शिव कुमार** (उपरोक्त) वाले मामले का उक्त निर्णय में उल्लेख किया गया है इस न्यायालय ने दो विचारणों अर्थात् सेशन विचारण और मजिस्ट्रेट न्यायालय के समक्ष विचारण लोक अभियोजक की भूमिका तथा परिवादी की भूमिका के बीच विभेद किया है ।

17. जहां तक वर्तमान मामले की तथ्यात्मक गणना का संबंध है, यह ध्यान देने योग्य है कि विचारण न्यायालय ने मौखिक अनुरोध के आधार पर अपीलार्थी को इस बात के लिए अनुज्ञात किया गया था कि उसे लोक अभियोजक के साथ सुना जाएगा । विद्वान् ज्येष्ठ काउंसेल श्री तुलसी ने ऐसा अनुरोध किया जो विचारण मजिस्ट्रेट के समक्ष किया गया था और उसे इस प्रक्रम पर कोई शिकायत नहीं थी परन्तु उच्च न्यायालय के हस्तक्षेप के कारण शिकायत प्रकट हुई है कि वह मामले का भारसाधक सहायक लोक अभियोजक के निदेशों के अधीन ही भागीदारी कर सकता है जिसे दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 301 के अधीन माना गया है ।

18. हमने दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 301 और 302 के बीच विभेद का पहले ही स्पष्टीकरण दिया है । इत्तिला देने वाले या प्राइवेट पक्षकार की भूमिका सेशन न्यायालय में किसी मामले में अभियोजन चलाने के दौरान सीमित है । उसके द्वारा नियुक्त किया गया काउंसेल लोक अभियोजक के निदेशों के अधीन उसका कार्य करना अपेक्षित है । जहां तक दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 302 का संबंध है, मजिस्ट्रेट को यह शक्ति प्रदत्त की गई है कि परिवादी को स्वतंत्र अभियोजन चलाने के लिए अनुज्ञा प्रदान की जाए ।

19. हम श्री तुलसी द्वारा अनुरोध में किए गए अनुतोष पर विचार

करने के लिए अग्रसर होते हैं परन्तु दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 302 के अधीन कोई आवेदन फाइल नहीं किया गया था और, इसलिए, अनुरोध पर सुनवाई किए जाने को निर्बंधित किया गया था जो दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 301 के अधीन अनुबंधित है । प्रत्यर्थियों की ओर से हाजिर होने वाले विद्वान् ज्येष्ठ काउंसेल श्री सिंह ने यह दलील दी है कि अनुज्ञा चाहने के लिए आवेदन फाइल किया जाना चाहिए था । हमारी उत्सुकता इस बात पर विचार करने की है और हम यह सोचने के लिए बाध्य हैं कि जब परिवादी फायदा लेना चाहता है जैसा कि दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 302 के अधीन उपबंधित है तो उसे **जे. के. इन्टरनेशनल** (उपरोक्त) वाले मामले के निबंधनों में मामले पर लिखित आवेदन फाइल करना चाहिए था ताकि मजिस्ट्रेट अपनी अधिकारिता का प्रयोग कर सकता जो उस पर निहित है तथा अध्यपेक्षित राय को प्रकट करता है ।

20. अपीलार्थी की ओर से हाजिर होने वाले विद्वान् ज्येष्ठ काउंसेल श्री तुलसी ने यह निवेदन किया है कि वह विद्वान् मजिस्ट्रेट के समक्ष आवेदन फाइल करने का आशय रखते हैं और इसलिए इस बारे में स्वतंत्रता प्रदान की जाए । श्री सिंह ने इस बात का गंभीरतापूर्वक विरोध किया है । यदि अपीलार्थी को ऐसी सलाह दी जाती है तो वह इस बात के लिए स्वतंत्र होगा कि विद्वान् मजिस्ट्रेट के समक्ष दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 302 के अधीन आवेदन फाइल करे । यहां पर स्पष्ट रूप से यह कथन किया जा सकता है कि उक्त उपबंध आरोप विरचित करने के प्रक्रम सहित प्रत्येक प्रक्रम पर लागू होगा क्योंकि परिवादी को मजिस्ट्रेट द्वारा अभियोजन चलाने के लिए अनुज्ञात किया है । हमने विधि की स्थिति को भी स्पष्ट किया है । यदि इस संबंध में कोई आवेदन फाइल किया जाता है तो उसका गुणागुण के आधार पर विचार किया जाएगा । यह कहना व्यर्थ है कि विद्वान् मजिस्ट्रेट द्वारा पारित आदेश जिस पर उच्च न्यायालय दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 302 के अधीन फाइल किए जाने वाले आवेदन पर विचार करते हुए उसमें कोई रुकावट नहीं डालेगा । यहां पर यह उल्लेख करना आवश्यक है कि हमने फाइल करने वाले आवेदन पर गुणागुण पर कोई राय व्यक्त नहीं की है ।

21. तद्नुसार, दांडिक अपील का निपटान किया जाता है ।

दांडिक अपील का निपटान किया गया ।

आर्य

गिरीश रघुनाथ मेहता

बनाम

सीमा-शुल्क निरीक्षक और एक अन्य

7 सितंबर, 2016

न्यायमूर्ति सी. नागप्पन और न्यायमूर्ति आदर्श कुमार गोयल

स्वापक ओषधि और मन:प्रभावी पदार्थ अधिनियम, 1985 (1985 का 61) – धारा 8, 15, 42 और 67 – अपीलार्थी द्वारा विनिषिद्ध पदार्थ-पोस्त तृण की वाणिज्यिक मात्रा का सह-अभियुक्त को अनुज्ञप्ति के बिना विक्रय किया जाना – विक्रय के पश्चात् क्रेता-सह-अभियुक्त से खुले स्थान में विनिषिद्ध पदार्थ की बरामदगी – अपीलार्थी द्वारा विनिषिद्ध पदार्थ का विक्रय किए जाने के संबंध में संस्वीकृति कथन करने, विक्रय के तुरंत पश्चात् विनिषिद्ध पदार्थ की बरामदगी होने तथा रसायन परीक्षक की रिपोर्ट के आधार पर निचले न्यायालयों द्वारा की गई अभियुक्त की दोषसिद्धि उचित है और हस्तक्षेप करने की आवश्यकता नहीं है ।

सीमा-शुल्क निरीक्षक, मुम्बई को यह आसूचना (जानकारी) प्राप्त हुई कि अपीलार्थी-अभियुक्त अपने परिसर से अफीम पोस्त तृण का किसी बिल के बिना विक्रय कर रहा है । परिसर पर छापा मारा गया । क्रेता सह-अभियुक्त को 30 कि. ग्रा. पोस्त तृण के साथ गिरफ्तार किया गया । सह-अभियुक्त ने अपीलार्थी की उस व्यक्ति के रूप में शनाख्त की जिसने उसे नकद संदाय पर बिल के बिना पोस्त तृण चूर्ण बेचा था । अपीलार्थी द्वारा सह-अभियुक्त को पोस्त तृण बिना बिल के बेचने के बारे में संस्वीकृति कथन भी किया गया । अन्वेषण पूर्ण होने पर दोनों अभियुक्तों को विचारण के लिए पेश किया गया । विचारण न्यायालय ने दोनों अभियुक्तों को दोषसिद्ध और दंडादिष्ट किया । विचारण न्यायालय के निर्णय के विरुद्ध उच्च न्यायालय में अपील की गई । उच्च न्यायालय ने सह-अभियुक्त की दोषसिद्धि को कायम रखा किंतु अपीलार्थी की अपील भागतः मंजूर की गई किंतु 30 कि. ग्रा. पोस्त तृण के अवैध विक्रय संव्यवहार के लिए उसकी दोषसिद्धि और दंडादेश को कायम रखा । अपीलार्थी ने व्यथित होकर उच्चतम न्यायालय में अपील फाइल की । उच्चतम न्यायालय द्वारा अपीलें खारिज करते हुए,

अभिनिर्धारित – दोनों निचले न्यायालयों ने समवर्ती रूप से यह अभिनिर्धारित

किया है कि अपीलार्थी सह-अभियुक्त को किसी अनुज्ञप्ति के बिना विनिषिद्ध पदार्थ बेचते हुए पाया गया था । उक्त निष्कर्ष, अन्य बातों के साथ-साथ, अभि. सा. 1, भास्कर शेट्टी, सीमा-शुल्क निरीक्षक के साक्ष्य पर आधारित है जिसने सह-अभियुक्त करीम पटेल से विनिषिद्ध पदार्थ अभिगृहीत किया था । इसके अतिरिक्त, स्वयं अपीलार्थी के अपनी गिरफ्तारी से पूर्व अधिनियम की धारा 67 के अधीन किए गए कथन (प्रदर्श-20) के रूप में साक्ष्य से स्पष्ट रूप से यह दर्शित होता है कि अपीलार्थी ने सह-अभियुक्त करीम पटेल को विनिषिद्ध पदार्थ बेचा था, जिसके पास इसे क्रय करने की कोई अनुज्ञप्ति नहीं थी । अन्यथा भी, अपीलार्थी के साथ विनिषिद्ध पदार्थ का संबंध स्पष्ट रूप से सिद्ध हो गया था, जिसके पश्चात् यह दर्शित करने का भार अपीलार्थी पर था कि उसने इसका विक्रय एक प्राधिकृत व्यक्ति को किया था । सह-अभियुक्त से बरामदगी एक खुले स्थान से की गई थी, जिस पर अधिनियम की धारा 42 लागू नहीं होती है । जूट के थैले को प्रस्तुत करने के समय अपीलार्थी की ओर से ऐसा कोई आक्षेप नहीं किया गया था कि थैले पर कोई लेबल या शनाख्त चिह्न नहीं था । इस प्रकार, लेबल और शनाख्त चिह्न की गैर-मौजूदगी की उपधारणा नहीं की जा सकती है । रसायन विश्लेषक द्वारा नमूनों का सम्यक् रूप से परीक्षण किया गया था और नमूने अविकल पाए गए थे । इस प्रकार, अपीलार्थी को दोषसिद्ध और दंडादिष्ट करने में निचले न्यायालयों द्वारा अभिलिखित निष्कर्षों में कोई गंभीर खामी नहीं है । (पैरा 9)

निर्दिष्ट निर्णय

		पैरा
[2016]	(2016) 6 स्केल 32 : **राजस्थान राज्य** बनाम **जग राज सिंह ;**	7
[2013]	(2013) 2 एस. सी. सी. 212 : **सुखदेव सिंह** बनाम **हरियाणा राज्य ;**	7
[2013]	(2013) 16 एस. सी. सी. 31 : **तुफान सिंह** बनाम **तमिलनाडु राज्य ;**	7
[2009]	(2009) 12 एस. सी. सी. 161 : **भारत संघ** बनाम **बाल मुकुन्द ;**	7

[2009]	(2009) 16 एस. सी. सी. 496 : **राजू प्रेमजी** बनाम **सीमा-शुल्क एनईआर शिलांग यूनिट ;**	7
[2008]	(2008) 16 एस. सी. सी. 417 : **नूर आगा** बनाम **पंजाब राज्य ;**	7
[2001]	(2001) 6 एस. सी. सी. 692 : **साजन अब्राहम** बनाम **केरल राज्य** ;	10
[2000]	(2000) 2 एस. सी. सी. 513 : **अब्दुल रशीद इब्राहिम मंसूरी** बनाम **गुजरात राज्य** ।	7

अपीली (दांडिक) अधिकारिता : 2009 की दांडिक अपील सं. 1020-1021.

2006 की दांडिक अपील सं. 732 और इसके साथ 2006 की दांडिक अपील सं. 1355 में बम्बई उच्च न्यायालय द्वारा तारीख 12 सितंबर, 2007 को पारित निर्णय और आदेश के विरुद्ध अपील ।

अपीलार्थी की ओर से	सर्वश्री आनंद ग्रोवर, ज्येष्ठ अधिवक्ता, पुरुषोत्तम शर्मा त्रिपाठी, मुकेश कुमार सिंह, लुव कुमार और (सुश्री) तृप्ति टंडन
प्रत्यर्थियों की ओर से	सर्वश्री यशांक अध्यारू, ज्येष्ठ अधिवक्ता, (सुश्री) सुषमा मनचंदा, शंकर दिवाते, बी. के. प्रसाद, महालिंगम पंडारजी, अपर सरकारी अधिवक्ता और निशांत रमाकांत राव कटनेश्वर

न्यायालय का निर्णय न्यायमूर्ति आदर्श कुमार गोयल ने दिया ।

न्या. गोयल – अपीलार्थी द्वारा ये अपीलें सह-अभियुक्त-अभि. 2 को 30 कि. ग्रा. पोस्त तृण का अवैध विक्रय करने के लिए, जिसके पास महाराष्ट्र स्वापक ओषधि और मनःप्रभावी पदार्थ नियम, 1985 के अनुसार विधिमान्य अनुज्ञप्ति नहीं थी, स्वापक ओषधि और मन:प्रभावी पदार्थ अधिनियम, 1985 (जिसे इसमें इसके पश्चात् संक्षेप में "अधिनियम" कहा गया है) की धारा 8(ग) के साथ पठित धारा 15 के अधीन की गई उसकी दोषसिद्धि और चार वर्ष का कठोर कारावास भोगने और 20,000/- रुपए के जुर्माने तथा जुर्माने के संदाय में व्यतिक्रम करने पर छह माह का अतिरिक्त कठोर कारावास भोगने के दंडादेश के विरुद्ध फाइल की गई हैं ।

2. अभियोजन का पक्षकथन यह है कि सीमा-शुल्क निरीक्षक, एन. सी. सी. पी., सीमा-शुल्क, मुम्बई को तारीख 26 फरवरी, 2004 को यह आसूचना (जानकारी) प्राप्त हुई कि अपीलार्थी 6, प्रवीण चेम्बर्स, केशवजी नायक रोड मुम्बई स्थित अपने परिसर से संदलित अफीम पोस्त तृण नकद आधार पर किसी बिल के बिना विक्रय कर रहा है । सह-अभियुक्त करीम पटेल 30 कि. ग्रा. पोस्त तृण खरीदेगा । छापा मारा गया और करीम पटेल को 30 कि. ग्रा. पोस्त तृण के साथ गिरफ्तार किया गया । अभि. सा. 1 भास्कर शेट्टी, सीमा-शुल्क निरीक्षक द्वारा छापा मारा गया था, जिसमें अभि. सा. 5 कनूट मेनज़िस सहित अन्य व्यक्ति सम्मिलित थे । उक्त अभियुक्त ने यह कहा कि उसने पोस्त तृण नकद संदाय करके किसी बिल के बिना खरीदा है । अपीलार्थी के परिसरों की तलाशी लेने पर कुछ दस्तावेज बरामद किए गए । अपीलार्थी दुकान में पाया और उसने कहा कि वह स्वत्वधारी है और वहां मौजूद एक महिला फर्म की प्रबंधक थी । सह-अभियुक्त करीम पटेल, जिसे छापामार दल द्वारा अपने साथ ही लाया गया था, ने थैला खोला जिसमें एक पोलिथिन की थैली में रंगीन चूर्ण था । फिल्ड टेस्टिंग किट पर थोड़ी-सी मात्रा का परीक्षण किया गया और अफीम की मौजूदगी का सकारात्मक परिणाम आया । चूर्ण का वजन किया गया और यह 30 कि. ग्रा. पाया गया । 24-24 ग्राम के तीन नमूने लिए गए और मुहरबंद किए गए । शेष चूर्ण को मुहरबंद किया गया और उसी थैले में रखा गया । पंचों और अन्वेषक अधिकारी भास्कर शेट्टी के हस्ताक्षरों का लेबल थैले पर चिपकाया गया । सह-अभियुक्त करीम पटेल ने अपीलार्थी की उस व्यक्ति के रूप में शनाख्त की जिसने उसे नकद संदाय पर बिल के बिना चूर्ण बेचा था । दुकान में रखे अफीम के शेष स्टॉक और उसके पश्चात् अपीलार्थी के मकान से नकद रकम की बरामदगी के बारे में उल्लेख करना सुसंगत नहीं है, क्योंकि अपीलार्थी की दोषसिद्धि केवल पहले ही वर्णित आरोप के लिए कायम रखी गई है । सह-अभियुक्त करीम पटेल ने यह भी कथन किया कि उसने अपीलार्थी से कई बार पोस्त तृण खरीदा था और इसे बेचा था ।

3. तारीख 27 फरवरी, 2004 को अधिनियम की धारा 67 के अधीन अपीलार्थी का इस आशय का कथन अभिलिखित किया गया कि उसने अभियुक्त-2 को 30 कि. ग्रा. चूर्ण रसीद के बिना और चिकित्सीय निर्देश के बिना बेचा था । अभियुक्त-2 के पास विधिमान्य परमिट नहीं था । अन्वेषण पूर्ण होने के पश्चात् दोनों अभियुक्त विचारण के लिए भेजे गए ।

4. अभियोजन पक्ष ने 11 साक्षियों की परीक्षा कराई, जिनमें वह

अन्वेषक अधिकारी जिसने विनिषिद्ध पदार्थ की बरामदगी की थी, सीमा-शुल्क अधीक्षक जिसे जानकारी प्राप्त हुई थी, सहायक रसायन परीक्षक, अनुज्ञप्तिधारी/अभिधारी के रूप में अपीलार्थी के कब्जे वाले परिसर का भू-स्वामी और राज्य उत्पाद-शुल्क का पुलिस उप-निरीक्षक सम्मिलित थे ।

5. विचारण न्यायालय ने अपीलार्थी को न केवल ऊपर उल्लिखित अपराध के लिए दोषसिद्धि और दंडादिष्ट किया अपितु पोस्त तृण चूर्ण की वाणिज्यिक मात्रा के अवैध कब्जे के लिए भी दोषसिद्ध और दंडादिष्ट किया ।

6. अपील करने पर उच्च न्यायालय ने अपील भागतः मंजूर की और पोस्त तृण चूर्ण की वाणिज्यिक मात्रा के अवैध कब्जे के लिए की गई दोषसिद्धि और दंडादेश को अभिखंडित और अपास्त कर दिया, किंतु 30 कि. ग्रा. पोस्त तृण चूर्ण के अवैध विक्रय संव्यवहार के लिए दोषसिद्धि और दंडादेश को कायम रखा । उच्च न्यायालय ने अपीलार्थी से 30 कि. ग्रा. पोस्त तृण चूर्ण किसी विधिमान्य अनुज्ञप्ति और परमिट के बिना क्रय करके उक्त अपराध के दुष्प्रेरण के लिए की गई सह-अभियुक्त की दोषसिद्धि को भी कायम रखा । विद्वान् काउंसेल द्वारा बताए अनुसार, सह-अभियुक्त ने कोई अपील फाइल नहीं की है । अपीलार्थी ने कार्यवाहियों के लंबित रहने के दौरान दंडादेश भुगत लिया है ।

7. अपीलार्थी की ओर से विद्वान् काउंसेल ने न्यायालय के समक्ष विस्तारपूर्वक अभिलेख पर के साक्ष्य का उल्लेख किया और यह दलील दी कि अपीलार्थी की दोषसिद्धि और दिया गया दंडादेश अन्यायपूर्ण है । पूर्विक सूचना अभिलिखित करने में विसंगतियां की गईं हैं, जिनके परिणामस्वरूप अधिनियम की धारा 42 की आज्ञापक अपेक्षा का अतिक्रमण हुआ है । आसूचना टिप्पण, प्रदर्श 47 और अभि. सा. 4 के कथन के प्रति यह दलील देने के लिए निर्देश किया गया कि जानकारी तारीख 26 फरवरी, 2004 से एक या दो दिन पूर्व, एक पूर्ववर्ती मामले के अन्वेषण के दौरान प्राप्त हुई थी, जबकि इसे तुरंत अभिलिखित न करके केवल तारीख 26 फरवरी, 2004 को अभिलिखित किया गया था । जानकारी अभिलिखित के समय और रीति के बारे में विरोधाभास हैं । प्रदर्श-18 एक अन्य टिप्पण है जो कि विरोधाभासी है । **अब्दुल रशीद इब्राहिम मंसूरी** बनाम **गुजरात राज्य**[1], **राजस्थान राज्य** बनाम **जग राज सिंह**[2] और **सुखदेव सिंह** बनाम **हरियाणा**

---

[1] (2000) 2 एस. सी. सी. 513.

[2] (2016) 6 स्केल 32.

राज्य[1] वाले मामलों का अवलंब लिया गया । यह भी दलील दी गई कि न्यायालय में प्रस्तुत किए गए जूट के थैले पर लेबल और हस्ताक्षर नहीं थे । इसे अपीलार्थी से संबद्ध नहीं किया जा सकता है । विद्वान् काउंसेल ने यह भी दलील दी कि नमूनों का अभिलेख नहीं बनाए रखा गया था । पंचों की परीक्षा नहीं कराई गई थी । उन्हीं पंचों का अनेक अवसरों पर उपयोग किया गया था । उसने यह भी दलील दी कि धारा 67 के अधीन अभियुक्त का कथन पुलिस के समक्ष की गई संस्वीकृति की कोटि में आता है और ग्राह्य नहीं था, जैसाकि **तुफान सिंह** बनाम **तमिलनाडु राज्य**[2], **भारत संघ** बनाम **बाल मुकुन्द**[3], **राजू प्रेमजी** बनाम **सीमा-शुल्क एनईआर शिलांग यूनिट**[4] और **नूर आगा** बनाम **पंजाब राज्य**[5] वाले मामलों में अभिनिर्धारित किया गया है । भले ही अपीलार्थी का धारा 67 के अधीन किया गया कथन ग्राह्य हो, तो भी यह एक कमजोर साक्ष्य था और इसका केवल संपुष्टिकारी महत्व था । कथन अभिलिखित करते समय किसी स्वतंत्र साक्षी को सम्मिलित नहीं किया गया था । कथन अभिलिखित करने के समय अपीलार्थी अभिरक्षा में था । कथन स्वेच्छा से नहीं किया गया था । इसकी अंतर्वस्तुओं को उसे पढ़कर नहीं सुनाया गया था । अभियुक्त-2 भी अभिरक्षा में था और उसका कथन भी स्वेच्छापूर्वक नहीं था । सह-अभियुक्त के कथन को सारभूत साक्ष्य के रूप में नहीं लिया जा सकता है । **बाल मुकुन्द** (उपरोक्त) और **राजू प्रेमजी** (उपरोक्त) वाले मामलों के विनिश्चय को ध्यान में रखते हुए उसके साक्ष्य का अवलंब नहीं लिया जा सकता है ।

8. राज्य की ओर से विद्वान् काउंसेल ने अपीलार्थी की दोषसिद्धि और दंडादेश का समर्थन किया । उसने यह दलील दी कि निचले न्यायालयों का एक जैसा निष्कर्ष साक्ष्य पर आधारित है और संविधान के अनुच्छेद 136 के अधीन अपील में इसके साथ छेड़छाड़ नहीं की जानी चाहिए । यह बताया गया कि अपीलार्थी की ओर से विद्वान् काउंसेल द्वारा दी गई दलीलें उच्च न्यायालय के समक्ष दी गई दर्शित नहीं होती हैं । विद्वान् काउंसेल ने अगली यह दलील दी कि धारा 42 केवल तब लागू होती है जब बरामदगी किसी भवन, प्रवहण या परिवेष्टित स्थान से की जानी हो । वर्तमान मामला धारा 43 के अंतर्गत आता है क्योंकि बरामदगी लोक स्थान से हुई है ।

---

[1] (2013) 2 एस. सी. सी. 212.

[2] (2013) 16 एस. सी. सी. 31.

[3] (2009) 12 एस. सी. सी. 161.

[4] (2009) 16 एस. सी. सी. 496.

[5] (2008) 16 एस. सी. सी. 417.

जहां तक लेबल न होने के अभिवाक् का संबंध है, न तो ऐसा कोई प्रश्न थैला प्रस्तुत करने के समय पर उठाया गया था और न ही सह-अभियुक्त से विनिषिद्ध पदार्थ की बरामदगी का तथ्य विवादग्रस्त है । बरामदगी को स्वतंत्र प्रत्यक्षदर्शी साक्ष्य द्वारा साबित किया गया है । सह-अभियुक्त, जिससे बरामदगी की गई थी, ने अपनी दोषसिद्धि को चुनौती तक नहीं दी है । जहां तक नमूनों के अभिलेख का संबंध है, यह बताया गया कि रसायन परीक्षक अभि. सा. 8 का यह स्पष्ट साक्ष्य है कि नमूने मुहरबंद दशा में थे । अपीलार्थी धारा 67 के अधीन किए गए अपने इस कथन से कदापि नहीं मुकरा कि सह-अभियुक्त से बरामद किया गया विनिषिद्ध पदार्थ अपीलार्थी द्वारा बेचा गया था और उक्त सह-अभियुक्त के पास विनिषिद्ध पदार्थ क्रय करने के लिए अनुज्ञप्ति नहीं थी और तद्द्वारा अपीलार्थी ने अपनी अनुज्ञप्ति की शर्तों का उल्लंघन किया था । जब अपीलार्थी का कथन अभिलिखित किया गया था, उस समय वह अभिरक्षा में नहीं था और यह बात अभि. सा. 2 जेरार्ड जोसफ, जिसने कथन अभिलिखित किया था, के कथन से स्पष्ट होती है ।

9. सम्यक् विचार करने के पश्चात् हम अपीलार्थी की ओर से दी गई दलीलों में कोई सार नहीं पाते हैं । दोनों निचले न्यायालयों ने समवर्ती रूप से यह अभिनिर्धारित किया है कि अपीलार्थी सह-अभियुक्त को किसी अनुज्ञप्ति के बिना विनिषिद्ध पदार्थ बेचते हुए पाया गया था । उक्त निष्कर्ष, अन्य बातों के साथ-साथ, अभि. सा. 1, भास्कर शेट्टी, सीमा-शुल्क निरीक्षक के साक्ष्य पर आधारित है जिसने सह-अभियुक्त करीम पटेल विनिषिद्ध पदार्थ अभिगृहीत किया था । इसके अतिरिक्त, स्वयं अपीलार्थी के अपनी गिरफ्तारी से पूर्व अधिनियम की धारा 67 के अधीन किए गए कथन (प्रदर्श-20) के रूप में साक्ष्य से स्पष्ट रूप से यह दर्शित होता है कि अपीलार्थी ने सह-अभियुक्त करीम पटेल को विनिषिद्ध पदार्थ बेचा था, जिसके पास इसे क्रय करने की कोई अनुज्ञप्ति नहीं थी । अन्यथा भी, अपीलार्थी के साथ विनिषिद्ध पदार्थ का संबंध स्पष्ट रूप से सिद्ध हो गया था, जिसके पश्चात् यह दर्शित करने का भार अपीलार्थी पर था कि उसने इसका विक्रय एक प्राधिकृत व्यक्ति को किया था । सह-अभियुक्त से बरामदगी एक खुले स्थान से की गई थी, जिस पर अधिनियम की धारा 42 लागू नहीं होती है । जूट के थैले को प्रस्तुत करने के समय अपीलार्थी की ओर से ऐसा कोई आक्षेप नहीं किया गया था कि थैले पर कोई लेबल या शनाख्त चिह्न नहीं था । इस प्रकार, लेबल और शनाख्त चिह्न की गैर-मौजूदगी की उपधारणा नहीं की जा सकती है । रसायन विश्लेषक द्वारा नमूनों का सम्यक् रूप से परीक्षण किया गया था और नमूने अविकल पाए

गए थे । इस प्रकार, अपीलार्थी को दोषसिद्ध और दंडादिष्ट करने में निचले न्यायालयों द्वारा अभिलिखित निष्कर्षों में कोई गंभीर खामी नहीं है ।

10. **अब्दुल रशीद इब्राहिम मंसूरी, जगराज सिंह** और **सुखदेव सिंह** (उपरोक्त) वाले मामलों में इस न्यायालय के निर्णयों के आधार पर अपीलार्थी की ओर से दी गई दलीलें स्वीकार नहीं की जा सकती हैं । जैसीकि पहले ही अवेक्षा की गई है, वर्तमान मामलों में भी तथ्यात्मक स्थिति में अधिनियम की धारा 42 लागू नहीं होती है । उक्त धारा तब लागू होती है जब विनिषिद्ध पदार्थ किसी भवन, प्रवहण या परिवेष्टित स्थान से बरामद हुआ हो । जहां बरामदगी किसी लोक स्थान से होती है, वहां धारा 43 लागू होती है । इस न्यायालय ने **अब्दुल रशीद इब्राहिम मंसूरी** (उपरोक्त) और **साजन अब्राहम** बनाम **केरल राज्य**[1] वाले मामलों में अपनाए गए दृष्टिकोण को **सुखदेव सिंह** (उपरोक्त) वाले मामले में बृहत्तर न्यायपीठ के निर्णय में समन्वित किया है । यह अभिनिर्धारित किया गया कि प्रौद्योगिक अभिवृद्धि को देखते हुए धारा 42 की अपेक्षानुसार सूचना अभिलिखित करना संभव नहीं हो सकता है । आपातकालीन स्थिति में अन्वेषक अभिकरण से कड़ाई से अनुपालन करने की अपेक्षा नहीं की जानी चाहिए जिससे कि दोषकर्ताओं/अपराधियों/मादक द्रव्य विक्रेताओं द्वारा किए जाने वाले दुरुपयोग से बचा जा सके । क्या पर्याप्त सारभूत अनुपालन किया गया है या नहीं, यह प्रत्येक मामले में तथ्य का प्रश्न है । इस निष्कर्ष के अतिरिक्त कि वर्तमान मामला धारा 43 द्वारा शासित होता है, निचले न्यायालयों के इस एक जैसे निष्कर्ष में हस्तक्षेप करने का कोई आधार नहीं है कि अधिनियम की धारा 43 का पर्याप्त अनुपालन किया गया है ।

11. इसी प्रकार, **तुफान सिंह, राजू प्रेमजी** और **नूर आगा** (उपरोक्त) वाले मामलों में के निर्णयों के आधार पर दी गई दलीलें भी स्वीकार नहीं की जा सकती हैं । इस बात में कोई संदेह नहीं हो सकता है कि न्यायालय को अपना यह समाधान कर लेना चाहिए कि धारा 67 के अधीन कथन स्वेच्छापूर्वक और उस समय किया गया था जब ऐसे कथन करने वाले व्यक्ति को अभियुक्त नहीं बनाया गया था । कथन स्वेच्छया या दबाव मुक्त है या नहीं, यह प्रत्येक मामले के तथ्यों और परिस्थितियों से आंका जाना चाहिए । **तुफान सिंह** (उपरोक्त) वाले मामले में, यह प्रश्न कि क्या

---

[1] (2001) 6 एस. सी. सी. 692.

अधिनियम के अधीन मामलों का अन्वेषण करने वाला अन्वेषक अधिकारी पुलिस अधिकारी होता है और क्या अन्वेषक अधिकारी द्वारा अधिनियम की धारा 67 के अधीन अभिलिखित किए गए कथन को एक संस्वीकृति कथन समझा जा सकता है, बृहत्तर न्यायपीठ को निर्दिष्ट किया गया था । वर्तमान मामले में इस पहलू पर विचार करना आवश्यक नहीं है क्योंकि अपीलार्थी द्वारा किए गए विनिषिद्ध पदार्थ के उस विक्रय को साबित करने के लिए पर्याप्त साक्ष्य है जिसके लिए सह-अभियुक्त को दोषसिद्ध और दंडादिष्ट किया गया है । अभियोजन का वृत्तांत न केवल धारा 67 के अधीन किए गए कथन पर आधारित है, अपितु विक्रय के तुरंत पश्चात् विनिषिद्ध पदार्थ की बरामदगी के साक्ष्य तथा उन परिस्थितियों पर भी आधारित है जिनसे यह दर्शित होता है कि अपीलार्थी द्वारा सह-अभियुक्त को विनिषिद्ध पदार्थ किसी प्राधिकार के बिना बेचा गया था । इस प्रकार, हम अपीलार्थी पर अधिनिर्णीत दोषसिद्धि और दंडादेश में हस्तक्षेप करने का कोई आधार नहीं पाते हैं ।

12. ये अपीलें खारिज की जाती हैं ।

अपीलें खारिज की गईं ।

जस.

[2017] 2 उम. नि. प. 49

पंकज

बनाम

राजस्थान राज्य

9 सितम्बर, 2016

न्यायमूर्ति वी. गोपाल गौड़ा और न्यायमूर्ति आर. के. अग्रवाल

दंड संहिता, 1860 (1860 का 45) – धारा 300 [सपठित आयुध अधिनियम, 1959 की धारा 25 और भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1872 की धारा 32] – अपीलार्थी-अभियुक्त द्वारा मृतक की अभिकथित रूप से अत्यंत नजदीक से गोली मारकर हत्या – हेतु का अभाव – मृतक द्वारा किया गया मृत्युकालिक कथन संदेहास्पद होने, गोली चलाने की दूरी के विषय में इत्तिलाकर्ता तथा डाक्टर के कथनों में तात्विक विरोधाभास होने तथा हेतु के अभाव में अभियुक्त संदेह का फायदा प्राप्त करने का हकदार है

और उसे दोषमुक्त करना उचित होगा ।

श्री राम बाबू नामक व्यक्ति द्वारा तारीख 19 मार्च, 1998 को यह उल्लेख करते हुए पुलिस थाने में एक प्रथम इत्तिला रिपोर्ट दर्ज कराई गई कि जब वह केतन दरवाजा, भरतपुर में स्थित अपनी जूस की दुकान में मौजूद था, तब इस अपील में अपीलार्थी पंकज तीन अन्य व्यक्तियों के साथ वहां आया और चार गिलास जूस का आर्डर किया । उसी समय राम बाबू का बड़ा भाई राज कुमार (मृतक) घर से दुकान पर आया, जिसे अपीलार्थी पंकज द्वारा दुकान के अंदर बुलाया गया । पंकज अभिकथित रूप से इस जूस की दुकान पर आता रहता था और जूस के लिए संदाय किए बिना जूस पी जाता था और जब राज कुमार द्वारा यह बात अपीलार्थी-अभियुक्त के चाचा को बताई गई तो वह उसके प्रति विद्वेष रखने लगा । राज कुमार जैसे ही दुकान के अंदर गया, पंकज ने अपनी जेब से एक देसी पिस्तौल निकाली और पंकज पर एक गोली दाग दी जो उसे गर्दन में लगी, जिसके कारण वह जमीन पर गिर पड़ा और बेहोश हो गया । उसे अस्पताल ले जाया गया । राम बाबू की प्रेरणा पर पंकज-अपीलार्थी और अन्य अभियुक्तों के विरुद्ध पुलिस थाना, मथुरागेट, जिला भरतपुर में भारतीय दंड संहिता, 1860 की धारा 452, 307 और 34 के अधीन प्रथम इत्तिला रिपोर्ट रजिस्ट्रीकृत की गई । राज कुमार को पहुंची क्षतियों के कारण तारीख 25 मार्च, 1998 को मृत्यु हो गई । अन्वेषण पूर्ण होने के पश्चात् अभियुक्तों के विरुद्ध भारतीय दंड संहिता की धारा 302, 452 और धारा 34 तथा आयुध अधिनियम, 1959 की धारा 25 के साथ पठित धारा 3 के अधीन आरोप पत्र फाइल किया गया । मामला अपर जिला और सेशन न्यायाधीश (त्वरित न्यायालय) सं. 1, भरतपुर को सुपुर्द किया गया । विद्वान् अपर जिला और सेशन न्यायाधीश ने सभी अभियुक्तों को भारतीय दंड संहिता की धारा 452 के अधीन अपराध के लिए दोषमुक्त कर दिया और इस अपील में अपीलार्थी को भारतीय दंड संहिता की धारा 302 के अधीन दोषसिद्ध किया और उसे आजीवन कारावास का दंडादेश दिया । इसके अतिरिक्त, अपीलार्थी को आयुध अधिनियम, 1959 की धारा 25 के साथ पठित धारा 3 के अधीन भी दो वर्ष के कठोर कारावास से दंडादिष्ट किया गया । अन्य तीन अभियुक्तों को भारतीय दंड संहिता की धारा 34 के साथ पठित धारा 302 के अधीन दोषसिद्ध किया गया और आजीवन कारावास का दंडादेश दिया गया । अपीलार्थी और अन्य अभियुक्तों ने दोषसिद्धि और दंडादेश के आदेश से व्यथित होकर उच्च न्यायालय के समक्ष दांडिक अपीलें फाइल कीं । उच्च न्यायालय ने अन्य अभियुक्तों को

सभी आरोपों से दोषमुक्त कर दिया और इस अपील में अपीलार्थी द्वारा फाइल की गई अपील खारिज कर दी । अपीलार्थी-अभियुक्त ने उपर्युक्त आदेश से व्यथित होकर उच्चतम न्यायालय के समक्ष विशेष इजाजत लेकर अपील फाइल की । उच्चतम न्यायालय द्वारा अपील मंजूर करते हुए,

अभिनिर्धारित – अभिलेख पर सामग्री से यह स्पष्ट है कि जब राज कुमार पर गोली चलाई गई थी, उसके पश्चात् उसे सामान्य अस्पताल, भरतपुर ले जाया गया था और वहां से उसे आगे उपचार के लिए आगरा स्थानांतरित किया गया था । राज कुमार का मृत्युकालिक कथन अभिकथित रूप से तारीख 19 मार्च, 2008 को अपराह्न में 10.45 बजे श्री नरेश पाल अग्रवाल, जो उस समय उप मंडल मजिस्ट्रेट थे, द्वारा अभिलिखित किया गया था । डा. विनय सिंह (अभि. सा. 6), जिसने सामान्य अस्पताल में मृतक का प्रथम परीक्षण किया था, ने अपने कथन में स्पष्ट रूप से यह कथन किया कि जब मृतक को अपराह्न में 12.45 बजे अस्पताल लाया गया था, तब वह बेहोश था । मृत्युकालिक कथन भी अभिकथित रूप से उसी तारीख को अपराह्न में 10.45 बजे अभिलिखित किया गया था । यह विश्वास करना वास्तव में बहुत ही कठिन है कि राज कुमार, जो दोपहर में बेहोश था, उप मंडल मजिस्ट्रेट के सामने होश में आ गया और वह भी ड्यूटी डाक्टर के इस प्रमाणपत्र के अभाव में कि रोगी कथन करने के लिए उपयुक्त हालत में है । मृत्युकालिक कथन में ऐसी खामियों को देखते हुए, इस न्यायालय की यह राय है कि उच्च न्यायालय ने इसे ठीक की त्यक्त किया है । इस न्यायालय द्वारा पहले ही अनेक मामलों में यह अभिनिर्धारित किया गया है कि जब मृत्युकालिक कथन संदेहास्पद हो, तो संपुष्टिकारी साक्ष्य के बिना उसके आधार पर कार्यवाही नहीं की जानी चाहिए । किसी मामले में जहां मृत्यु किसी प्राणहर शस्त्र से कारित क्षतियों या घावों के कारण होती है, वहां अभियोजन पक्ष का सदैव यह कर्तव्य होता है कि वह विशेषज्ञ साक्ष्य से यह साबित करे कि जिस आयुध से क्षतियां कारित की गई हैं उन्हें उस आयुध से और उस रीति में कारित करना संभाव्य था या कम से कम संभव था, जिस रीति में उन्हें अभिकथित रूप से कारित किया गया है । प्रस्तुत मामले में, विरोधाभास, अर्थात् गोली चलाने की दूरी, तात्विक है और इस न्यायालय की सुविचारित राय में, ऐसे महत्वपूर्ण पहलू की अनदेखी करके अपीलार्थी-अभियुक्त को दोषसिद्ध करना उचित नहीं होगा । यह स्पष्ट है कि अभिलेख पर यह संबद्ध करने के लिए कोई सामग्री नहीं है कि मृतक को गोली की जो क्षति कारित हुई थी वह अपीलार्थी-अभियुक्त के अग्न्यायुध से चलाई गई गोली से हुई थी । यह भी

विचारणीय है कि हालांकि गोली बरामद की गई थी किंतु इसे उस अग्न्यायुध से संबद्ध नहीं किया गया है । इसके अतिरिक्त, अभियोजन पक्ष स्पष्ट रूप से हेतु को साबित नहीं कर सका है । यद्यपि हेतु अपीलार्थी-अभियुक्त को दोषसिद्ध करने के लिए अनिवार्य नहीं है, तो भी हेतु साबित नहीं करने का प्रभाव मस्तिष्क में संदेह उत्पन्न करता है । प्रस्तुत मामले में, यह प्रतीत होता है कि हेतु के पीछे की कहानी काफी सोच-विचार करने के पश्चात् बनाई गई है । यह विधि का सुस्थिर सिद्धांत है कि जब घटना की उत्पत्ति और रीति संदेहास्पद हो, तो अभियुक्त को दोषसिद्ध नहीं किया जा सकता है । क्योंकि अभियोजन पक्ष उन परिस्थितियों को सिद्ध करने में असफल रहा है, जिनमें अपीलार्थी ने अभिकथित रूप से मृतक पर गोली चलाई थी, इसलिए संपूर्ण वृत्तांत नामंजूर किए जाने योग्य है । जब अभियोजन पक्ष द्वारा प्रस्तुत किए गए साक्ष्य की न तो गुणवत्ता हो और न विश्वसनीयता, तब ऐसे साक्ष्य के आधार पर दोषसिद्धि करना असुरक्षित होगा । मामले पर सावधानीपूर्वक विचार करने के पश्चात्, हमारा यह निष्कर्ष है कि इस मामले में अपीलार्थी की दोषिता को सिद्ध करने के लिए अभिलेख पर पर्याप्त साक्ष्य नहीं है । इन परिस्थितियों में, अपीलार्थी संदेह का फायदे प्राप्त करने का हकदार है । (पैरा 7, 11, 12 और 13)

अपीली (दांडिक) अधिकारिता : 2009 की दांडिक अपील सं. 2135.

2002 की दांडिक अपील (खंड न्यायपीठ) सं. 1071 में राजस्थान उच्च न्यायालय, जयपुर न्यायपीठ के तारीख 3 सितम्बर, 2008 के निर्णय और आदेश के विरुद्ध अपील ।

अपीलार्थी की ओर से सर्वश्री राकेश कुमार खन्ना, ज्येष्ठ अधिवक्ता, सुधीर नागर और प्रमोद चौधरी

प्रत्यर्थी की ओर से श्री पुनीत परिहार (मिलिंद कुमार की ओर से)

न्यायालय का निर्णय न्यायमूर्ति आर. के. अग्रवाल ने दिया ।

न्या. अग्रवाल – यह अपील 2002 की दांडिक अपील सं. 1071 में राजस्थान उच्च न्यायालय, जयपुर की खंड न्यायपीठ द्वारा तारीख 3 सितम्बर, 2008 को पारित उस निर्णय और आदेश के विरुद्ध फाइल की गई है, जिसके द्वारा उच्च न्यायालय ने इस अपील में अपीलार्थी द्वारा फाइल की गई याचिका खारिज कर दी ।

2. **संक्षिप्त तथ्य :**

(क) तारीख 19 मार्च, 1998 को श्री राम बाबू नामक व्यक्ति द्वारा यह उल्लेख करते हुए 1998 की प्रथम इत्तिला रिपोर्ट सं. 136 दर्ज कराई गई कि जब वह अपनी जूस की दुकान, जो केतन दरवाजा, भरतपुर में स्थित है, में मौजूद था, तब अपीलार्थी पंकज तीन अन्य व्यक्तियों के साथ उस स्थान पर आया और चार गिलास जूस का आर्डर किया । सुसंगत समय पर, राम बाबू का बड़ा भाई राज कुमार (मृतक) घर से दुकान पर आया, जिसे अपीलार्थी पंकज द्वारा दुकान के अंदर बुलाया गया । अभियोजन का यह पक्षकथन है कि पंकज उपर्युक्त जूस की दुकान पर आता रहता था और जूस के लिए संदाय किए बिना जूस पी जाता था और जब राज कुमार द्वारा यह बात अपीलार्थी-अभियुक्त के चाचा को बताई गई तो वह उसके प्रति विद्वेष रखने लगा ।

(ख) राज कुमार जैसे ही दुकान के अंदर गया, पंकज, जो तीन अन्य व्यक्तियों के साथ वहां मौजूद था, ने अपनी जेब से एक देसी पिस्तौल निकाली और पंकज पर एक गोली दाग दी जो उसे गर्दन में आगे की ओर लगी, जिसके कारण वह जमीन पर गिर पड़ा और बेहोश हो गया । घटना के तुरंत पश्चात् सभी अभियुक्त घटनास्थल से भाग गए । राज कुमार का छोटा भाई राम बाबू (अभि. सा. 8) उसे सामान्य अस्पताल, भरतपुर लेकर आया और वहां से उसे उपचार के लिए आगरा रेफर कर दिया गया ।

(ग) राम बाबू की प्रेरणा पर पंकज-अपीलार्थी और अन्य अभियुक्तों के विरुद्ध पुलिस थाना, मथुरागेट, जिला भरतपुर में भारतीय दंड संहिता, 1860 की धारा 452, 307 और 34 के अधीन 1998 की प्रथम इत्तिला रिपोर्ट सं. 136 रजिस्ट्रीकृत की गई । राज कुमार की उसे पहुंची क्षतियों के कारण तारीख 25 मार्च, 1998 को मृत्यु हो गई । अन्वेषण पूर्ण होने के पश्चात् अभियुक्तों के विरुद्ध भारतीय दंड संहिता की धारा 302, 452 और धारा 34 तथा आयुध अधिनियम, 1959 की धारा 25 के साथ पठित धारा 3 के अधीन आरोप पत्र फाइल किया गया । मामला अपर जिला और सेशन न्यायाधीश (त्वरित न्यायालय) सं. 1, भरतपुर को सुपुर्द किया गया ।

(घ) विद्वान् अपर जिला और सेशन न्यायाधीश ने सभी अभियुक्तों को भारतीय दंड संहिता की धारा 452 के अधीन अपराध के लिए दोषमुक्त कर दिया और इस अपील में अपीलार्थी को भारतीय दंड संहिता की धारा 302 के अधीन दोषसिद्ध किया और उसे आजीवन कारावास का दंडादेश दिया । इसके अतिरिक्त, अपीलार्थी को आयुध अधिनियम, 1959 की धारा 25 के

साथ पठित धारा 3 के अधीन भी दो वर्ष के कठोर कारावास से दंडादिष्ट किया गया । अन्य तीन अभियुक्तों को भारतीय दंड संहिता की धारा 34 के साथ पठित धारा 302 के अधीन दोषसिद्ध किया गया और आजीवन कारावास का दंडादेश दिया गया ।

(ङ) अपीलार्थी ने दोषसिद्धि और दंडादेश के आदेश से व्यथित होकर उच्च न्यायालय के समक्ष 2002 की खंड न्यायपीठ दांडिक अपील सं. 1071 और अन्य अभियुक्तों ने 2002 की खंड न्यायपीठ दांडिक अपील सं. 1070 और 1052 फाइल की । उच्च न्यायालय ने तारीख 3 सितम्बर, 2008 के अपने निर्णय और आदेश द्वारा अन्य अभियुक्तों को सभी आरोपों से दोषमुक्त कर दिया और इस अपील में अपीलार्थी द्वारा फाइल की गई अपील खारिज कर दी ।

(च) अपीलार्थी-अभियुक्त ने उपर्युक्त आदेश से व्यथित होकर इस न्यायालय के समक्ष विशेष इजाजत लेकर यह याचिका फाइल की ।

3. अपीलार्थी-अभियुक्त की ओर से विद्वान् ज्येष्ठ काउंसेल श्री राकेश कुमार खन्ना तथा प्रत्यर्थी-राज्य की ओर से विद्वान् काउंसेल श्री पुनीत परिहार को सुना ।

विरोधी दलीलें :

4. अपीलार्थी-अभियुक्त की ओर से विद्वान् ज्येष्ठ काउंसेल ने इस न्यायालय के समक्ष यह दलील दी कि राज कुमार की हत्या करने के पीछे कोई हेतु नहीं था । उन्होंने यह भी दलील दी कि यह बात कल्पना से परे है कि कोई व्यक्ति किसी प्रकोपन, हेतु या उकसावे के बिना एकदम गोली चला दे । विद्वान् ज्येष्ठ काउंसेल ने आगे यह दलील दी कि मृतक का भाई-राम बाबू (अभि. सा. 8) अभिकथित घटना का एकमात्र साक्षी है, जो एक हितबद्ध साक्षी है और उसके कथन में कई तात्विक विरोधाभास हैं । उन्होंने आगे यह दलील दी कि अभि. सा. 8 के कथन का अवलंब लेकर और उसकी संपुष्टि श्याम सुंदर (अभि. सा. 5) के साक्ष्य से करके की गई दोषसिद्धि निराधार है । यह भी दलील दी गई कि देसी पिस्तौल की अभिकथित बरामदगी मिथ्या है और उसे पुलिस द्वारा गढ़ा गया है । उन्होंने अंततः यह दलील दी कि अभियोजन साक्ष्य में संदेहास्पद लक्षणों और अन्य कमियों, जैसी कि ऊपर चर्चा की गई है, को देखते हुए अभि. सा. 8 के साक्ष्य का अवलंब लेना सुरक्षित नहीं है और उसके साक्ष्य की सावधानी और सतर्कतापूर्वक संवीक्षा किए जाने की आवश्यकता है । उच्च न्यायालय

अभिलेख पर साक्ष्य से प्रकट होने वाली कतिपय प्रभावी बातों पर विचार करने में असफल रहा है और अभियोजन पक्ष द्वारा अवलंब लिए गए साक्ष्य में अन्य घातक खामियां हैं जिन पर उच्च न्यायालय द्वारा विचार नहीं किया गया है । विद्वान् ज्येष्ठ काउंसेल ने अंततः यह अनुरोध किया कि असंधार्य साक्ष्य पर आधारित दोषसिद्धि विधि के सरासर दुरुपयोग के सिवाय कुछ नहीं है और इसे अपास्त किया जाना चाहिए ।

5. दूसरी ओर, प्रत्यर्थी-राज्य की ओर से विद्वान् काउंसेल ने यह दलील दी कि इत्तिलाकर्ता राम बाबू (अभि. सा. 8) के परिसाक्ष्य की संपुष्टि श्याम सुंदर (अभि. सा. 5) के साक्ष्य से होती है और अपीलार्थी-अभियुक्त को अभि. सा. 8 के एकमात्र परिसाक्ष्य के आधार पर दोषसिद्ध किया जा सकता है क्योंकि प्रत्यक्षदर्शी साक्षी तार्किक, विश्वसनीय और भरोसेमंद है और अभि. सा. 8 और अभि. सा. 5 के कथनों में फर्क, यदि कोई है, का कोई महत्व नहीं है । विद्वान् काउंसेल ने यह भी दलील दी कि एक ही साक्षी द्वारा दिया गया भरोसेमंद साक्ष्य अपीलार्थी-अभियुक्त को दोषसिद्ध करने के लिए पर्याप्त है और इस प्रकार उनके परिसाक्ष्य को इस आधार पर नामंजूर किया जाना उचित नहीं है कि वे हितबद्ध साक्षी हैं । आगे यह दलील दी गई कि अपीलार्थी-अभियुक्त की प्रेरणा पर देसी पिस्तौल बरामद की गई थी । अपीलार्थी-अभियुक्त पुलिस दल को घटनास्थल पर ले गया था और वह स्थान बताया था जहां पिस्तौल फेंकी गई थी और इस तथ्य की पुष्टि उसकी बरामदगी से होती है और यह उपधारणा नहीं की जा सकती है कि अपीलार्थी-अभियुक्त के बताने पर की गई अग्न्यायुध की बरामदगी अविश्वसनीय है । विद्वान् काउंसेल ने अंततः यह दलील दी कि अपीलार्थी-अभियुक्त के विरुद्ध तार्किक और विश्वसनीय साक्ष्य को देखते हुए दोषसिद्धि विधि की दृष्टि से विधिमान्य और संधार्य है और इसे त्यक्त करने का कोई कारण नहीं है ।

चर्चा :

6. अभियोजन पक्षकथन के अनुसार, तारीख 19 मार्च, 1998 को इत्तिलाकर्ता (अभि. सा. 8) जब अपनी जूस की दुकान में था, तब अपीलार्थी-अभियुक्त तीन अन्य व्यक्तियों के साथ दुकान पर आया । जब इत्तिलाकर्ता का बड़ा भाई-राज कुमार (मृतक) दुकान पर आया तो पंकज ने उसे अंदर बुलाया और एक देसी पिस्तौल से उस पर गोली चला दी, जो उसकी गर्दन पर लगी । राज कुमार जमीन पर गिर गया और अभि. सा. 8 उसे भरतपुर में अस्पताल लेकर गया । उसकी उसे पहुंची क्षतियों के

कारण तारीख 25 मार्च, 1998 को आगरा में मृत्यु हो गई । अपर जिला और सेशन न्यायाधीश (त्वरित न्यायालय), भरतपुर द्वारा अपीलार्थी-अभियुक्त को अन्य व्यक्तियों के साथ भारतीय दंड संहिता की धारा 34 के साथ पठित धारा 302 और आयुध अधिनियम की धारा 3 के साथ पठित धारा 25 के अधीन दोषसिद्ध किया गया । उच्च न्यायालय के समक्ष अपील में अपीलार्थी-अभियुक्त की दोषसिद्धि और दंडादेश को कायम रखा गया जबकि अन्य अभियुक्तों को सभी आरोपों से दोषमुक्त कर दिया गया ।

7. अभिलेख की सामग्री से यह स्पष्ट है कि जब राज कुमार पर गोली चलाई गई थी, उसके पश्चात् उसे सामान्य अस्पताल, भरतपुर ले जाया गया था और वहां से उसे आगे उपचार के लिए आगरा स्थानांतरित किया गया था । राज कुमार का मृत्युकालिक कथन अभिकथित रूप से तारीख 19 मार्च, 2008 को अपराह्न में 10.45 बजे श्री नरेश पाल अग्रवाल, जो उस समय उप मंडल मजिस्ट्रेट थे, द्वारा अभिलिखित किया गया था । डा. विनय सिंह (अभि. सा. 6), जिसने सामान्य अस्पताल में मृतक का प्रथम परीक्षण किया था, ने अपने कथन में स्पष्ट रूप से यह कथन किया कि जब मृतक को अपराह्न में 12.45 बजे अस्पताल लाया गया था, तब वह बेहोश था । मृत्युकालिक कथन भी अभिकथित रूप से उसी तारीख को अपराह्न में 10.45 बजे अभिलिखित किया गया था । यह विश्वास करना वास्तव में बहुत ही कठिन है कि राज कुमार, जो दोपहर में बेहोश था, उप मंडल मजिस्ट्रेट के सामने होश में आ गया और वह भी ड्यूटी डाक्टर के इस प्रमाणपत्र के अभाव में कि रोगी कथन करने के लिए उपयुक्त हालत में है । मृत्युकालिक कथन में ऐसी खामियों को देखते हुए, हमारी यह राय है कि उच्च न्यायालय ने इसे ठीक की त्यक्त किया है । इस न्यायालय द्वारा पहले ही अनेक मामलों में यह अभिनिर्धारित किया गया है कि जब मृत्युकालिक कथन संदेहास्पद हो, तो संपुष्टिकारी साक्ष्य के बिना उसके आधार पर कार्यवाही नहीं की जानी चाहिए ।

8. राम बाबू (अभि. सा. 8) अभिकथित घटना के समय दुकान पर मौजूद था । इसका यह अर्थ है कि वह एकमात्र प्रत्यक्षदर्शी साक्षी था । उसने अपने कथन में अत्यंत विनिर्दिष्ट रूप से यह कथन किया कि पंकज ने उसके भाई पर उसके सामने गोली चलाई और अन्य व्यक्तियों के साथ घटनास्थल से भाग गया । अभियोजन पक्ष के अनुसार, यह मामला अभि. सा. 8 के एकमात्र परिसाक्ष्य पर निर्भर है, जिसकी संपुष्टि श्याम सुंदर (अभि. सा. 5) के कथन से होती है जो सुसंगत समय पर एक निकटवर्ती

दुकान पर मौजूद था । श्याम सुंदर (अभि. सा. 5) ने अपने कथन में यह कहा कि जैसे ही उसने गोली चलने की आवाज सुनी, वह दुकान से बाहर आया और देखा कि पंकज के हाथ में रिवाल्वर थी और वह तीन अन्य व्यक्तियों के साथ सुसंगत समय पर वहां से भाग रहा था । किंतु यहां यह भी उल्लेखनीय है कि अभि. सा. 5 गांव देहरा का निवासी है जो भरतपुर से 12-13 कि. मी. (लगभग) की दूरी पर स्थित है । उसने अपने कथन में यह भी कहा कि वह पंजाब नेशनल बैंक में अपने पिता के नाम में एक लॉकर के बारे में पूछताछ करने के लिए भरतपुर आया था । दूसरे पक्ष की ओर से विजय कुमार (प्रति. सा. 2) की परीक्षा कराई गई, जिसने यह अभिसाक्ष्य दिया कि वर्ष 1997-1998 में श्याम सुंदर (अभि. सा. 5) के नाम में कोई लॉकर प्रचालन में नहीं था । मामले को इस दृष्टि से देखते हुए, यह बात संदेहास्पद है और विश्वास करना कठिन है कि वह 12-13 कि. मी. (लगभग) दूर से घटनास्थल पर केवल बाल कटवाने के लिए आया था ।

9. अभि. सा. 8 ने अपने कथन में यह अभिसाक्ष्य दिया कि राज कुमार और अपीलार्थी-अभियुक्त दोनों एक दूसरे के सामने बैठे हुए थे । उनके बीच लगभग डेढ़ फुट की दूरी थी । अपीलार्थी-अभियुक्त ने पिस्तौल निकाली और राज कुमार की गर्दन पर एक गोली चला दी । तथापि, अभि. सा. 8 का वृत्तांत चिकित्सीय साक्ष्य के विरोध में है, जिसकी चर्चा हम निर्णय के पश्चात्‌वर्ती भाग में करेंगे । अभि. सा. 8 दुकान में कुर्सियों की व्यवस्था करने के विषय में भी प्रतिपरीक्षा के दौरान समाधानप्रद उत्तर नहीं दे सका, हालांकि यह बात तात्विक नहीं है किंतु इससे घटना की सत्यता के बारे में मस्तिष्क में संदेह उत्पन्न होता है और यह बात उसके वृत्तांत को अत्यंत कृत्रिम बनाती है । यद्यपि अभि. सा. 8 ने विनिर्दिष्ट रूप से यह वर्णित किया है कि वह मृतक को अस्पताल लेकर गया था और उसके शरीर से रक्त बह रहा था, किंतु यह बात समझ से बाहर है कि अन्वेषक अधिकारी द्वारा अन्वेषण के दौरान रक्त-रंजित वस्त्र अभिगृहीत क्यों नहीं किए गए और उसने सुसंगत समय पर प्रतिविरोध क्यों नहीं किया, यह बात भी उसकी मौजूदगी को अत्यधिक संदेहास्पद बनाती है ।

10. डा. विजय सिंह (अभि. सा. 6) वह व्यक्ति है जिसने सामान्य अस्पताल, भरतपुर में राज कुमार का परीक्षण किया था । यहां इस साक्षी के कथन के कुछ भाग का वर्णन करना अनिवार्य है, जो निम्नलिखित है :–

" ...जब हत्यारा और लक्ष्यवस्तु अर्थात् क्षतिग्रस्त व्यक्ति, दोनों दाएं कोण पर होते हैं, अर्थात् एक-दूसरे के ठीक सामने, तब ऐसा संभव है क्योंकि किसी प्रकार की कोई झुलसन, निमज्जन और गोदन नहीं था । अग्न्यायुध के साधारण नियम के अनुसार दूरी 3 फुट से अधिक थी । निश्चित दूरी का विनिश्चय केवल प्राक्षेपिकी विज्ञानी की राय द्वारा किया जा सकता है ।

यह सही है कि यदि क्षतिग्रस्त हत्यारे के सामने है और वह अग्न्यायुध से क्षतिग्रस्त की गर्दन में 2 फुट की दूरी से क्षति पहुंचाता है, तब घाव प्रदर्श पी-5 में दर्शाई गई आकृति में नहीं होगा । साधारण नियम के अनुसार, अधिकतम नजदीक से चलाई गई गोली का प्रविष्टि घाव निकास घाव की अपेक्षा बड़ा होगा और जैसे-जैसे दूरी बढ़ती जाएगी, प्रविष्टि घाव निकास घाव की अपेक्षा और छोटा होता जाएगा, अर्थात् जैसे-जैसे दूरी बढ़ती जाएगी, शरीर के बाह्य भाग पर मार्ग फैलता जाएगा और निकटवर्ती क्षेत्र में अधिक हानि कारित होगी..... ।"

राज कुमार की मृत्यु से पूर्व, उसे पहुंची क्षति का परीक्षण किया गया था जो निम्न प्रकार से है :–

(1) गर्दन पर दाईं ओर उरो-चूचुक मांसपेशी रेखा से मध्य भाग तक 1 से. मी. × 1 से. मी. × कोमल ऊतक से हड्डी की गहराई तक वृत्ताकार आकृति का रक्तस्राव सहित एक बेधित विदीर्ण घाव ।

(2) किनारे और पार्श्व नीलापन लिए हुए उलटे हुए हैं ।

(3) कोई झुलसन, कालिमा और गोदन दिखाई नहीं दिया, अग्न्यायुध के घाव की प्रविष्टि सेलजेस्मिक ।

डा. बी. बी. शर्मा (अभि. सा. 7) द्वारा बनाई गई मरणोत्तर परीक्षा के अनुसार, मृत्यु का कारण मृत्यु-पूर्व की क्षतियों की वजह से हुआ सदमा और रक्तस्राव था ।

11. स्वीकृततः, जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया है, मृतक और अपीलार्थी-अभियुक्त के बीच दूरी के विषय में अभि. सा. 8 और अभि. सा. 6 के कथनों में फर्क है । इस तथ्य स्थिति में, मोडीज़ ज्यूरिसप्रूडेंस (24वां संस्करण) में व्यक्त "अग्न्यायुध क्षतियों या वस्त्रों पर छोटे छिद्र" के संबंध

में महत्वपूर्ण बातों को उद्धृत करना अनिवार्य है जो निम्नलिखित है :–

	महत्वपूर्ण बात	दूरी
1.	धधक/जलन/तपन/झुलसन	रिवाल्वर/पिस्तौल-सामान्य तौर पर लगभग 5-8 सें. मी. के भीतर राइफल्स-सामान्य तौर पर 15-20 सें. मी. के भीतर शॉटगन 30-10 सें. मी. झुलसन का साक्ष्य दर्शित हो सकता है ।
2.	धुंआ/बारूद के चिह्न	राइफल से सामान्य तौर पर लगभग 30 सें. मी. तक (कालस) और लगभग 100 सें. मी. तक बारूद के अवशेष) । हैंडगन से लगभग 60 सें. मी. तक
3.	गोदन	हैंडगन से 60 सें. मी. तक राइफल से सामान्य तौर पर 75 सें. मी. तक शॉटगन 100-300 मीटर तक (लंबी दूरी पर सावधानी से तलाश करने के पश्चात् पाया जा सकता है ।

किसी मामले में जहां मृत्यु किसी प्राणहर शस्त्र से कारित क्षतियों या घावों के कारण होती है, वहां अभियोजन पक्ष का सदैव यह कर्तव्य होता है कि वह विशेषज्ञ साक्ष्य से यह साबित करे कि जिस आयुध से क्षतियां कारित की गई हैं उन्हें उस आयुध से और उस रीति में कारित करना संभाव्य था या कम से कम संभव था, जिस रीति में उन्हें अभिकथित रूप से कारित किया गया है । प्रस्तुत मामले में, विरोधाभास, अर्थात् गोली चलाने की दूरी, तात्विक है और हमारी सुविचारित राय में, ऐसे महत्वपूर्ण पहलू की अनदेखी करके अपीलार्थी-अभियुक्त को दोषसिद्ध करना उचित नहीं होगा ।

12. अपीलार्थी-अभियुक्त की ओर से विद्वान् ज्येष्ठ काउंसेल द्वारा किया

गया आक्षेप यह है कि अपीलार्थी-अभियुक्त के बताने पर की गई बरामदगी पुलिस द्वारा गढ़ी गई थी और इसका अवलंब नहीं लिया जा सकता था । इस न्यायालय ने अनेक मामलों में यह अभिनिर्धारित किया है कि केवल यह परिस्थितिजन्य साक्ष्य कि अभियुक्त पुलिस अधिकारी को लेकर गया और वह स्थान बताया जहां आयुध छिपाया हुआ पाया गया, साक्ष्य अधिनियम की धारा 8 के अधीन आचरण के रूप में इस बात के होते हुए ग्राह्य होगा चाहे उसके द्वारा ऐसे आचरण के समकालीन या पूर्व किया गया कोई कथन साक्ष्य अधिनियम की धारा 27 की परिधि के अंतर्गत आता है । उपरोक्त पृष्ठभूमि में, अपीलार्थी-अभियुक्त की प्रेरणा पर बरामद की गई देसी पिस्तौल की अभिकथित बरामदगी के विषय में तारीख 25 जून, 1999 की न्यायालयिक प्रयोगशाला की रिपोर्ट को उद्धृत करना उचित होगा, जो निम्नलिखित है :–

"परीक्षण का परिणाम

1. पैकेट 'डी' से प्राप्त एक .32 देसी पिस्तौल (डब्ल्यू./1) एक चालू अग्न्यायुध है ।

2. नली के अवशिष्ट के परीक्षण से यह उपदर्शित होता है कि प्रस्तुत की गई .32 देसी पिस्तौल (डब्ल्यू./1) से गोली चलाई गई है । तथापि, इससे अंतिम बार गोली चलाने के निश्चित समय को अभिनिश्चित नहीं किया जा सका है ।

3. विन्यास और तुलनात्मक सूक्ष्मदर्शी परीक्षण के आधार पर यह राय है कि पैकेट 'सी' से प्राप्त एक .32 सीस-गोली (बी/1) प्रस्तुत की गई .32 देसी पिस्तौल (डब्ल्यू./1) से नहीं चलाई गई है ।"

उपरोक्त से यह स्पष्ट है कि अभिलेख पर यह संबद्ध करने के लिए कोई सामग्री नहीं है कि मृतक को गोली की जो क्षति कारित हुई थी वह अपीलार्थी-अभियुक्त के अग्न्यायुध से चलाई गई गोली से हुई थी । यह भी विचारणीय है कि हालांकि गोली बरामद की गई थी किंतु इसे उस अग्न्यायुध से संबद्ध नहीं किया गया है । इसके अतिरिक्त, अभियोजन पक्ष स्पष्ट रूप से हेतु को साबित नहीं कर सका है । यद्यपि हेतु अपीलार्थी-अभियुक्त को दोषसिद्ध करने के लिए अनिवार्य नहीं है, तो भी हेतु साबित नहीं करने का प्रभाव मस्तिष्क में संदेह उत्पन्न करता है । प्रस्तुत मामले में, यह प्रतीत होता है कि हेतु के पीछे की कहानी काफी सोच-विचार करने के पश्चात् बनाई गई है ।

13. यह विधि का सुस्थिर सिद्धांत है कि जब घटना की उत्पत्ति और रीति संदेहास्पद हो, तो अभियुक्त को दोषसिद्ध नहीं किया जा सकता है । क्योंकि अभियोजन पक्ष उन परिस्थितियों को सिद्ध करने में असफल रहा है, जिनमें अपीलार्थी ने अभिकथित रूप से मृतक पर गोली चलाई थी, इसलिए संपूर्ण वृत्तांत नामंजूर किए जाने योग्य है । जब अभियोजन पक्ष द्वारा प्रस्तुत किए गए साक्ष्य की न तो गुणवत्ता हो और न विश्वसनीयता, तब ऐसे साक्ष्य के आधार पर दोषसिद्धि करना असुरक्षित होगा । मामले पर सावधानीपूर्वक विचार करने के पश्चात्, हमारा यह निष्कर्ष है कि इस मामले में अपीलार्थी की दोषिता को सिद्ध करने के लिए अभिलेख पर पर्याप्त साक्ष्य नहीं है । इन परिस्थितियों में, अपीलार्थी संदेह के फायदे का हकदार है ।

14. हमारे द्वारा सावधानीपूर्वक विचार करने के पश्चात्, हम अभि. सा. 8 के साक्ष्य का कोई अवलंब लेने के लिए असमर्थ हैं । चूंकि उसका साक्ष्य बिल्कुल भी विश्वासोत्पादक नहीं है, इसलिए हम अपीलार्थी की दोषसिद्धि और दंडादेश को अपास्त करते हैं । यह अपील मंजूर की जाती है ।

अपील मंजूर की गई ।

जस.

[2017] 2 उम. नि. प. 61

शासुन केमिकल्स एंड ड्रग्स लि. (मैसर्स)

बनाम

आय-कर आयुक्त, चेन्नई

16 सितम्बर, 2016

न्यायमूर्ति ए. के. सिकरी और न्यायमूर्ति एन. वी. रमना

आय-कर अधिनियम, 1961 (1961 का 43) – धारा 35घ – निर्धारिती कंपनी द्वारा अपनी विद्यमान इकाइयों का विस्तार – पूंजी व्यय की पूर्ति के लिए शेयरों का निर्गमन किया जाना – उपगत व्यय के क्रमिक अपाकरण का दावा किया जाना – निर्धारण अधिकारी द्वारा 10 वर्षों की ब्लाक अवधि के प्रथम दो निर्धारण वर्षों में कटौती का फायदा मंजूर किया जाना – पश्चात्वर्ती वर्षों में कटौती से इनकार किया जाना – प्रथम दो

निर्धारण वर्षों में उन्हीं उपबंधों के अधीन फायदा मंजूर किए जाने के पश्चात् इसे पश्चात्वर्ती निर्धारण वर्षों में नामंजूर नहीं किया जा सकता था ।

आय-कर अधिनियम, 1961 – धारा 36, 40क(9) और 43ख – निर्धारिती कंपनी द्वारा न्यास के माध्यम से अपने कर्मकारों को बोनस का संदाय किया जाना – कंपनी द्वारा कटौती का दावा किया जाना – बोनस का संदाय प्रत्यक्ष रूप से नकद में न करने के आधार पर निर्धारण अधिकारी द्वारा दावा नामंजूर किया जाना – बोनस के रूप में संदाय किया गया व्यय धारा 36(1) के खंड (ii) के अधीन कटौती के लिए अनुज्ञेय है और धारा 43ख और 40क(9) की रोक इसके आड़े नहीं आती है, अतः उच्च न्यायालय ने निर्धारिती की कारबार से आय की गणना करते समय इस व्यय को कटौती के रूप में नामंजूर करके गलती की है ।

अपीलार्थी/निर्धारिती, ओषधि और मध्यकों के थोक निर्माण और विक्रय के कारबार में लगी एक पब्लिक लिमिटेड कंपनी है । निर्धारिती ने अपनी विद्यमान उत्पादन इकाइयों के विस्तार और उनके अनुसंधान तथा विकास के क्रियाकलाप के विस्तार के संबंध में पूंजी व्यय और अन्य व्यय की पूर्ति के लिए निधियां जुटाने हेतु जनता में शेयर निर्गमित किए । पूर्वोक्त निर्गमन निर्धारण वर्ष 1995-96 से सुसंगत तारीख 31 मार्च, 1995 को समाप्त होने वाले वित्तीय वर्ष के दौरान सार्वजनिक अभिदान के लिए खुला । निर्धारिती ने पूर्वोक्त शेयर निर्गमन पर हुए व्यय के प्रति 45,51,890/- रुपए उपगत किए और निर्धारण वर्ष 1995-96 से 2004-05 तक प्रत्येक वर्ष पूर्वोक्त शेयर निर्गमन व्यय का 1/10वां भाग का अधिनियम की धारा 35घ के अधीन कटौती का दावा किया । निर्धारण वर्ष 1995-96 के लिए निर्धारिती का दावा मंजूर किया गया । तथापि, निर्धारण अधिकारी ने निर्धारण वर्ष 1996-97 के लिए व्ययों को इस आधार पर नामंजूर कर दिया कि उपगत व्यय पूंजीगत प्रकृति का है और इसलिए कारबार लाभों की गणना के लिए अनुज्ञेय नहीं है । निर्धारिती ने व्यथित होकर आय-कर आयुक्त (अपील) के समक्ष अपील फाइल की, जिन्होंने अपने आदेश द्वारा निर्धारण अधिकारी को निदेश दिया कि निर्धारिती के कारखाना परिसर की अस्तित्व जांच की जाए और निर्धारिती द्वारा किए गए दावे को न्यायोचित ठहराने के लिए यह पता लगाया जाए कि क्या कारखाने में संयंत्र और मशीनरी में कोई बढ़ोतरी की गई है और क्या कारखाने में स्थित भवनों में कोई ऐसा अभिवर्धन किया गया है जिसके द्वारा विद्यमान औद्योगिक उपक्रम में कोई विस्तार किया गया हो । निर्धारण अधिकारी ने पूर्वोक्त

निदेश के अग्रसरण में कारखाना परिसर की सम्यक् अस्तित्व जांच करने और औद्योगिक उपक्रम में किए गए सुविधाओं के विस्तार के प्रति समाधान होने पर शेयर निर्गमन व्ययों को सम्यक् रूप से मंजूर किया । उसके पश्चात् निर्धारण अधिकारी ने निर्धारण वर्ष 1997-98 से 2004-05 के लिए अधिनियम की धारा 35घ के अधीन शेयर निर्गमन व्यय के दावे की बाबत भिन्न आधार अपनाया और दावा इस आधार पर नामंजूर कर दिया कि वह व्यय पूंजीगत प्रकृति का था । निर्धारिती ने निर्धारण वर्ष 2001-02 के लिए अधिनियम की धारा 35घ के अधीन क्रमिक अपाकरण के लिए पुनः दावा किया जो उन्हीं कारणों के आधार पर नामंजूर कर दिया गया । तथापि, निर्धारिती की आय-कर आयुक्त (अपील) के समक्ष अपील सफल रही, क्योंकि आय-कर आयुक्त (अपील) ने उस व्यय को मंजूर कर लिया । आय-कर आयुक्त (अपील) के आदेश की आय-कर अपील अधिकरण द्वारा भी अभिपुष्टि की गई । तथापि, उच्च न्यायालय ने निर्धारण अधिकारी द्वारा अपनाए गए दृष्टिकोण का यथापूर्वकरण करते हुए आय-कर अपील अधिकरण के आदेश को उलट दिया और अधिनियम की धारा 35घ के अधीन व्यय के क्रमिक अपाकरण को नामंजूर कर दिया । निर्धारिती द्वारा निर्धारण वर्ष 2001-02 के लिए फाइल की गई विवरणी में उसके द्वारा यह उल्लेख किया गया था कि उसने उक्त वित्तीय वर्ष में 96,08,002/- रुपए अपने कर्मचारियों को बोनस संदत्त किया था और इसलिए उसने अधिनियम की धारा 35(2कख) के अधीन कटौती का दावा किया । तथापि, अधिनियम की धारा 40क(9) के उपबंधों का अवलंब लेते हुए उक्त व्यय को इस आधार पर नामंजूर कर दिया गया कि यह संबंधित कर्मचारियों को नकद संदत्त नहीं किया गया था । इसमें पुनः आय-कर आयुक्त (अपील) ने इस व्यय को मंजूर किया और यही दृष्टिकोण आय-कर अपील अधिकरण द्वारा अपनाया गया किंतु उच्च न्यायालय ने आय-कर अपील अधिकरण के मत को उलट दिया । निर्धारिती ने उच्च न्यायालय के निर्णय से व्यथित होकर उच्चतम न्यायालय में अपीलें फाइल कीं । उच्चतम न्यायालय द्वारा अपीलें मंजूर करते हुए,

अभिनिर्धारित – निर्धारण वर्ष 1995-96 के लिए जो आय-कर विवरणी फाइल की गई थी उसमें निर्धारिती ने यह दावा किया था कि उसने शेयर निर्गमन व्ययों हेतु 45,51,890/- रुपए की राशि उपगत की थी और निर्धारण वर्ष 1995-96 से 2004-05 तक अधिनियम की धारा 35घ के अधीन पूर्वोक्त शेयर निर्गमन व्ययों के 1/10वां भाग का दावा किया था । निर्धारिती का यह दावा उपर्युक्त उपबंधों के अधीन न्यायोचित और अनुज्ञेय

पाया गया था और उस आधार पर अधिनियम की धारा 35घ के अधीन शेयर निर्गमन व्ययों का 1/10वां भाग मंजूर किया गया । जब उसने निर्धारण वर्ष 1996-97 के लिए पुनः दावा किया तो हालांकि यह दावा नामंजूर कर दिया गया और अपील प्राधिकारी के निदेश पर निर्धारण अधिकारी ने कारखाना परिसर की अस्तित्व जांच की । उसका यह समाधान हो गया कि निर्धारिती के औद्योगिक उपक्रम की सुविधाओं का विस्तार किया गया है । इस समाधान के आधार पर निर्धारण वर्ष 1996-97 के लिए भी व्ययों को मंजूर किया गया । जब एक बार यह स्थिति स्वीकार हो गई और घड़ी निर्धारिती के पक्ष पर चलना आरंभ हो गई थी तो उसे 10 वर्ष की संपूर्ण अवधि पूर्ण करनी थी और प्रथम दो वर्षों में प्रदान किया गया फायदा पश्चात्‌वर्ती वर्षों में इनकार नहीं किया जा सकता था क्योंकि ब्लाक अवधि निर्धारण वर्ष 1996-97 से आरंभ होकर निर्धारण वर्ष 2004-05 तक 10 वर्ष थी । तथापि, उच्च न्यायालय ने ब्रुक बांड इंडिया लिमिटेड वाले मामले में इस न्यायालय के निर्णय का अनुसरण करते हुए यह फायदा नामंजूर कर दिया । उक्त मामले में यह अभिनिर्धारित किया गया था कि कंपनी के विस्तार के प्रयोजन के लिए लोक निर्गमन पर उपगत व्यय पूंजीगत व्यय है । तथापि, इस आशय के तर्क के बावजूद कि पूर्वोक्त निर्णय तब दिया गया था जब धारा 35घ कानून की पुस्तक में नहीं थी और इस उपबंध ने विधिक स्थिति को परिवर्तित कर दिया था, उच्च न्यायालय ने फिर भी उक्त निर्णय का अनुसरण किया । यही बात है जहां उच्च न्यायालय ने गलती की क्योंकि प्रस्तुत मामला अधिनियम की धारा 35घ के उपबंधों को ध्यान में रखते हुए विनिश्चित किया जाना है । किसी भी दशा में, इस बात को दोहराने की आवश्यकता है कि प्रस्तुत मामले में प्रथम दो निर्धारण वर्षों के लिए इन्हीं उपबंधों के अधीन फायदा मंजूर किया गया है और इसलिए यह फायदा पश्चात्‌वर्ती ब्लाक अवधि में इनकार नहीं किया जा सकता था । (पैरा 13)

प्रश्नगत निर्धारण वर्षों में निर्धारिती के कर्मकारों ने बोनस की मात्रा का विवाद उठाया था, जिसके कारण मजदूर अशांत हो गई थी । इस वजह से कर्मकारों ने अंततः उन्हें दिए जाने वाले बोनस को स्वीकार करने से इनकार कर दिया । ऐसी स्थिति होने पर निर्धारिती ने अधिनियम की धारा 43ख की अपेक्षा का पालन करने के लिए न्यास को संदाय किया था क्योंकि उक्त उपबंध में यह स्पष्ट किया गया है कि बोनस के संबंध में कटौती केवल तभी मंजूर की जाएगी यदि वास्तव में संदाय किया जाता है । प्रासंगिक रूप से, कर्मकारों के साथ विवाद को समय रहते सुलझाया

जाना था और इस कारण निर्धारिती द्वारा न्यास में उक्त रकम जमा करने के अगले दिन ही कर्मकारों को बोनस का संदाय किया गया था । यह बात उस देय तारीख के पर्यवसान से पूर्व घटित हुई थी जिस तारीख तक अधिनियम की धारा 36 के अधीन कटौती का दावा करने के लिए यह संदाय किया जाना अनुमित था । तथापि, चूंकि संदाय न्यास से किया गया था, इसलिए निर्धारण अधिकारी ने यह दृष्टिकोण अपनाया कि क्योंकि निर्धारिती द्वारा कर्मचारियों को संदाय प्रत्यक्ष रूप से नकद में नहीं किया गया है, इसलिए यह अधिनियम की धारा 40क(9) के उपबंधों को देखते हुए अनुज्ञेय नहीं है । जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया है, यद्यपि आय-कर आयुक्त (अपील) तथा आय-कर अपील अधिकरण द्वारा इस दृष्टिकोण को स्वीकार नहीं किया गया किंतु उच्च न्यायालय ने निर्धारण अधिकारी द्वारा अपनाए गए आधार को न्यायोचित पाया । यहां भी इस न्यायालय का यह विचार है कि उच्च न्यायालय ने अधिनियम की धारा 40क(9) के उपबंधों का अवलंब लेकर गलती की है । यह धारा निर्धारिती द्वारा नियोजक के रूप में कोई निधि, न्यास, कंपनी इत्यादि स्थापित करने या बनाने हेतु, या अभिदाय के रूप में संदत्त की गई रकम की बाबत कटौतियों के संबंध में है । शर्त यह है कि ऐसी राशि धारा 36 की उपधारा (1) के खंड (iv) या खंड (ivक) या खंड (v) द्वारा या के अधीन उपबंधित प्रयोजन और सीमा तक संदत्त की जानी चाहिए । तथापि, यहां हमारा सरोकार बोनस के संदाय से है जो धारा 36 की उपधारा (1) के पूर्वोक्त किसी भी खंड के अंतर्गत नहीं आता है । इसलिए धारा 40क(9) लागू नहीं होती है । जहां तक धारा 43ख के उपबंधों का संबंध है, वे भी लागू नहीं होते हैं क्योंकि धारा 43ख का खंड (ख) कर्मचारियों के कल्याण के लिए किसी भविष्य निधि या अधिवार्षिकी निधि या उपदान निधि या किसी अन्य निधि को अभिदाय के रूप में संदेय राशि को निर्दिष्ट करता है । इस प्रकार, इस धारा में भी बोनस के बारे में उल्लेख नहीं है । इसके साथ-साथ न्यायालय धारा 36 के उपबंधों पर आता है जिसमें ऐसे विभिन्न प्रकार के खर्चे प्रगणित हैं जो अधिनियम की धारा 28 के अधीन कारबार से आय की गणना करते समय कटौती के रूप में अनुज्ञेय हैं । बोनस के द्वारा संदत्त रकम एक ऐसा व्यय है जो धारा 36 की उपधारा (1) के खंड (i) के अधीन अनुज्ञेय है । इस बारे में कोई विवाद नहीं है कि निर्धारिती द्वारा यह रकम अपने कर्मचारियों को नियत समय के भीतर संदत्त की गई थी । अधिनियम की धारा 43ख या 40क(9) के अधीन विनिर्दिष्ट वर्जना निर्धारिती के आड़े नहीं आती है । इसलिए उच्च न्यायालय ने निर्धारिती की

कारबार से आय की गणना करते समय इस व्यय को कटौती के रूप में नामंजूर करके गलती की है और आय-कर अपील अधिकरण का विनिश्चय सही था । (पैरा 14 और 17)

निर्दिष्ट निर्णय

पैरा

[1997] (1997) 10 एस. सी. सी. 362 =
225 आई. टी. आर. 798 (एस. सी.) :
ब्रुक बांड इंडिया लिमिटेड बनाम **आय-कर आयुक्त** । 6, 9, 13

अपीली (सिविल) अधिकारिता : 2016 की सिविल अपील सं. 9611 और इसके साथ 2016 की सिविल अपील सं. 9612.

2008 के कर मामला (अपील) सं. 48 में मद्रास उच्च न्यायालय के तारीख 25 अप्रैल, 2011 के निर्णय और आदेश के विरुद्ध अपील ।

अपीलार्थी की ओर से सर्वश्री जे. बालचन्द्र, वी. रामसुब्रमण्यन और ए. लक्ष्मीनारायणन

प्रत्यर्थियों की ओर से सर्वश्री के. राधाकृष्ण, ज्येष्ठ अधिवक्ता, रूपेश कुमार, इन्द्र वीरसिंह और (श्रीमती) अनील कटियार

न्यायालय का निर्णय न्यायमूर्ति ए. के. सिकरी ने दिया ।

न्या. सिकरी – इजाजत दी गई ।

2. मामला अंतिम रूप से सुना गया ।

3. अपीलार्थी/निर्धारिती, जो ओषधि और मध्यकों के थोक निर्माण और विक्रय के कारबार में लगी एक पब्लिक लिमिटेड कंपनी है, द्वारा इन अपीलों में दो विवाद्यक उठाए गए हैं । प्रथम विवाद्यक आय-कर अधिनियम, 1961 (जिसे इसमें इसके पश्चात् "अधिनियम" कहा गया है) की धारा 35घ के अधीन व्यय के क्रमिक अपाकरण के संबंध में है । द्वितीय विवाद्यक निर्धारिती द्वारा अपने कर्मचारियों को किए गए बोनस के संदाय की कटौती से संबंधित है । प्रश्नगत निर्धारण वर्ष 1999-2000 और 2001-2002 हैं । उपर्युक्त विवाद्यकों का विनिश्चय करने के लिए जो संक्षिप्त तथ्य सुसंगत हैं, वे निम्नलिखित हैं ।

4. निर्धारिती ने पांडिचेरी और कुड्डालोर में स्थित अपनी विद्यमान उत्पादन इकाइयों के विस्तार और उनके अनुसंधान तथा विकास के क्रियाकलाप के विस्तार के संबंध में पूंजी व्यय और अन्य व्यय की पूर्ति के लिए निधियां जुटाने हेतु जनता में शेयर निर्गमित किए । निर्धारिती ने जनता में कुल मिलाकर 6,04,00,000/- रुपए के 10/- रुपए नकद के हिसाब से 15,10,000 साधारण शेयर 30/- रुपए प्रीमियम प्रति शेयर निर्गमित किए ।

5. पूर्वोक्त निर्गमन निर्धारण वर्ष 1995-96 से सुसंगत तारीख 31 मार्च, 1995 को समाप्त होने वाले वित्तीय वर्ष के दौरान सार्वजनिक अभिदान के लिए खुला । निर्धारिती ने जारी की गई विवरणिका में परियोजना कॉलम में स्पष्ट रूप से यह उल्लेख किया कि उसके विद्यमान उत्पादों, विशिष्ट रूप से इबूप्रोफेन और रंटीडाइन, की उत्पादन क्षमता निम्न प्रकार से है :–

> "कंपनी निम्नलिखित विस्तारित परियोजनाओं का बीड़ा उठा रही है –
>
> (1) इबूप्रोफेन – पांडिचेरी स्थित इबूप्रोफेन संयंत्र की वर्तमान स्थापित क्षमता को 840 टन प्रतिवर्ष के स्तर से बढ़ाकर 1200 टन प्रतिवर्ष किया जाना प्रस्तावित है । क्षमता में बढ़ोतरी प्राथमिक रूप से आंतरिक विकसित प्रक्रिया के कारण होगी, जिसके परिणामस्वरूप बैच प्रक्रिया में लगने वाले समय में पर्याप्त कमी आएगी । क्षमता बढ़ाने में सहायता करने के लिए अपेक्षित अतिरिक्त संयंत्र और मशीनरी में अतिरिक्त कच्ची सामग्री के भंडारण की सुविधाएं, शीतन संयंत्र और प्रयोगशाला की सुविधाएं सम्मिलित होंगी, जिनका संकलित मूल्य 95 लाख रुपए है ।
>
> (2) रंटीडाइन का विस्तार – कुड्डालोर स्थित रंटीडाइन संयंत्र की स्थापित क्षमता दो चरणों में 60 टन प्रतिवर्ष से बढ़ाकर 180 टन प्रतिवर्ष करना प्रस्तावित है । प्रथम चरण में, क्षमता को अतिरिक्त संयंत्र और मशीनरी का स्थापन करके 120 टन प्रतिवर्ष बढ़ाया जाना प्रस्तावित है । इस चरण की प्राक्कलित लागत 286 लाख रुपए है, जिसमें कुड्डालोर में एक आधुनिक प्रशासनिक ब्लाक का निर्माण करना भी सम्मिलित है ।"

6. निर्धारिती ने पूर्वोक्त शेयर निर्गमन पर हुए व्यय के प्रति 45,51,890/- रुपए उपगत किए और निर्धारण वर्ष 1995-96 से 2004-05

तक प्रत्येक वर्ष पूर्वोक्त शेयर निर्गमन व्यय का 1/10वां भाग का अधिनियम की धारा 35घ के अधीन दावा किया । प्रस्तुत की गई सामग्री का विवेचन करने के पश्चात् निर्धारण अधिकारी ने उन्हीं तथ्यों के आधार पर (अधिनियम की धारा 35घ के अधीन शेयर निर्गमन व्यय का 1/10वां भाग) आरंभिक निर्धारण वर्ष, निर्धारण वर्ष 1995-96, के लिए निर्धारिती का दावा मंजूर किया । तथापि, निर्धारण अधिकारी ने निर्धारण वर्ष 1996-97 के लिए व्ययों को इस आधार पर नामंजूर कर दिया कि **ब्रुक बांड इंडिया लिमिटेड** बनाम **आय-कर आयुक्त**[1] वाले मामले में इस न्यायालय के विनिश्चय को ध्यान में रखते हुए शेयर निर्गमन व्यय कटौती के लिए अर्ह नहीं हैं और यह उल्लेख किया कि उपगत व्यय पूंजीगत प्रकृति का है और इसलिए कारबार लाभों की गणना के लिए अनुज्ञेय नहीं है ।

7. निर्धारिती ने निर्धारण अधिकारी द्वारा निर्धारण वर्ष 1996-97 के लिए की गई उपर्युक्त नामंजूरी से व्यथित होकर आय-कर आयुक्त (अपील) के समक्ष अपील फाइल की, जिन्होंने अपने आदेश द्वारा निर्धारण अधिकारी को निदेश दिया कि निर्धारिती के कारखाना परिसर की अस्तित्व जांच की जाए और निर्धारिती द्वारा किए गए दावे को न्यायोचित ठहराने के लिए यह पता लगाया जाए कि क्या कारखाने में संयंत्र और मशीनरी में कोई बढ़ोतरी की गई है और क्या कारखाने में स्थित भवनों में कोई ऐसा अभिवर्धन किया गया है जिसके द्वारा विद्यमान औद्योगिक उपक्रम में कोई विस्तार किया गया हो ।

8. निर्धारण अधिकारी ने पूर्वोक्त निदेश के अग्रसरण में कारखाना परिसर की सम्यक् अस्तित्व जांच करने और औद्योगिक उपक्रम में किए गए सुविधाओं के विस्तार के प्रति समाधान होने पर शेयर निर्गमन व्ययों को सम्यक् रूप से मंजूर किया । निर्धारण अधिकारी ने ऐसा करते हुए निर्धारण वर्ष 1996-97 के लिए उसे उपलब्ध कराई गई सभी सामग्री की संवीक्षा करने के पश्चात् एक ब्यौरेवार और विस्तृत आदेश पारित किया और तथ्य का एक सकारात्मक निष्कर्ष अभिलिखित किया कि औद्योगिक उपक्रम की विद्यमान इकाइयों का विस्तार किया गया है और इसके प्रति समाधान होने के पश्चात् अधिनियम की धारा 35घ के अधीन शेयर निर्गमन व्ययों का दावा मंजूर किया ।

इस प्रक्रम पर यह बताना सुसंगत है कि विभाग ने निर्धारण वर्ष 1996-

---

[1] (1997) 10 एस. सी. सी. 362 = 225 आई. टी. आर. 798 (एस. सी.).

97 के लिए शेयर निर्गमन व्यय मंजूर करने के मुद्दे को आगे अपील में नहीं उठाया और इसलिए विद्यमान औद्योगिक उपक्रम के विस्तार के मुद्दे और परिणामस्वरूप अधिनियम की धारा 35घ के निबंधनों के अनुसार शेयर निर्गमन व्यय की अर्हता की बाबत आदेश अंतिम हो गया था ।

9. उसके पश्चात् निर्धारण अधिकारी ने निर्धारण वर्ष 1997-98 से 2004-05 के लिए अधिनियम की धारा 35घ के अधीन शेयर निर्गमन व्यय के दावे की बाबत भिन्न आधार अपनाया और **ब्रुक बांड इंडिया लिमिटेड** (उपरोक्त) वाले मामले का अवलंब लेते हुए उक्त व्यय को इस आधार पर नामंजूर कर दिया कि वह व्यय पूंजीगत प्रकृति का था ।

10. उपर्युक्त पृष्ठभूमि में, निर्धारिती ने निर्धारण वर्ष 2001-02 के लिए अधिनियम की धारा 35घ के अधीन क्रमिक अपाकरण के लिए पुनः दावा किया जो उन्हीं कारणों के आधार पर नामंजूर कर दिया गया । तथापि, निर्धारिती की आय-कर आयुक्त (अपील) के समक्ष अपील सफल रही, क्योंकि आय-कर आयुक्त (अपील) ने उस व्यय को मंजूर कर लिया । आय-कर आयुक्त (अपील) के आदेश की आय-कर अपील अधिकरण द्वारा भी अभिपुष्टि की गई । तथापि, उच्च न्यायालय ने निर्धारण अधिकारी द्वारा अपनाए गए दृष्टिकोण का यथापूर्वकरण करते हुए आय-कर अपील अधिकरण के आदेश को उलट दिया और अधिनियम की धारा 35घ के अधीन व्यय के क्रमिक अपाकरण को नामंजूर कर दिया ।

11. जहां तक बोनस के दावे का संबंध है, निर्धारिती द्वारा निर्धारण वर्ष 2001-02 के लिए फाइल की गई विवरणी में उसके द्वारा यह उल्लेख किया गया कि उसने उक्त वित्तीय वर्ष में 96,08,002/- रुपए अपने कर्मचारियों को बोनस संदत्त किया था और इसलिए उसने अधिनियम की धारा 35(2कख) के अधीन कटौती का दावा किया । तथापि, अधिनियम की धारा 40क(9) के उपबंधों का अवलंब लेते हुए उक्त व्यय को इस आधार पर नामंजूर कर दिया गया कि यह संबंधित कर्मचारियों को नकद संदत्त नहीं किया गया था । इसमें पुनः आय-कर आयुक्त (अपील) ने इस व्यय को मंजूर किया और यही दृष्टिकोण आय-कर अपील अधिकरण द्वारा अपनाया गया किंतु उच्च न्यायालय ने इस आधार पर भी आय-कर अपील अधिकरण के मत को उलट दिया । उपर्युक्त इसी पृष्ठभूमि में उच्च न्यायालय के निर्णय में दो प्रश्न विरचित किए गए थे, जिन पर हमारे द्वारा विचार किए जाने और उनका उत्तर दिए जाने की आवश्यकता है ।

12. **प्रश्न सं. 1 – क्या शेयरों के निर्गमन पर उपगत व्यय**

अधिनियम की धारा 35घ के अधीन क्रमिक अपाकरण किए जाने के लिए पात्र है ?

जैसा कि पहले उल्लेख किया गया है, निर्धारण अधिकारी ने इस निमित्त निर्धारण वर्ष 1994-95 और 1996-97 के लिए दावा मंजूर किया था । ऐसे व्यय जो उपगत किए जाते हैं और अधिनियम की धारा 35घ के अधीन क्रमिक अपाकरण की ईप्सा की जाती है, यह 10 वर्ष की अवधि के लिए प्रतिवर्ष 1/10वां भाग मंजूर किया जाता है । ऐसा उपबंध अधिनियम की धारा 35घ के अधीन किया गया है क्योंकि यह उक्त उपबंध के वाचन से स्पष्ट होता है । इस उपबंध को इसमें नीचे उद्धृत किया जाता है :–

> "35घ. (1) जहां कोई निर्धारिती जो भारतीय कंपनी है या (कंपनी से भिन्न) कोई ऐसा व्यक्ति है जो भारत में निवास करता है, उपधारा (2) में विनिर्दिष्ट कोई व्यय 31 मार्च, 1970 के पश्चात् –
>
> (i) अपने कारबार के प्रारंभ के पूर्व, अथवा
>
> (ii) अपने कारबार के प्रारंभ के पश्चात्, अपने उपक्रम के विस्तार के संबंध में या अपने नई औद्योगिक एकक की स्थापना के संबंध में,
>
> उपगत करता है वहां उस निर्धारिती को इस धारा के उपबंधों के अनुसार और उनके अधीन रहते हुए उतनी राशि की कटौती अनुज्ञात की जाएगी जो, यथास्थिति, उस पूर्व वर्ष से, जिसमें उसका कारबार प्रारंभ होता है या उस पूर्व वर्ष से जिसमें औद्योगिक उपक्रम का विस्तार पूरा हो जाता है या नया औद्योगिक एकक उत्पादन या कार्य करना प्रारंभ करता है, प्रारंभ होने वाले दस उत्तरवर्ती पूर्व वर्षों में से प्रत्येक के लिए ऐसे व्यय के 1/10वां भाग के बराबर है ।"

13. निर्धारण वर्ष 1995-96 के लिए जो आय-कर विवरणी फाइल की गई थी उसमें निर्धारिती ने यह दावा किया था कि उसने शेयर निर्गमन व्ययों हेतु 45,51,890/- रुपए की राशि उपगत की थी और निर्धारण वर्ष 1995-96 से 2004-05 तक अधिनियम की धारा 35घ के अधीन पूर्वोक्त शेयर निर्गमन व्ययों के 1/10वां भाग का दावा किया था । निर्धारिती का यह दावा उपर्युक्त उपबंधों के अधीन न्यायोचित और अनुज्ञेय पाया गया था और उस आधार पर अधिनियम की धारा 35घ के अधीन शेयर निर्गमन व्ययों का 1/10वां भाग मंजूर किया गया । जब उसने निर्धारण वर्ष 1996-97 के लिए पुनः दावा किया तो हालांकि यह दावा नामंजूर कर दिया गया

और अपील प्राधिकारी के निदेश पर निर्धारण अधिकारी ने कारखाना परिसर की अस्तित्व जांच की । उसका यह समाधान हो गया कि निर्धारिती के औद्योगिक उपक्रम की सुविधाओं का विस्तार किया गया है । इस समाधान के आधार पर निर्धारण वर्ष 1996-97 के लिए भी व्ययों को मंजूर किया गया । जब एक बार यह स्थिति स्वीकार हो गई और घड़ी निर्धारिती के पक्ष पर चलना आरंभ हो गई थी तो उसे 10 वर्ष की संपूर्ण अवधि पूर्ण करनी थी और प्रथम दो वर्षों में प्रदान किया गया फायदा पश्चात्वर्ती वर्षों में इनकार नहीं किया जा सकता था क्योंकि ब्लाक अवधि निर्धारण वर्ष 1996-97 से आरंभ होकर निर्धारण वर्ष 2004-05 तक 10 वर्ष थी । तथापि, उच्च न्यायालय ने **ब्रुक बांड इंडिया लिमिटेड** (उपरोक्त) वाले मामले में इस न्यायालय के निर्णय का अनुसरण करते हुए यह फायदा नामंजूर कर दिया । उक्त मामले में यह अभिनिर्धारित किया गया था कि कंपनी के विस्तार के प्रयोजन के लिए लोक निर्गमन पर उपगत व्यय पूंजीगत व्यय है । तथापि, इस आशय के तर्क के बावजूद कि पूर्वोक्त निर्णय तब दिया गया था जब धारा 35घ कानून की पुस्तक में नहीं थी और इस उपबंध ने विधिक स्थिति को परिवर्तित कर दिया था, उच्च न्यायालय ने फिर भी उक्त निर्णय का अनुसरण किया । यही बात है जहां उच्च न्यायालय ने गलती की क्योंकि प्रस्तुत मामला अधिनियम की धारा 35घ के उपबंधों को ध्यान में रखते हुए विनिश्चित किया जाना है । किसी भी दशा में, इस बात को दोहराने की आवश्यकता है कि प्रस्तुत मामले में प्रथम दो निर्धारण वर्षों के लिए इन्हीं उपबंधों के अधीन फायदा मंजूर किया गया है और इसलिए यह फायदा पश्चात्वर्ती ब्लाक अवधि में इनकार नहीं किया जा सकता था । इस प्रकार, हम प्रश्न सं. 1 का उत्तर यह अभिनिर्धारित करते हुए निर्धारिती के पक्ष में देते हैं कि निर्धारिती प्रश्नगत निर्धारण वर्षों के लिए अधिनियम की धारा 35घ के फायदा का हकदार था ।

14. **प्रश्न सं. 2 – क्या निर्धारिती अपने कर्मचारियों को किए गए बोनस के संदाय के लिए अधिनियम की धारा 36 के अधीन कटौती का पात्र नहीं है, क्योंकि यह अधिनियम की धारा 40क(9) के प्रतिकूल है ?**

तथ्य के रूप में इस बात का उल्लेख किए जाने की आवश्यकता है कि प्रश्नगत निर्धारण वर्षों में निर्धारिती के कर्मकारों ने बोनस की मात्रा का विवाद उठाया था, जिसके कारण मजदूर अशांत हो गई थी । इस वजह से कर्मकारों ने अंततः उन्हें दिए जाने वाले बोनस को स्वीकार करने से इनकार कर दिया । ऐसी स्थिति होने पर निर्धारिती ने अधिनियम की धारा

43ख की अपेक्षा का पालन करने के लिए न्यास को संदाय किया था क्योंकि उक्त उपबंध में यह स्पष्ट किया गया है कि बोनस के संबंध में कटौती केवल तभी मंजूर की जाएगी यदि वास्तव में संदाय किया जाता है । प्रासंगिक रूप से, कर्मकारों के साथ विवाद को समय रहते सुलझाया जाना था और इस कारण निर्धारिती द्वारा न्यास में उक्त रकम जमा करने के अगले दिन ही कर्मकारों को बोनस का संदाय किया गया था । यह बात उस देय तारीख के पर्यवसान से पूर्व घटित हुई थी जिस तारीख तक अधिनियम की धारा 36 के अधीन कटौती का दावा करने के लिए यह संदाय किया जाना अनुमित था । तथापि, चूंकि संदाय न्यास से किया गया था, इसलिए निर्धारण अधिकारी ने यह दृष्टिकोण अपनाया कि क्योंकि निर्धारिती द्वारा कर्मचारियों को संदाय प्रत्यक्ष रूप से नकद में नहीं किया गया है, इसलिए यह अधिनियम की धारा 40क(9) के उपबंधों को देखते हुए अनुज्ञेय नहीं है । जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया है, यद्यपि आय-कर आयुक्त (अपील) तथा आय-कर अपील अधिकरण द्वारा इस दृष्टिकोण को स्वीकार नहीं किया गया किंतु उच्च न्यायालय ने निर्धारण अधिकारी द्वारा अपनाए गए आधार को न्यायोचित पाया । यहां भी हमारा यह विचार है कि उच्च न्यायालय ने अधिनियम की धारा 40क(9) के उपबंधों का अवलंब लेकर गलती की है ।

15. यह विवादग्रस्त नहीं है कि अधिनियम की धारा 36(1)(ii) के अनुसार कर्मचारियों को बोनस के रूप में संदाय के मद्धे उपगत व्यय कारबार व्यय के रूप में अनुज्ञेय है । यह उपबंध निम्न प्रकार से है :–

> "36 (1). धारा 28 में निर्दिष्ट आय संगणित करने में ऐसी कटौतियां जो निम्नलिखित खंडों में उपबंधित हैं, उनमें चर्चित मामलों की बाबत अनुज्ञात की जाएगी –
>
> (i) ……
>
> (ii) की गई सेवाओं के लिए बोनस या कमीशन के रूप में किसी कर्मचारी को संदत्त कोई राशि, जहां ऐसी राशि उसको लाभ या लाभांश के रूप में संदेय न हुई होती यदि वह बोनस या कमीशन के रूप में संदत्त न की गई होती ।"

16. तथापि, धारा 43ख में यह आज्ञापक है कि कतिपय कटौतियां केवल वास्तविक संदाय पर मंजूर की जाएंगी । यह उपबंध, जो हमारे प्रयोजन के लिए सुसंगत है, निम्न प्रकार से है :–

"43ख. वास्तविक संदाय पर ही की जाने वाली कुछ कटौतियां – इस अधिनियम के किसी अन्य उपबंध में किसी बात के होते हुए भी, ऐसी कटौती जो –

(क) ऐसी राशि की बाबत, जो निर्धारिती द्वारा, उस समय लागू विधि के अधीन कर, शुल्क, उपकर या फीस के रूप में संदेय है, चाहे वह किसी भी नाम से जानी जाए, या

(ख) किसी ऐसी राशि की बाबत, जो नियोजक के रूप में निर्धारिती द्वारा किसी भविष्य निधि या अधिवार्षिकी निधि या उपदान निधि या कर्मचारियों के कल्याण के लिए किसी अन्य विधि में अभिदाय के रूप में संदेय है, या

(ग) किसी ऐसी राशि की बाबत, जो धारा 36 की उपधारा (1) के खंड (ii) में उल्लिखित है, या

(घ) किसी ऐसी राशि की बाबत, जो निर्धारिती द्वारा किसी लोक वित्तीय संस्था या राज्य वित्तीय निगम या राज्य औद्योगिक विनिधान निगम से लिए गए किसी उधार या ऋण पर ऐसे उधार या ऋण को लागू करार के निबंधनों और शर्तों के अनुसार ब्याज के रूप में संदेय है,

इस अधिनियम के अधीन अन्यथा अनुज्ञेय है, उस पूर्व वर्ष की जिसमें उसके द्वारा ऐसी राशि वस्तुतः अदा कर दी जाती है, धारा 28 में निर्दिष्ट आय की संगणना करने में (उस पूर्व वर्ष का विचार किए बिना जिसमें निर्धारिती ने राशि अदा करने का दायित्व, उसके द्वारा नियमित रूप से प्रयुक्त लेखा पद्धति के अनुसार उपगत किया गया था), अनुज्ञात की जाएगी ।"

17. इस प्रक्रम पर धारा 40क(9) का भी उल्लेख किए जाने की आवश्यकता है, जिसे इसमें नीचे उद्धृत किया जाता है :–

"40क(9). निर्धारिती द्वारा नियोजक के रूप में किसी प्रयोजन के लिए किसी निधि, न्यास, कंपनी, व्यक्ति-संगम, व्यष्टि-निकाय, सोसाइटी रजिस्ट्रीकरण अधिनियम, 1860 (1860 का 21) के अधीन रजिस्ट्रीकृत सोसाइटी या अन्य संस्था की स्थापना के लिए या उसके बनाने के लिए या उसमें अभिदाय के रूप में संदत्त किसी राशि की बाबत कोई कटौती तभी अनुज्ञात की जाएगी जब ऐसी राशि धारा 36 की उपधारा (1) के खंड (iv), या खंड (ivक) या खंड (v) द्वारा या

उसके अधीन उपबंधित अथवा उस समय लागू किसी अन्य विधि द्वारा या उसके अधीन अपेक्षित प्रयोजनों के लिए और उस तक इस प्रकार अदा की जाती है ।"

यह धारा निर्धारिती द्वारा नियोजक के रूप में कोई निधि, न्यास, कंपनी इत्यादि स्थापित करने या बनाने हेतु, या अभिदाय के रूप में संदत्त की गई रकम की बाबत कटौतियों के संबंध में है । शर्त यह है कि ऐसी राशि धारा 36 की उपधारा (1) के खंड (iv) या खंड (ivक) या खंड (v) द्वारा या उनके अधीन उपबंधित प्रयोजन और सीमा तक संदत्त की जानी चाहिए । तथापि, यहां हमारा सरोकार बोनस के संदाय से है जो धारा 36 की उपधारा (1) के पूर्वोक्त किसी भी खंड के अंतर्गत नहीं आता है । इसलिए धारा 40क(9) लागू नहीं होती है । जहां तक धारा 43ख के उपबंधों का संबंध है, वे भी लागू नहीं होते हैं क्योंकि धारा 43ख का खंड (ख) कर्मचारियों के कल्याण के लिए किसी भविष्य निधि या अधिवार्षिकी निधि या उपदान निधि या किसी अन्य निधि को अभिदाय के रूप में संदेय राशि को निर्दिष्ट करता है । इस प्रकार, इस धारा में भी बोनस के बारे में उल्लेख नहीं है । इसके साथ-साथ हम धारा 36 के उपबंधों पर आते हैं जिसमें ऐसे विभिन्न प्रकार के खर्चे प्रगणित हैं जो अधिनियम की धारा 28 के अधीन कारबार से आय की गणना करते समय कटौती के रूप में अनुज्ञेय हैं । बोनस के द्वारा संदत्त रकम एक ऐसा व्यय है जो धारा 36 की उपधारा (1) के खंड (i) के अधीन अनुज्ञेय है । इस बारे में कोई विवाद नहीं है कि निर्धारिती द्वारा यह रकम अपने कर्मचारियों को नियत समय के भीतर संदत्त की गई थी । अधिनियम की धारा 43ख या 40क(9) के अधीन विनिर्दिष्ट वर्जना निर्धारिती के आड़े नहीं आती है । इसलिए उच्च न्यायालय ने निर्धारिती की कारबार से आय की गणना करते समय इस व्यय को कटौती के रूप में नामंजूर करके गलती की है और आय-कर अपील अधिकरण का विनिश्चय सही था ।

18. दोनों आधारों पर उच्च न्यायालय का आदेश अपास्त किया जाता है और अपीलें मंजूर की जाती हैं ।

अपीलें मंजूर की गईं ।

जस.

[2017] 2 उम. नि. प. 75

ए. सत्यनारायण रेड्डी और अन्य

बनाम

पीठासीन अधिकारी, श्रम न्यायालय और अन्य

30 सितम्बर, 2016

न्यायमूर्ति दीपक मिश्र, न्यायमूर्ति वी. गोपाल गौड़ा और न्यायमूर्ति कुरियन जोसेफ

औद्योगिक विवाद अधिनियम, 1947 (1947 का 14) – धारा 2(ग)(ध), धारा 10 और धारा 33ग(2) – कामबंदी प्रतिकर – स्वैच्छिक सेवानिवृत्ति योजना – कर्मकार का नियोजक से धन या ऐसी प्रसुविधा जो धन के रूप में संगणित की जा सकती है प्राप्त करने का हक – यद्यपि स्वैच्छिक सेवानिवृत्ति योजना में नियोजक और नियोक्ता के संबंध समाप्त हो जाते हैं किन्तु यदि इस योजना के अन्तर्गत पूर्ववर्ती कानूनी देयों जैसेकि कामबंदी प्रतिकर, निर्वाह भत्ता इत्यादि को सम्मिलित नहीं किया जाता तो कर्मकार श्रम न्यायालय की शरण में जाने का हकदार होगा ।

माननीय उच्चतम न्यायालय के दो न्यायाधीशों की न्यायपीठ ने 1947 के औद्योगिक विवाद अधिनियम की धारा 33(ग)(2) और साथ ही आंध्र प्रदेश सरकार द्वारा विरचित स्वैच्छिक सेवानिवृत्ति योजना के उपबंधों के निर्वचन पर विचार करते हुए उल्लेख किया कि 2005 की रिट याचिका सं. 820 में आंध्र प्रदेश उच्च न्यायालय की खंड न्यायपीठ द्वारा निकाला गया निष्कर्ष, जिसके द्वारा 2005 की रिट याचिका सं. 4196 में विद्वान् एकल न्यायधीश द्वारा पारित तारीख 21 मार्च, 2005 के निर्णय और आदेश का अनुमोदन अन्य बातों के साथ यह अभिनिर्धारित करते हुए किया गया कि यदि एक बार कर्मकार ने स्वैच्छिक सेवानिवृत्ति योजना का लाभ प्राप्त कर लिया है और विशेष प्रतिकर पैकेज (एकमुश्त) प्राप्त कर लिया है तो वे अधिनियम की धारा 33(ग)(2) के अधीन कामबंदी प्रतिकर का दावा नहीं कर सकते और इस संदर्भ में केवल प्रीतम सिंह गिल और ए. के. बिन्दल वाले मामलों में दिए गए निर्णयों में की गई असंगत (परस्पर विरोधी) टिप्पणियों का उल्लेख किया और तत्पश्चात् अधिनियम की संरचना की बारीक जांच करने के प्रयोजनार्थ मामले को ए. सत्यनारायण रेड्डी और अन्य बनाम पीठासीन अधिकारी, श्रम न्यायालय, गुंटुर और अन्य वाले मामले में गठित वृहत्तर न्यायपीठ को यह अभिकथित करते हुए निर्दिष्ट कर

दिया कि "कामबंदी प्रतिकर के संदाय का दावा करने के कर्मकार के अधिकार से इनकार नहीं किया जाता और यह विवादित भी नहीं है । यदि उक्त दावे का स्वैच्छिक सेवानिवृत्ति योजना के साथ कोई संबंध नहीं है तो हमारे विचार में किसी भी मामले में जैसाकि हमारे समक्ष उपस्थित है, यह अभिनिर्धारित करना संभव होगा कि अधिनियम की धारा 33(ग)(2) के अधीन कार्यवाही पोषणीय होगी । इसलिए हमारा विचार है कि चूंकि नेशनल बिल्डिंग्स कंस्ट्रक्शन कारपोरेशन और ए. के. बिन्दल वाले मामलों में दिए गए उक्त विनिश्चयों में प्रकट रूप से टकराव विद्यमान है । मामले के महत्वपूर्ण होने के कारण इस पर वृहत्तर न्यायपीठ द्वारा विचार किया जाना चाहिए ।" वृहत्तर न्यायपीठ द्वारा अपील मंजूर करते हुए,

अभिनिर्धारित – स्वैच्छिक सेवानिवृत्ति योजना के परिशीलन से स्पष्ट हो जाता है कि यह योजना कामबंदी प्रतिकर पर विचार नहीं करती । जैसाकि प्रीतम सिंह गिल वाले मामले में अधिकथित किया गया है, निलंबन भत्ते के संदाय से संबंधित कोई दावा उक्त उपबंधों के अधीन किया जा सकता है चाहे कर्मचारी को सेवा से बर्खास्त किया जा रहा हो । ए. के. बिन्दल वाले मामले में दो न्यायाधीशों की न्यायपीठ ने अभिनिर्धारित किया कि योजना को स्वीकार किए जाने और स्वैच्छिक सेवानिवृत्ति के योजना लाभों को प्राप्त किए जाने के पश्चात् कोई कर्मचारी उच्चतर मजदूरी के लिए दावा नहीं कर सकता । यह विवाद भिन्न था । यदि सेवानिवृत्ति योजना में कामबंदी प्रतिकर के बारे में उल्लेख किया गया होता, तो यह कहने की आवश्यकता नहीं है कि ऐसा दावा भी सम्मिलित किया जा सकता था और यह उपधारणा की जा सकती थी कि कर्मकार द्वारा प्राप्त की गई रकम में कामबंदी प्रतिकर की रकम भी सम्मिलित है । इस मामले में यह तथ्यात्मक स्थिति नहीं है । इसलिए विवाद जो प्रीतम सिंह गिल वाले मामले में उत्पन्न हुआ और विवाद जो ए. के. बिन्दल वाले मामले में उत्पन्न हुआ, एक दूसरे से बिल्कुल भिन्न है । इसलिए हम विचार व्यक्त करते हैं कि प्रीतम सिंह गिल और ए. के. बिन्दल वाले मामलों में दिए गए विनिश्चयों के मध्य कोई टकराव नहीं है । हम उचित समझते हैं कि यद्यपि स्वैच्छिक सेवानिवृत्ति योजना में नियोजक और नियोक्ता के मध्य संबंध समाप्त हो जाते हैं किन्तु यदि इस योजना के अन्तर्गत पूर्ववर्ती देयों, जैसेकि कामबंदी प्रतिकर, निर्वाह भत्ता, को सम्मिलित नहीं किया जाता, तो कर्मकार अधिनियम की धारा 33ग(2) के अधीन श्रम न्यायालय की शरण में जाने का हकदार होगा । यदि इनको विनिर्दिष्ट रूप से सम्मिलित किया जाता है, या स्वैच्छिक सेवानिवृत्ति योजना की भाषा से यह दर्शित होता है कि योजना के अधीन

दावे को सम्मिलित किया गया है, तो किसी फोरम को कोई अधिकारिता प्राप्त नहीं होगी । (पैरा 16)

न्यायालय उपरोक्त स्पष्टीकरण के साथ यह निर्देशित कर सकता था कि मामले को दो न्यायाधीशों के न्यायपीठ के समक्ष सूचीबद्ध किया जाए । किन्तु इसकी आवश्यकता नहीं है । यह उल्लेखनीय है कि कामबंदी प्रतिकर से संबंधित दावा स्वैच्छिक सेवानिवृत्ति योजना के अधीन सम्मिलित नहीं होता । श्रम न्यायालय, विद्वान् एकल न्यायाधीश और खंड न्यायपीठ ने दावे पर इस आधार पर विचार करने से इनकार कर दिया है कि उनको विवाद का न्यायनिर्णयन करने की अधिकारिता प्राप्त नहीं है । हमने पहले ही अभिनिर्धारित किया है कि यदि कामबंदी प्रतिकर से संबंधित दावा स्वैच्छिक सेवानिवृत्ति योजना का भाग नहीं है, तो श्रम न्यायालय को अधिनियम की धारा 33ग(2) के अधीन न्यायनिर्णयन की अधिकारिता प्राप्त है । इसलिए हम उच्च न्यायालय और श्रम न्यायालय द्वारा पारित निर्णय को अपास्त करते हैं । (पैरा 17)

निर्दिष्ट निर्णय

		पैरा
[2008]	(2008) 5 एस. सी. सी. 280 : **ए. सत्यनारायण रेड्डी और अन्य** बनाम **पीठासीन अधिकारी, श्रम न्यायालय, गुंटुर और अन्य ;**	1
[2003]	(2003) 5 एस. सी. सी. 163 : **ए. के. बिन्दल और एक अन्य** बनाम **भारत संघ और अन्य ;**	1,6,9,16
[2002]	(2002) 1 एल. एल. जे. बाम्बे 527 : **पाल** बनाम **पाल वीआरएस एम्प्लॉइज वेलफेयर एसोसिएशन ;**	6
[1972]	(1972) 2 एस. सी. सी. 1 : **नेशनल बिल्डिंग्स कंस्ट्रक्शन कारपोरेशन** बनाम **प्रीतम सिंह गिल और अन्य ;**	1,10, 12,16
[1970]	ए. आई. आर. 1970 एस. सी. 237 = (1969) 2 एस. सी. सी. 400 : **यू. पी. इलेक्ट्रिक सप्लाई कंपनी लिमिटेड** बनाम **आर. के. शुक्ला और एक अन्य ;**	11

[1970] ए. आई. आर. 1970 मैसूर 225 :
गवर्नमेंट सोप फैक्ट्री, बंगलोर बनाम **श्रम न्यायालय** ; 6

[1964] [1964] 3 एस. सी. आर. 140 :
सेन्ट्रल बैंक आफ इंडिया बनाम **पी. एस. राजगोपालन** ; 10

[1964] [1964] 2 एस. सी. आर. 809 :
मै. केशोराम कॉटन मिल्स लिमिटेड बनाम
गंगाधर और अन्य । 10

अपीली (सिविल) अधिकारिता : 2008 की सिविल अपील सं. 3053.

2005 की रिट अपील सं. 820 में आन्ध्र प्रदेश उच्च न्यायालय, हैदराबाद द्वारा तारीख 13 अप्रैल, 2005 को पारित किए गए निर्णय और आदेश के विरुद्व अपील ।

अपीलार्थी की ओर से श्री ए. सुब्बाराव

प्रत्यर्थियों की ओर से सर्वश्री मोहन प्रसाद मेहरिया और जी. एन. रेड्डी

न्यायालय का निर्णय न्यायमूर्ति दीपक मिश्र ने दिया ।

न्या. मिश्र – इस न्यायालय के दो न्यायाधीशों की न्यायपीठ ने 1947 के औद्योगिक विवाद अधिनियम (संक्षेप में "अधिनियम") की धारा 33(ग)(2) और साथ ही आंध्र प्रदेश सरकार द्वारा विरचित **स्वैच्छिक सेवानिवृत्ति योजना** के उपबंधों के निर्वचन पर विचार करते हुए उल्लेख किया कि 2005 की रिट याचिका सं. 820 में आंध्र प्रदेश उच्च न्यायालय की खंड न्यायपीठ द्वारा निकाला गया निष्कर्ष, जिसके द्वारा 2005 के रिट याचिका सं. 4196 में विद्वान् एकल न्यायाधीश द्वारा पारित तारीख 21 मार्च, 2005 के निर्णय और आदेश का अनुमोदन अन्य बातों के साथ यह अभिनिर्धारित करते हुए किया गया कि यदि एक बार कर्मकार ने स्वैच्छिक सेवानिवृत्ति योजना का लाभ प्राप्त कर लिया है और विशेष प्रतिकर पैकेज (एकमुश्त) प्राप्त कर लिया है तो वे अधिनियम की धारा 33(ग)(2) के अधीन कामबंदी प्रतिकर का दावा नहीं कर सकते और इस संदर्भ में **नेशनल बिल्डिंग्स कंस्ट्रक्शन कारपोरेशन** बनाम **प्रीतम सिंह गिल और अन्य**[1] और **ए. के. बिन्दल और एक अन्य** बनाम **भारत संघ और अन्य**[2]

---

[1] (1972) 2 एस. सी. सी. 1.

[2] (2003) 5 एस. सी. सी. 163.

वाले मामलों में दिए गए निर्णयों में की गई असंगत (परस्पर विरोधी) टिप्पणियों का उल्लेख किया और तत्पश्चात् अधिनियम की संरचना की बारीक जांच करते हुए मामले को **ए. सत्यनारायण रेड्डी और अन्य** बनाम **पीठासीन अधिकारी, श्रम न्यायालय, गुंटुर और अन्य**[1] वाले मामले में गठित वृहत्तर न्यायपीठ को यह अभिकथित करते हुए निर्दिष्ट कर दिया :–

> "कामबंदी प्रतिकर के संदाय का दावा करने के कर्मकार के अधिकार से इनकार नहीं किया जाता और यह विवादित भी नहीं है । यदि उक्त दावे का स्वैच्छिक सेवानिवृत्ति योजना के साथ कोई संबंध नहीं है तो हमारे विचार में किसी भी मामले में जैसाकि हमारे समक्ष उपस्थित है, यह अभिनिर्धारित करना संभव होगा कि अधिनियम की धारा 33(ग)(2) के अधीन कार्यवाही पोषणीय होगी । इसलिए हमारा विचार है कि चूंकि **नेशनल बिल्डिंग्स कंस्ट्रक्शन कारपोरेशन** (उपरोक्त) और **ए. के. बिन्दल** (उपरोक्त) वाले मामलों में दिए गए उक्त विनिश्चयों में प्रकट रूप से टकराव विद्यमान है । मामले के महत्वपूर्ण होने के कारण इस पर वृहत्तर न्यायपीठ द्वारा विचार किया जाना चाहिए ।"

उपरोक्त आदेश के कारण मामला हमारे समक्ष प्रस्तुत किया गया है ।

2. मामले के तथ्यों से यह प्रकट होता है कि अपीलार्थी नागार्जुन को-आपरेटिव शुगर लिमिटेड (संक्षेप में "कंपनी"), जो आंध्र प्रदेश सरकार का उपक्रम है, के कर्मचारी थे । इसको 1971 के आंध्र प्रदेश रिलीफ अंडरटेकिंग (स्पेशल प्रोविजन) अधिनियम (संक्षेप में "1971 का अधिनियम") के निबंधनों के अनुसार "राहत उपक्रम" घोषित किया गया था । जैसाकि स्पष्ट है कि औद्योगिक उपक्रम के प्रबंध तंत्र ने कामबंदी घोषित की जिसके फलस्वरूप प्रतिकर का संदाय किया जाना था । कंपनी के कर्मचारी संघ ने तारीख 5 जनवरी, 1998 के ज्ञापन सं. 25027/शुगर/ ए2/97-3 को चुनौती देते हुए आंध्र प्रदेश उच्च न्यायालय में रिट याचिका फाइल की जिसके अधीन कर्मकार को प्रतिकर प्रदान नहीं किया गया था और वास्तव में उनको उससे (प्रतिकर से) वंचित किया गया था । कर्मकारों द्वारा दलील दी गई कि कामबंदी प्रतिकर का संदाय केवल 1995 के माह जून और जुलाई के लिए किया गया था यद्यपि वे इस प्रतिकर के संदाय के लिए तारीख 1 अगस्त, 1995 से 6 सितम्बर, 2002 की अवधि के लिए

---

[1] (2008) 5 एस. सी. सी. 280.

हकदार थे ।

3. जब मामला अग्रसर हुआ तो आंध्र प्रदेश राज्य ने कंपनी को एस. सी. एम. शुगर लिमिटेड नामक कंपनी को अंतरित कर दिया जिसने कुछ कर्मकारों को तो आमेलित कर लिया और उन आमेलित कर्मचारियों में से कुछ को कामबंदी प्रतिकर का संदाय किया और कुछ को उक्त लाभ प्रदान नहीं किया । यहां पर यह अभिकथित किया जाता है कि एक समय बिन्दु पर सभी कर्मचारियों ने अंतरिती प्रबंध तंत्र के अधीन कार्य करते रहने के लिए अपनी इच्छा व्यक्त कर दी थी । किन्तु पश्चात्‌वर्ती प्रक्रम पर आंध्र प्रदेश सरकार ने उक्त अंतरिती कंपनी के कारखाने को कर्नाटक राज्य में स्थानांतरित करने की अनुज्ञा प्रदान कर दी जिसके परिणामस्वरूप कर्मकारों ने नियोजन में बने रहने का अवसर खो दिया ।

4. जैसाकि तथ्यात्मक पृष्ठभूमि से विदित होता है, आंध्र प्रदेश सरकार ने तारीख 21 मई, 2001 को शासनादेश सं. 25 जारी किया जिसके द्वारा कर्मचारियों को विशेष पैकेज (एकमुश्त) उपलब्ध कराया । विशेष पैकेज (एकमुश्त) में यह शर्त सम्मिलित की गई थी कि प्रतिकर की रकम का संदाय कर्मकार को तभी किया जाएगा यदि वे अंतरिती कंपनी में नियोजन का विकल्प नहीं चुनते । हम पश्चात्‌वर्ती प्रक्रम पर स्वैच्छिक सेवानिवृत्ति योजना को निर्दिष्ट करेंगे ।

5. जैसाकि तथ्यात्मक पृष्ठभूमि से स्पष्ट है, अपीलार्थियों ने स्वैच्छिक सेवानिवृत्ति का विकल्प चुना था और उनको विशेष प्रतिकर की रकम का संदाय स्वैच्छिक सेवानिवृत्ति योजना के निबंधनों के अनुसार किया गया था । यहां पर यह उल्लेख करना आवश्यक है कि चूंकि उक्त योजना के अंतर्गत कामबंदी प्रतिकर के संदाय के लिए कोई उपबंध नहीं बनाया गया, अपीलार्थियों ने संविधान के अनुच्छेद 226 के अधीन उच्च न्यायालय में 1998 की रिट याचिका सं. 16916 फाइल की । इस याचिका में जिस अनुतोष की ईप्सा की गई थी उसका विरोध अंतरिती कंपनी द्वारा यह दलील देते हुए किया गया कि चूंकि कर्मकारों ने स्वैच्छिक सेवानिवृत्ति योजना के अंतर्गत प्रदत्त लाभों को स्वीकार कर लिया है और नियोक्ता और नियोजक के मध्य संबंध समाप्त हो गए हैं, रिट याचिका पोषणीय नहीं है और रिट याचिका में ईप्सित अनुतोष प्रदान नहीं किए जा सकते । विद्वान् एकल न्यायाधीश ने पक्षों के विद्वान् काउंसेलों को सुनने के पश्चात् मत व्यक्त किया कि रिट याचियों के लिए उपयुक्त होगा कि वे औद्योगिक अधिकरण की शरण में जाएं और दावा याचिका फाइल करने और समुचित

प्रस्तुत करने के द्वारा अपने अनुतोष प्राप्त करें । यहां पर यह उल्लेख किया जाता है कि उच्च न्यायालय ने कर्मकारों को इस रिट याचिका में उठाए गए विवाद्यकों को सम्मिलित करते हुए, उन सभी विवाद्यकों, को उठाने की स्वतंत्रता प्रदान कर दी थी जो उनको प्राप्त हो सकते थे और तद्नुसार रिट याचिका का निरस्तारण कर दिया ।

6. कर्मकारों ने पूर्वोक्त आदेश के अनुसरण में अधिनियम की धारा 33(ग)(2) के अधीन याचिका गुंटुर के श्रम न्यायालय के पीठासीन अधिकारी के समक्ष कामबंदी प्रतिकर का दावा करते हुए फाइल की जो 2004 के सी. एफ. आर. सं. 4319 की विषयवस्तु है । श्रम न्यायालय ने आवेदन इस आधार पर पोषणीय न पाते हुए खारिज कर दिया कि दावाकर्ता अधिनियम की धारा 2(ध) के अधीन कर्मकार नहीं थे चूंकि उन्होंने स्वैच्छिक सेवानिवृत्ति योजना के अधीन समस्त लाभ दावा फाइल करने के पहले ही प्राप्त कर लिए थे । श्रम न्यायालय के उपरोक्त आदेश से व्यथित होकर इस अपील के अपीलार्थियों ने 2005 की रिट याचिका सं. 4196 फाइल की । विद्वान् एकल न्यायाधीश ने **ए. के. बिन्दल** (उपरोक्त) वाले मामले की निर्णयज विधि को निर्दिष्ट किया, **पाल** बनाम **पाल वीआरएस एम्प्लॉइज वेलफेयर एसोसिएशन**[1] वाले मामले में मुम्बई उच्च न्यायालय द्वारा दिए गए विनिश्चय का उल्लेख किया जिसमें अधिनियम की धारा 33(ग)(2) के संदर्भ में "विद्यमान वैयक्तिक आधारों" पर विचार किया गया था, **गवर्नमेंट सोप फैक्ट्री, बंगलोर** बनाम **श्रम न्यायालय**[2] वाले मामले में दिए गए विनिश्चय को विभेदित किया और समस्त परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए अभिनिर्धारित किया कि श्रम न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित करते हुए अपनी अधिकारिता का सही प्रयोग किया है कि रिट याची अधिनियम की धारा 2(ध) के अर्थान्तर्गत कर्मकार नहीं रह गए थे और इसलिए संविधान के अनुच्छेद 226 के अधीन अधिकारिता का प्रयोग करते हुए किसी भी प्रकार का मध्यक्षेप अपेक्षित नहीं था । असफलता से असंतुष्ट होकर रिट याचियों ने 2005 की रिट याचिका सं. 820 फाइल की और खंड न्यायपीठ ने **ए. के. बिन्दल** (उपरोक्त) वाले मामले में इस न्यायालय द्वारा की गई इतिरोक्ति को ध्यान में रखते हुए विद्वान् एकल न्यायाधीश द्वारा व्यक्त किए गए विचार के साथ सहमति व्यक्ति की । इसलिए वर्तमान अपील विशेष इजाजत के द्वारा फाइल की

---

[1] (2002) 1 एल. एल. जे. बाम्बे 527.

[2] ए. आई. आर. 1970 मैसूर 225.

गई । हमने पहले ही यह उल्लेख किया है कि मामला इस न्यायालय के तीन न्यायाधीशों के न्यायपीठ के समक्ष किस प्रकार से प्रस्तुत किया गया है ।

7. अधिनियम की धारा 2(ध) कर्मकार को निम्नलिखित शब्दों में परिभाषित करती है :–

"2(ध) 'कर्मकार' से कोई ऐसा व्यक्ति (जिसके अन्तर्गत शिक्षु भी आता है) अभिप्रेत है, जो किसी उद्योग में भाड़े या इनाम के लिए कोई शारीरिक, अकुशल, कुशल, तकनीकी, संक्रियात्मक, लिपिकीय या पर्यवेक्षाणात्मक कार्य करने के लिए नियोजित है, चाहे नियोजन के निबंधन अभिव्यक्त हों या विवक्षित, और किसी औद्योगिक विवाद के संबंध में इस अधिनियम के अधीन की किसी कार्यवाही के प्रयोजनों के लिए इसके अन्तर्गत कोई ऐसा व्यक्ति आता है जो उस विवाद के संबंध में या उसके परिणामस्वरूप पदच्युत या उन्मोचित कर दिया गया है या जिसकी छंटनी कर दी गई है अथवा जिसकी पदच्युति, उन्मोचन या छंटनी किए जाने से वह विवाद पैदा हुआ हो, किन्तु इसके अंतर्गत कोई ऐसा व्यक्ति नहीं आता है जो –

(i) वायुसेना अधिनियम, 1950 (1950 का 45) या सेना अधिनियम, 1950 (1950 का 46) या नौसेना अधिनियम, 1957 (1957 का 62) के अधीन हो ; अथवा

(ii) पुलिस सेवा में या किसी कारागार के अधिकारी या अन्य कर्मचारी के रूप में नियोजित हो ; अथवा

(iii) मुख्यतः प्रबन्धकीय या प्रशासनिक हैसियत में नियोजित हो ; अथवा

(iv) पर्यवेक्षण हैसियत में नियोजित होते हुए प्रतिमास एक हजार छः सौ रुपए से अधिक मजदूरी लेता हो अथवा या तो पद से संलग्न कर्तव्यों की प्रकृति के या अपने में निहित शक्तियों के कारण ऐसे कृत्यों का प्रयोग करता है जो मुख्यतः प्रबन्धकीय प्रकृति के हैं ।"

8. अधिनियम की धारा 33ग(2) इस प्रकार है :–

"जहां कि कर्मकार नियोजक से कोई धन या ऐसी प्रसुविधा, जो धन के रूप में संगणित की जा सकती है, प्राप्त करने का हकदार है और शोध्य धन की रकम के बारे में या उस रकम के बारे में, जितनी प्रसुविधा के लेखे संगणित की जानी चाहिए, कोई प्रश्न पैदा होता है,

तो वह प्रश्न, उन नियमों के अध्यधीन रहते हुए जो इस अधिनियम के अधीन बनाए जाएं, उस श्रम न्यायालय द्वारा, जिसे समुचित सरकार इस निमित्त विनिर्दिष्ट करें विनिश्चित किया जा सकेगा (तीन मास से अनधिक कालावधि के भीतर) :

परंतु जहां श्रम न्यायलय का पीठासीन अधिकारी ऐसा करना आवश्यक या समीचीन समझता है, वहां वह ऐसे कारणों सहित जो अभिलिखित किए जाएं, ऐसी कालावधि को ऐसी अतिरिक्त कालावधि के लिए, जो वह उचित समझे, विस्तारित कर सकेगा ।"

9. **ए. के. बिन्दल** (उपरोक्त) वाले मामले में दो न्यायाधीशों की न्यायपीठ ऐसी कंपनियों के संबंध में वेतन पुनरीक्षण प्रदान किए जाने पर विचार कर रही थी जो औद्योगिक और वित्तीय पुनर्गठन बोर्ड (संक्षेप में "बीआईएफआर") के अधीन आती हैं । उक्त मामले में कर्मकारों के वेतनमान के पुनरीक्षण न किए जाने के कारण शिकायत से संबंधित स्वैच्छिक सेवानिवृत्ति योजना विरचित किए जाने के संबंध में विवाद्यक उत्पन्न हुआ था । उस मामले के प्रत्यर्थियों द्वारा यह दलील दी गई कि कर्मचारियों जिन्होंने स्वैच्छिक सेवानिवृत्तियों योजना का लाभ प्राप्त कर लिया है और बिना किसी आपत्ति के उक्त योजना के अन्तर्गत रकम प्राप्त कर ली है, का नियोजक के साथ नियोक्ता का संबंध समाप्त हो चुका है और इसलिए वे वेतनमान का पुनरीक्षण न किए जाने के संबंध में कोई शिकायत नहीं कर सकते । उक्त निवेदन का विरोध कर्मचारियों द्वारा इस आधार पर किया गया कि उनको मामले में कोई अन्य विकल्प उपलब्ध नहीं था और उन्होंने विवश होकर स्वैच्छिक सेवानिवृत्ति योजना को स्वीकार कर लिया था और उन्होंने आगे निवेदन किया कि चूंकि वर्ष 1992 से वेतन का पुनरीक्षण नहीं किया गया था, स्वैच्छिक सेवानिवृत्ति योजना के अधीन कुल प्रतिकर रकम की संगणना की जानी है और इस संदर्भ में मत व्यक्त किया :–

"34. इससे दर्शित होता है कि कर्मचारी को सेवांत लाभ के अतिरिक्त पर्याप्त अनुग्रह रकम का संदाय किया जाना है यदि वह योजना के अधीन स्वैच्छिक सेवानिवृत्ति का विकल्प चुनता है और उसके विकल्प को नियोजक द्वारा स्वीकार कर लिया जाता है । इस रकम का संदाय कोई कार्य करने या कोई सेवा प्रदान करने के बदले में नहीं किया जाता । इस रकम का संदाय कर्मचारी द्वारा स्वयं कंपनी या औद्योगिक स्थापन की सेवा छोड़ने और उस कंपनी या औद्योगिक

स्थापन में सभी दावों या अधिकारों को छोड़ने के बदले में किया जाता है । यह देने और लेने का पैकेज (एकमुश्त) संव्यवहार होता है । इसीलिए कारोबारियों की भाषा में इसको 'गोल्डेन हैंडशेक' के नाम से जाना जाता है । इस रकम के संदाय का मुख्य प्रयोजन नियोजक और नियोक्ता के मध्य विधिक संबंध को पूर्ण रूप से समाप्त करना होता है । कर्मचारी रकम के संदाय और कंपनी या औद्योगिक स्थापन में नियोजन की समाप्ति के पश्चात् अपने समस्त अधिकारों का त्याग कर देता है और इस बात का कोई प्रश्न उत्पन्न नहीं होता कि वह अपने पूर्ववर्ती नियोजक से सेवाकाल के दौरान के किसी भी प्रकार के अधिकारों के बारे में, किसी भी पूर्ववर्ती अवधि के लिए वेतनमान बढ़ाए जाने के संबंध में कोई दावा किए जाने को सम्मिलित करते हुए, विरोध दर्ज कराए । यदि कर्मचारी को अभी भी भूतलक्षी तारीख से वेतनमान बढ़ाए जाने के संबंध में शिकायत करने की अनुज्ञा प्राप्त होती है, उसके द्वारा स्वैच्छिक सेवानिवृत्ति योजना का विकल्प चुने जाने के पश्चात् भी, तो इस योजना को प्रस्तुत किए जाने का संपूर्ण प्रयोजन ही विफल हो जाएगा ।

35. यह दलील कि कर्मचारियों ने स्वैच्छिक सेवानिवृत्ति योजना का विकल्प किसी प्रकार की विवशता के कारण चुना था, स्वीकार किए जाने योग्य नहीं है । याची दो कंपनियों के अधिकारी हैं और वे उन विकल्पों के अच्छे और बुरे प्रभावों के बारे में जानकारी रखने के बाबत पूर्णतया परिपक्व थे । वे स्वैच्छिक सेवानिवृत्ति योजना के विकल्प को चुने बिना वेतनमान के पुनरीक्षण के दावे की पैरवी कर सकते थे और प्रतीक्षा कर सकते थे । तथापि, उन्होंने बुद्धिमत्ता का प्रयोग करते हुए विचार किया कि मामले की परिस्थितियों को देखते हुए स्वैच्छिक सेवानिवृत्ति योजना उनको उपलब्ध एक उत्तम विकल्प है और उन्होंने उसको चुना । स्वैच्छिक सेवानिवृत्ति योजना के लिए आवेदन करने और उसके अंतर्गत धन प्राप्त करने के पश्चात् उनको अब यह विकल्प उपलब्ध नहीं हैं कि वे दलील दें कि उन्होंने इस विकल्प को किसी विवशता के कारण चुना । इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए कि लगभग 99 प्रतिशत कर्मचारियों ने स्वैच्छिक सेवानिवृत्ति योजना का लाभ प्राप्त कर लिया है और कंपनियों (एफ सी आई और एच एफ सी) को छोड़ दिया है, रिट याचिका पोषणीय नहीं रह जाती और निष्फल हो जाती है ।"

10. **प्रीतम सिंह गिल** (उपरोक्त) वाले मामले में यह न्यायालय एक मामले पर विचार कर रहा था जिसमें प्रत्यर्थी को तारीख 19 सितम्बर, 1967 को सेवा से बर्खास्त कर दिया गया था । उसको तारीख 5 अक्तूबर, 1964 को निलंबित किया गया था और निलंबन आदेश तारीख 18 सितम्बर, 1967 तक प्रभावी था । उसको निलंबन की अवधि के दौरान तारीख 7 अक्तूबर, 1965 को दिल्ली स्थानांतरित कर दिया गया था । प्रत्यर्थी ने बर्खास्त होने के पश्चात् दिल्ली के श्रम न्यायालय के समक्ष उन लाभों और रकमों, जिनको प्राप्त करने का वह हकदार था, की संगणना के लिए अधिनियम की धारा 33ग(2) के अधीन यह अभिकथित करते हुए आवेदन किया कि उसको उन रकमों और लाभों का संदाय नहीं किया गया । श्रम न्यायालय ने कतिपय विवाद्यक विरचित किए और कर्मचारी के पक्ष में दावे को निर्णीत कर दिया । इस न्यायालय के समक्ष जो एकमात्र प्रश्न उद्‌भूत हुआ, अधिनियम की धारा 33ग(2) के अधीन कर्मचारी के आवेदन पर विचार करने की श्रम न्यायालय की अधिकारिता से संबंधित था । अपीलार्थियों के अनुसार प्रत्यर्थी-कर्मचारी को पहले ही बर्खास्त किया जा चुका था और वह आवेदन की तारीख पर कर्मकार नहीं रह गया था और इसलिए उसको अधिनियम की धारा 33ग(2) के अधीन श्रम न्यायालय के शरण में जाने की अधिकारिता प्राप्त नहीं थी । प्रत्यर्थी की ओर से यह दलील दी गई कि यदि वह अवधि, जिसके संबंध में अधिनियम की धारा 33ग(2) के अधीन लाभों और रकमों का दावा किया गया है, उसको बर्खास्त किए जाने के पूर्व उसके नियोजन के दौरान की है, तो मात्र यह तथ्य कि उसको उसके नियोजक द्वारा धारा 33ग(2) के अधीन श्रम न्यायालय में आवेदन करने के पूर्व बर्खास्त किया जा चुका था, उसको उस धारा के अधीन अनुतोष का दावा करने के अधिकार से वंचित नहीं करेगा । न्यायालय ने प्रश्न पूछा कि क्या अधिनियम की धारा 33ग(2) का अवलंब बर्खास्त कर्मकार द्वारा उसको उसकी बर्खास्तगी की तारीख के पूर्व की अवधि के लिए देय लाभों और वेतन के संबंध में लिया जा सकता है । न्यायालय ने **सेन्ट्रल बैंक आफ इंडिया** बनाम **पी. एस. राजगोपालन**[1] और **मै. केशोराम कॉटन मिल्स लिमिटेड** बनाम **गंगाधर और अन्य**[2] वाले मामलों में दी गई निर्णयज विधियों को निर्दिष्ट किया और इन मामलों को विभेदित किया चूंकि दोनों मामलों की तथ्यात्मक पृष्ठभूमि भिन्न थी तथापि,

---

[1] [1964] 3 एस. सी. आर. 140.

[2] [1964] 2 एस. सी. आर. 809.

न्यायालय ने **पी. एस. राजगोपालन** (उपरोक्त) वाले मामले के कुछ लेखांशों को प्रत्युत्पादित किया क्योंकि न्यायालय ने उक्त विनिश्चय में अधिनियम की धारा 33ग और अध्याय V-क के विधायी इतिहास पर चर्चा की है और मताभिव्यक्ति की :–

> "हमारे विचार में धारा 2 के निष्पक्ष और युक्तिसंगत अर्थान्वयन से यह स्पष्ट है कि यदि किसी कर्मकार का लाभ प्राप्त करने का अधिकार विवादित है तो उसका विनिर्धारण श्रम न्यायालय द्वारा किया जाना चाहिए । श्रम न्यायालय को धन के रूप में लाभ की संगणना करने के पूर्व इस प्रश्न पर विचार करना होता है कि क्या कर्मकार को उस लाभ को प्राप्त करने का अधिकार है । यदि उक्त अधिकार विवादित नहीं है, तो कुछ भी किए जाने की आवश्यकता नहीं और श्रम न्यायालय धन के रूप में लाभ के मूल्य की संगणना कर सकता है ; किन्तु यदि अधिकार विवादित है, तो श्रम न्यायालय उस प्रश्न पर विचार कर सकता है और इस बाबत निर्णय कर सकता है कि क्या कर्मकार को उसके द्वारा अभिकथित लाभ प्राप्त करने का अधिकार है और केवल श्रम न्यायालय ही कर्मकार के हक के पक्ष में इस बिन्दु पर उत्तर दे सकता है कि आवश्यक संगणना करने का अगला प्रश्न उत्पन्न हो सकता है या नहीं ।"

आगे पुनः अभिनिर्धारित किया :–

> "इसके अतिरिक्त हमको ऐसा प्रतीत होता है कि यदि अपीलार्थी द्वारा किया गया अर्थान्वयन स्वीकार किया जाता है तो इसका आवश्यक रूप से यह अर्थ होगा कि यह नियोजक की इच्छा पर है कि वह कर्मकार को उपधारा (2) द्वारा उपबंधित अनुतोष प्रदान करे क्योंकि उसको इस आधार पर मात्र एक आक्षेप फाइल करना है कि कर्मकार द्वारा किया गया दावा स्वीकार नहीं है जिससे कि वह कर्मकार के आवेदन पर विचार करने की श्रम न्यायालय की अधिकारिता को बाधित कर सके । धारा 33ग(2) स्पष्टतः अनुध्यात करती है कि कुछ मामलों में धन के रूप में लाभ की संगणना के बारे में प्रश्न के विनिर्धारण के पहले ऐसे अधिकार की विद्यमानता के बारे में जांच कराई जानी चाहिए और जांच मुख्य विनिर्धारण, जो उपधारा (2) द्वारा श्रम न्यायालय को निर्दिष्ट किया गया है, के प्रासंगिक अभिनिर्धारित की जानी चाहिए ।"

11. न्यायालय ने उक्त लेखांशों को प्रत्युत्पादित किए जाने के पश्चात् **यू. पी. इलेक्ट्रिक सप्लाई कंपनी लिमिटेड** बनाम **आर. के. शुक्ला और एक अन्य**[1] वाले मामले में दिए गए विनिश्चय को निर्दिष्ट किया जिसमें न्यायालय ने विभिन्न विनिश्चयों का पुनर्विलोकन करने के पश्चात् धारा 33ग(2) के अधीन कामबंदी प्रतिकर के लिए आवेदन पर विचार करने की श्रम न्यायालय की अधिकारिता को यह मताभिव्यक्ति करते हुए अभिनिर्धारित किया था कि ऐसी अधिकारिता को मात्र धन के रूप में लाभ की संगणना के लिए किए गए कर्मकार के दावे से इनकार करने के अभिवाक् द्वारा बाधित नहीं किया जा सकता, साथ ही न्यायालय ने आगे अभिनिर्धारित किया कि श्रम न्यायालय को इस प्रश्न पर विचार और विनिर्धारण करना होता है कि क्या तथ्यों के आधार पर उसको संगणना की अधिकारिता प्राप्त है ।

12. तत्पश्चात् न्यायालय ने **प्रीतम सिंह गिल** (उपरोक्त) वाले मामले में अनेक विनिश्चयों को निर्दिष्ट किया और निम्नलिखित प्रश्न उठाया :–

> "निर्णायक बिन्दु जिस पर अपीलार्थी की दलील के आधार पर विचार किया जाना अपेक्षित है, धारा 2(ध) में समाविष्ट कर्मकार शब्द की परिभाषा की पृष्ठभूमि में धारा 33ग(2) में प्रयुक्त इस शब्द की संक्षिप्त परिधि और अर्थ तक सीमित है ।"

13. तत्पश्चात् यह अभिनिर्धारित किया गया :–

> "यह धारा वैयक्तिक कर्मकार को धारा 10 के उपबंधों के आश्रय लेने के लिए विवश किए बिना और विवाद उठाने और निर्देश सुनिश्चित किए जाने, जो निश्चित रूप से एक लंबी प्रक्रिया है, उनके नियोजकों के विरुद्ध उनके विद्यमान वैयक्तिक अधिकारों को कार्यान्वित, प्रवर्तित या निष्पादित करने में समर्थ बनाने के प्रयोजनार्थ अधिनियमित की गई थी । तद्नुसार अधिनियम की धारा 33ग को एक ऐसे उपबंध के रूप में वर्णित किया गया है जो श्रम न्यायालय को निष्पादन न्यायालय के समान शक्ति प्रदान करती है ताकि संबद्ध कर्मकार को उसके विद्यमान वैयक्तिक अधिकारों के संबंध में त्वरित अनुतोष प्राप्त हो । इस धारा का प्राथमिक प्रयोजन व्यथित कर्मकार को निष्पादन न्यायालयों के समान फोरम उपलब्ध कराना है, यह धारा

[1] ए. आई. आर. 1970 एस. सी. 237 = (1969) 2 एस. सी. सी. 400.

अधिनियम के अन्य उपबंधों के साथ संगत रहते हुए व्यापक और फायदाप्रद अर्थान्वयन, जो अनुतोष को उपलब्ध कराए और रिष्टि का दमन करें, की अपेक्षा करती है । यहां पर यह बताना उपयुक्त होगा कि रिष्टि, जिसका दमन करने के लिए धारा 33ग को अधिनियमित किया गया, वे कठिनाइयां थीं जिनका सामना वैयक्तिक कर्मकार द्वारा उनके विद्यमान अधिकारों के संबंध में अनुतोष प्राप्त करने के प्रयोजनार्थ अधिनियम की धारा 10 का आश्रय लिए बिना किया जाता था । यदि अपीलार्थी की दलील को स्वीकार किया जाता है तो किसी निष्पक्ष, सहानुभूतिहीन और बेईमान नियोजक को सदैव यह अधिकार होगा कि वह अपने कर्मचारी की सेवा को धारा 33ग द्वारा प्रदत्त लाभ से वंचित करने के लिए समाप्त कर दे और उसको अधिनियम की धारा 10 के अधीन निदेश के माध्यम से लंबी प्रक्रिया का आश्रय लेने के लिए विवश कर दे, तद्नुसार इस उपबंध के अधिनियमित किए जाने के आत्यंतिक प्रयोजन और उद्देश्य को विफल कर सके । हमारे विचार में यह अधिनियम की धारा 2 के आरंभिक भाग में दृश्यमान असंगतता को स्पष्ट करता है और विधान-मंडल ने शायद ही ऐसी स्थिति के बारे में अनुध्यात किया होगा । इस असंगतता को हटाए जाने के लिए धारा 33ग(2) का अर्थान्वयन इस प्रकार से किया जाना चाहिए कि इसकी परिधि में वह कर्मकार आ जाए जिसने उस अवधि के दौरान कार्य किया है जिसमें वह अनुतोष का दावा करता है, चाहे वह आवेदन प्रस्तुत करने के समय नियोजित न रहा हो । अन्य शब्दों में शब्द 'कर्मकार', जैसा कि धारा 33ग(2) में प्रयोग किया गया है, ऐसे सभी व्यक्ति सम्मिलित हैं जिनके दावों में उनके नियोजक के साथ औद्योगिक कर्मकार के रूप में संबंध से उत्पन्न होने वाले किसी विद्यमान अधिकार के संबंध में हैं और जिनके दावों की इस उपधारा के अधीन संगणना अपेक्षित है । क्या हम मात्र इस अर्थान्वयन को अंगीकृत किए जाने के द्वारा अधिनियम में धारा 33ग को सम्मिलित किए जाने के प्रयोजन और उद्देश्य के अनुसार अनुतोष को गति प्रदान कर सकते हैं और रिष्टि का दमन कर सकते हैं । इसलिए हम मद्रास उच्च न्यायालय के विनिश्चयों के आधार पर व्यक्त किए गए विचार से सहमत होने के लिए आनत हैं और हम इस दृष्टिकोण का अनुमोदन करते हैं । श्री मेहरोत्रा के अनुसार ऐसे मामलों में जहां कर्मचारी के अधिकार के बारे में कोई विवाद नहीं है और जिससे इनकार नहीं किया गया है, वह वाद फाइल करने का अधिकारी होगा । कर्मचारी

द्वारा वाद फाइल किए जाने के अधिकार का दावा किया जा सकता है या नहीं, हम अपीलार्थी की ओर से किए गए अर्थान्वयन को स्वीकार करने के लिए इस दलील के आधार पर सहमत नहीं हैं और एक बर्खास्त कर्मचारी को अधिनियम की धारा 33ग(2) के अधीन तीव्र गति के साथ अनुतोष का लाभ प्रदान किए जाने से इनकार करते हैं ।"

(अधोरेखांकित का अवलंब लिया गया)

14. यह उल्लेख किए जाने की आवश्यकता है कि ऐसा अभिकथित किए जाने के पश्चात् तीन न्यायाधीशों की न्यायपीठ द्वारा स्पष्ट किया गया कि उनके द्वारा दिया गया निर्णय सही अर्थों में अधिनियम के संदर्भ में था । न्यायालय ने मत व्यक्त किया कि उनके समक्ष उपस्थित मामले में वे मात्र अधिनियम से संबद्ध थे और उनके द्वारा दिए गए निर्णय को विचार की अभिव्यक्ति के रूप में प्रतीत नहीं किया जाना चाहिए जहां तक न्यूनतम वेतन अधिनियम के उपबंधों का संबंध है ।

15. यहां पर यह अभिकथित किया जाता है कि हमारे समक्ष उपस्थित मामले में अधिनियम की धारा 33ग(2) में समाविष्ट उपबंधों के उपयोजन का मूल्यांकन किए जाने के प्रयोजनार्थ यह आवश्यक है कि स्वैच्छिक सेवानिवृत्ति योजना के अधीन कर्मचारी को उपलब्ध लाभों का मूल्यांकन किया जाए । इस योजना के अधीन लाभ जो कर्मचारी को उपलब्ध है, को नीचे प्रत्युत्पादित किया जा रहा है :–

"लाभ :

योजना द्वारा सम्मिलित कर्मचारियों को निम्नलिखित लाभ संदेय होंगे ।

सेवांत प्रसुविधाएं :

निम्नलिखित लाभ जो कि कानूनी रूप से देय होते हैं, योग्यता के अनुसार देय होंगे ।

(i) अभिदायी भविष्य निधि के अनुसार भविष्य निधि में अधिशेष ।

(ii) उद्यम के नियमों के अनुसार संचित उपार्जित छुट्टी के समतुल्य नकद ।

(iii) उपदान संदाय अधिनियम या संगठन के लागू अन्य नियमों

के उपबंधों के अनुसार उपदान ।

अनुग्रह लाभ :

(i) कोई कर्मचारी जो नियमित या स्थायी है, जिसका स्वैच्छिक सेवानिवृत्ति योजना के लिए अनुरोध स्वीकार कर लिया गया है, सेवा के प्रत्येक पूर्ण वर्ष के बाबत अंतिम बार आहरित डेढ़ माह की उपलब्धियों (वेतन + महंगाई भत्ता) के समतुल्य या सेवानिवृत्ति के समय मासिक उपलब्धियां जिनको सेवानिवृत्ति की सामान्य तारीख के पूर्व बचे हुए सेवा के 30 महीनों से गुणा किया जाएगा, में से जो कम हो, जो न्यूनतम 30,000/- रुपए (तीस हजार रुपए केवल) से कम नहीं होगा, अनुग्रह संदाय का हकदार होगा ।

लागू सेवा शर्तों के अनुसार एक माह/तीन माह का नोटिस वेतन ।

यदि स्वैच्छिक सेवानिवृत्ति का विकल्प चुनने वाले कर्मचारी का आवेदन तत्काल स्वीकार कर लिया जाता है और प्रबंधतंत्र द्वारा संदाय का प्रबंध उसी दिन कर दिया जाता, तो संबद्ध व्यक्ति नोटिस अवधि के वेतन के साथ अनुग्रह के संदाय का हकदार होगा ।

पूर्ण की गई सेवा या अधिशेष सेवा (जो कम हो) के लिए अनुग्रह का संदाय, साथ ही नोटिस अवधि के लिए संदेय रकम, तथापि, जो मूल वेतन + महंगाई भत्ते से अधिक न हो, जिसका संदाय कर्मचारी, जिसने अधिवर्षिता की तारीख के पहले स्वैच्छिक सेवानिवृत्ति योजना का विकल्प चुना है, को किया जाएगा ।

जहां प्रबंधतंत्र स्वैच्छिक सेवानिवृत्ति योजना के लिए कर्मचारी द्वारा प्रस्तुत किए गए आवेदन को स्वीकार करने पर विनिश्चय लेने में समय लेता है और नोटिस अवधि को व्यतीत हो जाने देता है या संबद्ध कर्मचारी उसके ऊपर तामील नोटिस अवधि के दौरान पूर्ण वेतन प्राप्त कर लेता है तो नोटिस अवधि के लिए वेतन मान्य नहीं होगा चूंकि कर्मचारी ने पहले ही नोटिस अवधि के लिए वेतन प्राप्त कर लिया है ।

इसके अतिरिक्त कर्मचारी और उसका परिवार आंध्र प्रदेश राज्य के भीतर अपने मूल निवास स्थान की यात्रा के लिए मान्य वर्ग के यात्रा भत्ते के लिए भी हकदार होंगे, जो उसकी अवकाश यात्रा भत्ता फाइल के संदर्भ में सत्यापित होगा ।

(ii) सेवा के किसी भाग का योजना के अधीन अनुग्रह के संगणना के प्रयोजनार्थ अर्थात् छह माह और उससे अधिक को एक वर्ष प्रतीत किया जाएगा और छह माह से कम सेवा का अनदेखा किया जाएगा ।

(iii) अनुग्रह लाभों की संगणना के प्रयोजनार्थ एक वर्ष की अवधि तक के असाधारण अवकाश पर विचार किया जाएगा, परंतु यह तब जबकि संबद्ध संगठनों के सेवा विनियम इस प्रकार की असाधारण अवकाश की मंजूरी की अनुज्ञा प्रदान करते हों ।"

16. हमको अन्य खंडों को निर्दिष्ट करने की आवश्यकता नहीं है चूंकि वे वास्तव में किसी प्रकार का लाभ उपबंधित नहीं करते किन्तु स्वैच्छिक सेवानिवृत्ति योजना को लागू किए जाने के लिए विभिन्न पहलुओं और उसके लिए अपनाई जाने वाली प्रक्रिया को अनुध्यात करते हैं । स्वैच्छिक सेवानिवृत्ति योजना के परिशीलन से स्पष्ट हो जाता है कि यह योजना कामबंदी प्रतिकर पर विचार नहीं करती । जैसाकि **प्रीतम सिंह गिल** (उपरोक्त) वाले मामले में अधिकथित किया गया है, निलंबन भत्ते के संदाय से संबंधित कोई दावा उक्त उपबंधों के अधीन किया जा सकता है चाहे कर्मचारी को सेवा से बर्खास्त किया जा रहा हो । **ए. के. बिन्दल** (उपरोक्त) वाले मामले में दो न्यायाधीशों की न्यायपीठ ने अभिनिर्धारित किया कि योजना को स्वीकार किए जाने और स्वैच्छिक सेवानिवृत्ति के योजना लाभों को प्राप्त किए जाने के पश्चात् कोई कर्मचारी उच्चतर मजदूरी के लिए दावा नहीं कर सकता । यह विवाद भिन्न था । यदि सेवानिवृत्ति योजना में कामबंदी प्रतिकर के बारे में उल्लेख किया गया होता, तो यह कहने की आवश्यकता नहीं है कि ऐसा दावा भी सम्मिलित किया जा सकता था और यह उपधारणा की जा सकती थी कि कर्मकार द्वारा प्राप्त की गई रकम में कामबंदी प्रतिकर की रकम भी सम्मिलित है । इस मामले में यह तथ्यात्मक स्थिति नहीं है । इसलिए विवाद जो **प्रीतम सिंह गिल** (उपरोक्त) वाले मामले में उत्पन्न हुआ और विवाद जो **ए. के. बिन्दल** (उपरोक्त) वाले मामले में उत्पन्न हुआ, एक दूसरे से बिल्कुल भिन्न है । इसलिए हम विचार व्यक्त करते हैं कि **प्रीतम सिंह गिल** (उपरोक्त) और **ए. के. बिन्दल** (उपरोक्त) वाले मामलों में दिए गए विनिश्चयों के मध्य कोई टकराव नहीं है । हम उचित समझते हैं कि यद्यपि स्वैच्छिक सेवानिवृत्ति योजना में नियोजक और नियोक्ता के मध्य संबंध समाप्त हो जाते हैं किन्तु यदि इस योजना के अन्तर्गत पूर्ववर्ती देयों, जैसेकि कामबंदी

प्रतिकर, निर्वाह भत्ता, को सम्मिलित नहीं किया जाता, तो कर्मकार अधिनियम की धारा 33ग(2) के अधीन श्रम न्यायालय की शरण में जाने का हकदार होगा । यदि इनको विनिर्दिष्ट रूप से सम्मिलित किया जाता है, या स्वैच्छिक सेवानिवृत्ति योजना की भाषा से यह दर्शित होता है कि योजना के अधीन दावे को सम्मिलित किया गया है, तो किसी फोरम को कोई अधिकारिता प्राप्त नहीं होगी ।

17. हम उपरोक्त स्पष्टीकरण के साथ यह निर्देशित कर सकते थे कि मामले को दो न्यायाधीशों के न्यायपीठ के समक्ष सूचीबद्ध किया जाए । किन्तु इसकी आवश्यकता नहीं है । यह उल्लेखनीय है कि कामबंदी प्रतिकर से संबंधित दावा स्वैच्छिक सेवानिवृत्ति योजना के अधीन सम्मिलित नहीं होता । श्रम न्यायालय, विद्वान् एकल न्यायाधीश और खंड न्यायपीठ ने दावे पर इस आधार पर विचार करने से इनकार कर दिया है कि उनको विवाद का न्यायनिर्णयन करने की अधिकारिता प्राप्त नहीं है । हमने पहले ही अभिनिर्धारित किया है कि यदि कामबंदी प्रतिकर से संबंधित दावा स्वैच्छिक सेवानिवृत्ति योजना का भाग नहीं है, तो श्रम न्यायालय को अधिनियम की धारा 33ग(2) के अधीन न्यायनिर्णयन की अधिकारिता प्राप्त है । इसलिए हम उच्च न्यायालय और श्रम न्यायालय द्वारा पारित निर्णय को अपास्त करते हैं ।

18. परिणामस्वरूप अपील मंजूर की जाती है, आक्षेपित निर्णय और आदेश अपास्त किए जाते हैं और मामले को विधि अनुसार न्यायनिर्णयन हेतु श्रम न्यायालय को वापस भेजा जाता है । श्रम न्यायालय अधिनियम की धारा 33ग(2) के अधीन प्रस्तुत किए गए दावे का अंतिम निपटारा इस निर्णय की तारीख से तीन माह के भीतर गुणागुण के आधार पर करेगा । पक्षों को निर्देशित किया जाता है कि वे तारीख 17 अक्तूबर, 2016 को श्रम न्यायालय के समक्ष उपस्थित हों । लागत के बाबत कोई आदेश पारित नहीं किया जा रहा है ।

अपील मंजूर की गई ।

शु.

[2017] 2 उम. नि. प. 93

लोक प्रहरी, इसके महासचिव एस. एन. शुक्ला के माध्यम से

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य

21 नवंबर, 2016

मुख्य न्यायमूर्ति टी. एस. ठाकुर, न्यायमूर्ति ए. एम. खानविलकर और न्यायमूर्ति (डा.) डी. वाई. चंद्रचूड़

संविधान, 1950 – अनुच्छेद 243यघ [सपठित उत्तर प्रदेश योजना और विकास अधिनियम, 1999] – विधायक निधि स्कीम का क्रियान्वयन – विधायक निधि स्कीम स्वतः अनुच्छेद 243यघ और उत्तर प्रदेश योजना और विकास अधिनियम, 1999 का अतिक्रमण नहीं करती, अतः भीम सिंह वाले मामले में संविधान न्यायपीठ द्वारा अधिकथित मार्गदर्शक सिद्धांतों के साथ स्थानीय स्वशासन की संस्थाओं के सहयोग और समर्थन से निर्वाचित प्रतिनिधियों को अपनी पूरक भूमिका का पालन करना चाहिए ।

अपीलार्थी उत्तर प्रदेश राज्य के उस विधायक निधि स्कीम की वैधता को चुनौती देने में असफल रहा जो विधान सभा और विधान परिषद् के सदस्यों को उनके विधान क्षेत्र में विकास कार्य को सुकर बनाने के लिए वार्षिक बजट अनुदान का उपबंध करता है । इलाहाबाद उच्च न्यायालय ने संविधान के अनुच्छेद 226 के अधीन रिट याचिका को तारीख 13 मई, 2013 के निर्णय और आदेश द्वारा खारिज कर दिया । इसके कारण ये कार्यवाहियां संस्थित की गईं । उच्चतम न्यायालय द्वारा अधिकथित मार्गदर्शक सिद्धांतों के साथ अपील का निपटान करते हुए,

अभिनिर्धारित – विधायक निधि स्कीम राज्यों और स्थानीय प्राधिकारियों के प्रयासों का केवल पूरक है । उच्च न्यायालय की दृष्टि से निर्वाचित प्रतिनिधि, चाहे वे संसद् या विधान सभा या विधान परिषद् के सदस्य हों, को दी गई विकासात्मक कार्य की पहचान करने और सिफारिश करने की शक्ति जिला योजना समितियों को प्रदत्त शक्ति का पूरक है और इस आधार पर अविधिमान्य नहीं ठहराया जा सकता कि यह 1999 के अधिनियम के साथ सह-अस्तित्व में नहीं रह सकती । इस पहलू पर उच्च न्यायालय का विनिश्चय संविधान न्यायपीठ के निर्णय से संगत है । विधायक निधि स्कीम 1999 के राज्य विधान के उपबंधों के अधीन गठित

जिला योजना समितियों की भूमिका का स्थानापन्न या प्रतिस्थापक नहीं है । वर्ष 1998 में स्कीम की घोषणा करते समय राज्य सरकार द्वारा विरचित किए गए मार्गदर्शक सिद्धांत महत्वपूर्ण हैं और 21 मई, 2014 को ग्रामीण विकास के सचिव द्वारा पारित आदेश में वर्णित किए गए हैं । मार्गदर्शक सिद्धांतों के पैरा 1.1 में यह उल्लेख है कि मुख्यमंत्री ने स्थानीय अपेक्षाओं को पूरा करने और संतुलित विकास के हित में राज्य विधान-मंडल के निर्वाचित प्रतिनिधियों को उनके क्षेत्रों के भीतर विकास कार्य को सुकर बनाने के लिए प्रतिवर्ष पचास लाख रुपए के परिव्यय का उपबंध करते हुए दो सौ साठ करोड़ रुपए की निधि गठित करने की घोषणा की है । पैरा 2.2 में उपबंध है कि स्थानीय आस्तियों के सृजन के लिए सन्निर्माण कार्य विकासात्मक प्रकृति का होगा और निधियों का उपयोग राजस्व व्यय को पूरा करने के लिए नहीं किया जाएगा । पैरा 4.2 में यह परिकल्पित है कि विधायक निधि से खर्च की गई रकम की संपरीक्षा ग्रामीण विकास विभाग द्वारा की जाएगी । प्रत्येक वर्ष किए गए सन्निर्माण कार्य की तकनीकी संपरीक्षा तकनीकी संपरीक्षा सेल द्वारा की जाएगी । पारदर्शिता सुनिश्चित करने के लिए प्रत्येक नागरिक सेवा प्रदाता अभिकरण/ग्रामीण विकास विभाग के माध्यम से किए गए विशिष्ट कार्य के संबंध में जानकारी रखने का हकदार होगा । पैरा 5.1 के अधीन मुख्य विकास अधिकारी को राज्य सरकार और ग्रामीण विकास विभाग के बीच समन्वय बनाए रखने के लिए नोडल अधिकारी नियुक्त किया जाता है । मुख्य विकास अधिकारी और उप-क्षेत्रीय और खंड स्तर पर अधिकारियों द्वारा विकास कार्य के निरीक्षण के उपबंध हैं । मुख्य विकास अधिकारी जो नोडल अधिकारी के रूप में नियुक्त किया जाता है, जिला योजना मानीटरिंग समिति से भी सहबद्ध है । परिणामतः, मुख्य विकास अधिकारी को यह सुनिश्चित करने का कार्य सौंपा जाता है कि कार्य का कोई दोहरापन न हो । निर्वाचित प्रतिनिधियों द्वारा सिफारिश किए गए कार्य की परीक्षा मुख्य विकास अधिकारी द्वारा की जाती है । निधि को जिला ग्रामीण विकास अभिकरण के माध्यम से बनाए रखा जाता है जिसके साथ तकनीकी समिति से स्कीम के अधीन किए जा रहे कार्य का निरीक्षण करने की अपेक्षा है । स्कीम में कतिपय विसंगतियों को स्पष्ट करने के लिए तारीख 29 नवंबर, 2012 को आगे सरकारी आदेश जारी किया गया है । वह पहलू जिस पर सावधानीपूर्वक ध्यान देने की आवश्यकता है, अपीलार्थी की यह शिकायत है कि उच्च न्यायालय एम. पी. एल. ए. डी. एस. और विधायक निधि स्कीम के बीच महत्वपूर्ण अंतर पर ध्यान देने में असफल रहा यद्यपि इनका अभिवचन फाइल किए गए

शपथ-पत्रों में विनिर्दिष्ट रूप से किया गया । इन विभेदों की काफी भूमिका है जो विनिश्चय करने वाली प्रक्रिया में निर्वाचित प्रतिनिधियों को समनुदेशित की गई है । भीम सिंह वाले मामले में, इस न्यायालय ने एम. पी. एल. ए. डी. एस. के अधीन विरचित मार्ग-निर्देशक सिद्धांतों के गहन विश्लेषण के पश्चात् यह उल्लेख किया था कि खंड 3.1 के अधीन संसद् सदस्य का कार्य मात्र "कार्य की सिफारिश" करना है । दूसरी ओर, जिला प्राधिकारियों को सिफारिश किए गए कार्य की संभावना पर निर्णय करना, निधियों की अपेक्षा का निर्धारण करना, क्रियान्वयनकारी अभिकरण को नियुक्त करना, कार्य का पर्यवेक्षण करना और संपरीक्षा तथा उपयोग प्रमाणपत्र के रूप में वित्तीय पारदर्शिता सुनिश्चित करने का प्राधिकार दिया गया है । तथापि, यद्यपि जिला प्राधिकारी को क्रियान्वयनकारी अभिकरण की पहचान करने की शक्ति दी गई है जो निर्वाचित प्रतिनिधियों द्वारा सिफारिश किए गए कार्य निष्पादित कराएगा, फिर भी ग्रामीण क्षेत्रों में पंचायती राज संस्थाएं अधिमानी क्रियान्वयनकारी अभिकरण हैं जबकि शहरी क्षेत्रों में ये शहरी स्थानीय निकाय होंगे जो एम. पी. एल. ए. डी. एस. के अधीन क्रियान्वयन के लिए अधिमानी स्थिति रखेंगे । स्कीम की इन पहलुओं पर सम्यक् ध्यान रखते हुए इस न्यायालय ने भीम सिंह वाले मामले में इस निवेदन को अस्वीकार कर दिया कि स्कीम ने संविधान के भाग 9 और 9क के अधीन पंचायतों और नगरपालिकाओं के कार्यों का अधिग्रहण कर लिया है । अपीलार्थी की यह भी शिकायत है कि एम. पी. एल. ए. डी. एस. के असमान, विधायक निधि स्कीम का उपयोग ऐसे प्राइवेट संगठनों के भवनों को वित्त पोषित करने के लिए किया गया है जो यह स्पष्ट करता है कि क्यों एम. एल. ए./एम. एल. सी. या उनके या उनके कुटुम्ब के सदस्यों द्वारा नियंत्रित विद्यालयों को धन देने का शोर मचता है । यह निवेदन किया गया कि इसके परिणामस्वरूप लोक निधि का दुरुपयोग होता है क्योंकि विद्यालय भवनों के सन्निर्माण का क्रियान्वयन प्रधानाचार्य/प्रबंधक के माध्यम से किया जा सकता है । अतः, यह प्राख्यान किया गया कि जवाबदेही तंत्र विधायक निधि स्कीम के अधीन अविद्यमान है जिसे इस न्यायालय ने एम. पी. एल. ए. डी. एस. के अधीन विद्यमान पाया है । राज्य सरकार ने न तो उच्च न्यायालय के समक्ष कार्यवाहियों के अनुक्रम में फाइल किए गए अभिवचनों में और न ही प्रति-शपथपत्र में जो इस न्यायालय के समक्ष फाइल किया गया है, अपीलार्थी की शिकायत पर विचार किया । यह शिकायत कि एम. पी. एल. ए. डी. एस. के असमान, राज्य विधान-मंडल के निर्वाचित प्रतिनिधियों की भूमिका कार्य के मात्र

सिफारिश करने के परे है, असंविवादित बना हुआ है । भीम सिंह वाले मामले में इस न्यायालय के निर्णय ने यह बल दिया कि एम. पी. एल. ए. डी. एस. मात्र राज्यों और अन्य स्थानीय प्राधिकारियों की कल्याण स्कीमों का पूरक है और स्थानीय योजना प्राधिकारियों के कार्यात्मक या वित्तीय अधिकार क्षेत्र में हस्तक्षेप नहीं करता । उस संदर्भ में मार्गदर्शक सिद्धांतों के आधार पर यह ध्यान दिया गया कि निर्वाचित प्रतिनिधियों की भूमिका उस कार्य की सिफारिश करने तक मात्र सीमित है जो किया जाना है । इसके पश्चात्, कार्य की संभाव्यता के निर्धारण से आरंभ करते हुए विनिश्चय करने की प्रक्रिया, अपेक्षित निधि का प्राक्कलन तथा क्रियान्वयनकारी अभिकरण का चयन और पर्यवेक्षण कार्य जिला स्तर के सक्षम प्राधिकारियों को सौंपा गया है । संविधान के भाग 9 और 9क के उपबंधों का सम्यक् रूप से पालन किया जाना चाहिए चूंकि ग्रामीण क्षेत्रों में पंचायती राज संस्थाएं और शहरी क्षेत्रों में शहरी स्थानीय निकाय एम. पी. एल. ए. डी. एस. के अधीन अधिमानी क्रियान्वयनकारी अभिकरण है । राज्य सरकार को इन निर्णायक पहलुओं पर अपने विवेक का प्रयोग करना चाहिए जो एम. पी. एल. ए. डी. एस. को विधायक निधि से भिन्न करते हैं । जब उच्च न्यायालय के खंड न्यायपीठ ने 30 मई, 2013 को अपना निर्णय दिया तो उसने सार्वजनिक धन के संबंध में जवाबदेही सुनिश्चित करने और उनके दुरुपयोग के निवारण के लिए सभी संभव उपाय करने के राज्य के कर्तव्य की आवश्यकता पर बल दिया । खंड न्यायपीठ ने यह उल्लेख किया कि "विधायक निधि के इंद्रियगोचर दुरुपयोग के विरुद्ध फुस्फुसाहट अधिक श्रवणगोचर होता जा रहा है ।" यह इसलिए था कि योजना और विकास विभाग और विधायी विभाग के मुख्य सचिवों को अपीलार्थी के सुझावों को "ईमानदारी और तत्परता" से ध्यान देने का निदेश दिया गया था । राज्य सरकार ने अपने दो आदेशों जो 21 मई, 2014 और 17 जून, 2014 को इसके मुख्य सचिवों द्वारा पारित किए गए हैं, अपीलार्थी की शिकायत पर केवल दिखावटीपन दर्शाया है । वे सिद्धांत जो भीम सिंह वाले मामले में संविधान न्यायपीठ के निर्णय में विरचित किए गए हैं, पर ध्यान नहीं दिया गया न ही यह सुनिश्चित करने के लिए राज्य सरकार की ओर से कोई प्रयास किया गया कि ऐसे मार्गदर्शक सिद्धांत जो विधायक निधि स्कीम को लागू होते हैं, का अनुपालन संविधान के भाग 9 और 9क के उपबंधों और भीम सिंह वाले मामले में इस न्यायालय के निर्णय में व्यक्त मताभिव्यक्तियों के अनुरूप किया जाए । अतः, जहां न्यायालय का यह मत है कि ऐसी प्रकृति की स्कीम को जो भीम सिंह वाले मामले में संविधान न्यायपीठ द्वारा

कायम रखा गया है, क्रियान्वयन करने में राज्य को कोई आपत्ति नहीं हो सकती वहीं ऐसे सुरक्षोपाय जो एम. पी. एल. ए. डी. स्कीम को भाग गठित करते हैं, का सम्यक् रूप से विचार किया जाना चाहिए जिससे कि यह सुनिश्चित किया जा सके कि ऐसी भूमिका जो जिला योजना प्राधिकारियों और स्थानीय स्वशासन की संस्थाओं को दी गई है, से वंचित न किया जाए । ऐसे सुरक्षोपाय जिन्हें लागू किया जाए, में निम्नलिखित सम्मिलित होगा : (i) निर्वाचित प्रतिनिधियों की भूमिका स्कीम के अधीन आबंटित बजट के भीतर अपने विधान क्षेत्रों में विकासात्मक प्रकृति के कार्य की सिफारिश करनी होगी ; (ii) कार्य की संभाव्यता, निधियों का प्राक्कलन, क्रियान्वयनकारी अभिकरण का चयन और कार्य का पर्यवेक्षण राज्य सरकार के नामनिर्दिष्ट प्राधिकारी या निकाय द्वारा स्वतंत्र रूप से अवधारित किया जाए ; (iii) ग्रामीण क्षेत्रों में पंचायती राज संस्थाएं और शहरी क्षेत्रों में नगरपालिक निकायों को संविधान के भाग 9 और 9क के अधीन उत्तरदायित्वों को ध्यान में रखते हुए अधिमानी क्रियान्वयनकारी अभिकरण के रूप में विचार किया जाए ; (iv) अनुच्छेद 243यघ के साथ पठित उत्तर प्रदेश जिला योजना समिति अधिनियम, 1999 के अधीन जिला योजना समितियों द्वारा तैयार की गई योजनाओं को निर्वाचित प्रतिनिधियों को उन्हें यह विनिश्चित करने के लिए समर्थ बनाने हेतु प्रत्येक जिला कलक्टर द्वारा उपलब्ध कराया जाए कि क्या ऐसा कोई विकासात्मक कार्य जिसकी पहचान पहले उपरोक्त योजना में की गई है, का निष्पादन विधायक निधि स्कीम के अधीन उपलब्ध कराए गए निधियों के अनुसरण में किया जा सकता है ; (v) निर्वाचित प्रतिनिधि या उसके कुटुम्ब के सदस्य द्वारा नियंत्रित संस्थाओं को निधियों के आबंटन जैसे हित की प्रतिकूलता सुनिश्चित करने के लिए पर्याप्त सुरक्षोपाय उपलब्ध कराया जाए ; और (vi) उचित संपरीक्षा और निधियों के उपयोग को सुनिश्चित करने की प्रक्रिया के अलावा स्कीम में कार्य के उचित पर्यवेक्षण, मानीटरिंग गुणता और समयबद्ध कार्य निष्पादन जैसी वित्तीय पारदर्शिता सुनिश्चित करने के लिए स्कीम में पर्याप्त सुरक्षोपाय सम्मिलित किया जाए । न्यायालय उच्च न्यायालय के मत से सहमत है कि विधायक निधि स्कीम स्वतः अनुच्छेद 243यघ या उत्तर प्रदेश योजना और विकास अधिनियम, 1999 का अतिक्रमण नहीं करती । निर्वाचित प्रतिनिधियों की लोकतंत्र में महत्वपूर्ण भूमिका है । उनका अपने निर्वाचन क्षेत्रों से गहन संबंध है और अपने निर्वाचन क्षेत्रों की विकासात्मक आवश्यकताओं को पूरा करने में विधिसम्मत भूमिका है । अनुच्छेद 243यघ उनकी भूमिका से अपवर्जित नहीं करता ।

इसके प्रतिकूल, वे स्थानीय स्वशासन की संस्थाओं के कार्य को बढ़ाकर और सहयोग देकर पूरक भूमिका का पालन करते हैं । तथापि, न्यायालय की दृष्टि से यह आवश्यक है कि ऐसे मार्गदर्शक सिद्धांत जो राज्य सरकार द्वारा बनाए गए हैं, पर पुनर्विचार किया जाए और उपरोक्त वर्णित निदेशों का पालन किया जाए जिससे यह सुनिश्चित किया जा सके कि मार्गदर्शक सिद्धांत भीम सिंह वाले मामले में इस न्यायालय के संविधान न्यायपीठ द्वारा व्यक्त किए गए निबंधनों के अनुसार संविधान के भाग 9 और 9क के पीछे छिपी भावना और प्रयोजन के अनुरूप हों । पुनरीक्षित मार्गदर्शक सिद्धांत जिसके पश्चात् विधायक निधि स्कीम के अधीन किए जाने वाले सभी परियोजनाओं को लागू होंगे । (पैरा 15, 16, 17, 19, 20 और 21)

अवलंबित निर्णय

पैरा

[2010] (2010) 5 एस. सी. सी. 538 :
भीम सिंह बनाम **भारत संघ** । 3

निर्दिष्ट निर्णय

[2015] (2015) 10 एस. सी. सी. 400 :
राजेन्द्र शंकर शुक्ला बनाम **छत्तीसगढ़ राज्य** । 10

अपीली (सिविल) अधिकारिता : 2016 की सिविल अपील सं. 11004.

2004 की रिट याचिका सं. 1235(एम./बी.) में इलाहाबाद उच्च न्यायालय की लखनऊ न्यायपीठ की तारीख 13 मई, 2013 के निर्णय और आदेश के विरुद्ध अपील ।

अपीलार्थी की ओर से श्री एस. एन. शुक्ला, व्यक्तिगत रूप से

प्रत्यर्थियों की ओर से श्री पी. एन. मिश्र, (वरिष्ठ अधिवक्ता), और सुश्री पी. रत्नमाला

न्यायालय का निर्णय न्यायमूर्ति (डा.) डी. वाई. चंद्रचूड़ ने दिया ।

न्या. (डा.) चंद्रचूड़ – इजाजत दी गई ।

2. अपीलार्थी उत्तर प्रदेश राज्य के उस विधायक निधि स्कीम की वैधता को चुनौती देने में असफल रहा जो विधान सभा और विधान परिषद्

के सदस्यों को उनके विधान क्षेत्र में विकास कार्य को सुकर बनाने के लिए वार्षिक बजट अनुदान का उपबंध करता है । इलाहाबाद उच्च न्यायालय ने संविधान के अनुच्छेद 226 के अधीन रिट याचिका को तारीख 13 मई, 2013 के निर्णय और आदेश द्वारा खारिज कर दिया । इसके कारण ये कार्यवाहियां संस्थित की गईं ।

3. वर्ष 1993 में भारत के प्रधानमंत्री ने प्रथमाक्षर एम. पी. एल. ए. डी. एस. (संसद् सदस्य स्थानीय क्षेत्र विकास स्कीम का संक्षिप्त) के नाम से विख्यात एक स्कीम की घोषणा की । स्कीम में संसद् के सदस्यों को उनके विधान क्षेत्रों में स्थानीय आवश्यकताओं पर आधारित टिकाऊ सामुदायिक आस्ति सृजित करने पर बल देने के विकासात्मक प्रकृति के कार्य की सिफारिश करने के लिए समर्थ बनाने हेतु केंद्रीय सरकार द्वारा वार्षिक बजट अनुदान का उपबंध है । स्कीम की संवैधानिक विधिमान्यता का न्यायनिर्णयन किया गया और **भीम सिंह** बनाम **भारत संघ**[1] वाले मामले में 6 मई, 2010 को दिए गए इस न्यायालय की संविधान न्यायपीठ के निर्णय में कायम रखा गया ।

4. उत्तर प्रदेश राज्य में, विधायक निधि स्कीम के नाम से ज्ञात एक स्कीम को विधान सभा और विधान परिषद् के प्रत्येक सदस्य के लिए पचास लाख रुपए के आबंटन के साथ 1998-1999 में राज्य बजट में लागू की गई । 2000-2001 के बजट में स्कीम के अधीन आबंटन को बढ़ाकर पचहत्तर लाख रुपए किया गया । अपीलार्थी ने विधायक निधि स्कीम की संवैधानिकता को चुनौती देने की मांग करते हुए और यथा प्रस्तावित, प्रति एम. एल. ए./एम. एल. सी. को पचहत्तर लाख रुपए से बढ़ाकर एक करोड़ रुपए बजट परिव्यय करने से राज्य को अवरुद्ध करने का आदेश अभिप्राप्त करने के लिए वर्ष 2004 में उच्च न्यायालय में उसकी रिट अधिकारिता के अधीन आवेदन किया । अपीलार्थी ने यह निवेदन किया कि यदि स्कीम की विधिमान्यता की चुनौती को स्वीकार नहीं किया जाता है तो अनुकल्पतः स्कीम के अधीन आबंटित धन को केवल उन स्कीमों पर व्यय को पूरा करने के लिए प्रयोग करने की अनुज्ञा दी जाए जो अनुच्छेद 243यघ और उत्तर प्रदेश जिला योजना समिति अधिनियम, 1999 के उपबंधों के अनुसरण में जिला योजना के अधीन मंजूर की गई है ।

5. उच्च न्यायालय के समक्ष अपीलार्थी का प्रमुख निवेदन (और

---

[1] (2010) 5 एस. सी. सी. 538.

संविधान के अनुच्छेद 136 के अधीन इन कार्यवाहियों में भी) यह है कि जिलों के लिए विकास योजनाओं का क्षेत्र अनुच्छेद 243यघ और उपरोक्त राज्य विधान-मंडल द्वारा अधिनियमित उपबंधों द्वारा अधिकृत है । अपीलार्थी के अनुसार, यह जिला योजना समिति ही है जो किसी विकास योजना की पहचान या अनुमोदन कर सकती है । अतः यह आग्रह किया गया कि राज्य विधान-मंडल के चुने गए प्रतिनिधियों को 1999 के राज्य विधान के अधीन जिला योजना समितियों द्वारा तैयार की गई किसी अनुमोदित विकास योजना के परिधि के भीतर चुनी गई स्कीमों से भिन्न किसी स्कीम को चुनने की अनुज्ञा नहीं दी जा सकती । **भीम सिंह** (उपरोक्त) वाले मामले में इस न्यायालय के संविधान न्यायपीठ का निर्णय उच्च न्यायालय में रिट याचिका के लंबित रहने के दौरान दिया गया था । अपीलार्थी एम. पी. एल. ए. डी. एस. के महत्वपूर्ण पहलुओं के बीच अंतर करना चाहता था जो उत्तर प्रदेश में विधायक निधि स्कीम से भिन्न है । तथापि, यह आग्रह किया गया कि संविधान न्यायपीठ का निर्णय विवाद्यक को अंतिम रूप नहीं देता, चूंकि अनुच्छेद 243यघ और 1999 के राज्य विधान के उपबंध राज्य स्कीम को लागू होंगे (न कि एम. पी. एल. ए. डी. एस. को) ।

6. उच्च न्यायालय की खंड न्यायपीठ ने यह अभिनिर्धारित किया कि एम. पी. एल. ए. डी. एस. और विधायक निधि स्कीम में कोई अंतर नहीं है क्योंकि केंद्रीय और राज्य दोनों स्कीम के अधीन सिफारिश किए गए कार्य का संबंध देश के भीतर एक जिले या अन्य के संबंध में होता है । उच्च न्यायालय ने यह मत स्वीकार किया कि स्कीम के अधीन निर्वाचित प्रतिनिधियों चाहे वे एम. पी. एल. ए. डी. एस. के अधीन संसद् सदस्य हों या एम. एल. ए./एम. एल. सी. हों, को प्रदत्त विकासात्मक प्रकृति के कार्य की पहचान करने और सिफारिश करने की शक्ति राज्य विधान के अधीन गठित जिला योजना समिति में विहित शक्ति का पूरक है । अतः, रिट याचिका खारिज करते हुए उच्च न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया कि **भीम सिंह** (उपरोक्त) वाले मामले में संविधान न्यायपीठ का निर्णय संविवाद के अधिकार क्षेत्र में है ।

7. उच्च न्यायालय ने अपने निर्णय और आदेश के समापन भाग में उस शिकायत पर विचार किया जिसका आग्रह अपीलार्थी द्वारा स्कीम के अधीन संवितरित धन की बाबत जवाबदेही की कमी पर और ऐसी निधियों के दुरुपयोग के कतिपय अभिकथनों पर था जिसे अपीलार्थी ने मुख्यतया कतिपय समाचारपत्र रिपोर्टों के आधार पर संबोधित किया था । उच्च

न्यायालय ने अपीलार्थी को राज्य सरकार के योजना और विकास विभाग तथा विधायी विभाग के प्रधान सचिवों द्वारा विचार के लिए अपने सुझाव विरचित करने की स्वतंत्रता प्रदान की । उस पहलू पर विचार करते हुए, उच्च न्यायालय ने इस प्रकार मत व्यक्त किया :–

> "चूंकि इस रिट याचिका के मुख्य अनुरोध पर पहले ही ऊपर चर्चा की जा चुकी है और स्वीकार्य नहीं पाया गया है, इसलिए रिट याचिका खारिज की जाती है किंतु अपीलार्थी को उत्तर प्रदेश सरकार के योजना और विकास विभाग के मुख्य सचिव तथा उत्तर प्रदेश सरकार के विधायी विभाग के मुख्य सचिव द्वारा विचारार्थ अपनी सुझावों को विरचित करने की स्वतंत्रता दी जाती है । हमारा यह भी मत है कि सुझावों पर केवल इस कारण सभी संबद्ध प्राधिकारियों द्वारा गंभीरता से विचार किया जाना चाहिए कि लोकधन हमेशा जवाबदेह होना चाहिए और राज्य को लोकधन के दुरुपयोग को रोकने के लिए सभी संभव कदम उठाने का कर्तव्य है, विशेषकर जब विधायक निधि के सहज दुरुपयोग के विरुद्ध फुसफुसाहट अधिक सुनाई पड़ रही है । हम प्राधिकारियों से सम्यक् ईमानदारी और तत्परता से मामले में कार्य करने की प्रत्याशा करते हैं जिससे मामले में आगे कोई लोकहित वाद का कोई अवसर ही न हो ।"

(बल देने के लिए रेखांकन किया गया ।)

अपीलार्थी द्वारा प्रस्तुत अभ्यावेदन पर विचार करने में राज्य सरकार की निष्क्रियता से व्यथित होकर, उसने उच्च न्यायालय के समक्ष अवमान याचिका प्रस्तुत की थी । अंततः, तारीख 21 मई, 2014 को राज्य सरकार के ग्रामीण विकास विभाग के मुख्य सचिव और तारीख 17 जून, 2014 को योजना विभाग के मुख्य सचिव द्वारा आदेश पारित किया गया ।

8. अनुच्छेद 243यघ संविधान के भाग 9क में है जो नगरपालिकाओं के बारे में है । भाग 9 (जो पंचायतों के बारे में है) और 9क तिहत्तरवें और चौहत्तरवें संविधान संशोधनों द्वारा अंतःस्थापित किए गए थे । अनुच्छेद 243यघ प्रत्येक राज्य में प्रत्येक जिले के लिए संपूर्ण जिले के लिए विकास योजना प्रारूप तैयार करने के लिए जिला योजना समितियों के गठन का उपबंध करता है । उपबंध प्रत्येक राज्य की विधायिका को जिला योजना समितियों की गठन के लिए विधान अधिनियमित करने हेतु भी समर्थ बनाता है, ऐसी रीति जिसमें समितियों के स्थान भरे जाएं और अन्य बातों

के साथ-साथ जिला योजना से संबंधित समितियों के कृत्यों का उल्लेख करते हुए अनुच्छेद 245यघ इस प्रकार है :–

> "243यघ. जिला योजना के लिए समिति – (1) प्रत्येक राज्य में जिला स्तर पर, जिले में पंचायतों और नगरपालिकाओं द्वारा तैयार की गई योजनाओं का समेकन करने और संपूर्ण जिले के लिए एक विकास योजना प्रारूप तैयार करने के लिए, एक जिला योजना समिति का गठन किया जाएगा ।
>
> (2) राज्य का विधान-मंडल, विधि द्वारा निम्नलिखित की बाबत उपबंध कर सकेगा, अर्थात् –
>
> (क) जिला योजना समितियों की संरचना ;
>
> (ख) वह रीति जिससे ऐसी समितियों में स्थान भरे जाएंगे :
>
> परंतु ऐसी समिति की कुल सदस्य संख्या के कम से कम चार बटा पांच सदस्य, जिला स्तर पर पंचायत के और जिले में नगरपालिकाओं के निर्वाचित सदस्यों द्वारा, अपने में से, जिले में ग्रामीण क्षेत्रों की और नगरीय क्षेत्रों की जनसंख्या के अनुपात के अनुसार निर्वाचित किए जाएंगे ;
>
> (ग) जिला योजना से संबंधित ऐसे कृत्य जो ऐसी समितियों को समनुदिष्ट किए जाएं ;
>
> (घ) वह रीति, जिससे ऐसी समितियों के अध्यक्ष चुने जाएंगे ।
>
> (3) प्रत्येक जिला योजना समिति, विकास योजना प्रारूप तैयार करने में, –
>
> (क) निम्नलिखित का ध्यान रखेगी, अर्थात् :–
>
> (i) पंचायतों और नगरपालिकाओं के सामान्य हित के विषय, जिनके अंतर्गत स्थानिक योजना, जल तथा अन्य भौतिक और प्राकृतिक संसाधनों में हिस्सा बंटाना, अवसंरचना का एकीकृत विकास और पर्यावरण संरक्षण है ;
>
> (ii) उपलब्ध वित्तीय या अन्य संसाधनों की मात्रा और प्रकार ;
>
> (ख) ऐसी संस्थाओं और संगठनों से परामर्श करेगी जिन्हें

राज्यपाल, आदेश द्वारा, विनिर्दिष्ट करे ।

(4) प्रत्येक जिला योजना समिति का अध्यक्ष, वह विकास योजना, जिसकी ऐसी समिति द्वारा सिफारिश की जाती है, राज्य सरकार को भेजेगा ।"

9. प्रारूप विकास योजनाओं को तैयार करने में, जिला योजना समिति को स्थानिक योजना, जल और अन्य भौतिक या प्राकृतिक संसाधनों का बंटवारा और अवसंरचनात्मक और पर्यावरणीय संरक्षण के समेकित विकास सहित पंचायतों और नगरपालिकाओं के बीच आम हित के विषयों को ध्यान में रखना है । तथापि, प्रत्येक समिति को उपलब्ध वित्तीय संसाधनों और अन्यथा के संबंध में ध्यान देना चाहिए ।

10. अनुच्छेद 243यघ के खंड (2) द्वारा प्रदत्त शक्तियों का प्रयोग करते हुए, उत्तर प्रदेश राज्य विधान-मंडल ने संवैधानिक उपबंधों को प्रभावी बनाने के लिए जिला समितियों के गठन हेतु और जिलों के लिए विकास योजनाएं तैयार करने के लिए उत्तर प्रदेश जिला योजना अधिनियम, 1999 का अधिनियमन किया । अनुच्छेद 243यघ के उपबंधों के महत्व का उल्लेख **राजेन्द्र शंकर शुक्ला** बनाम **छत्तीसगढ़ राज्य**[1] वाले मामले में इस न्यायालय के दो विद्वान् न्यायाधीशों के न्यायपीठ के निर्णय में किया गया है :–

"17. संविधान में भाग 9क के अंतःस्थापन के पश्चात्, जिले के विकास योजना को अनुच्छेद 243यघ के खंड (3)(क)(i) और (ii) में वर्णित कारकों को ध्यान में रखकर लोकतंत्रीय निर्वाचित प्रतिनिधि निकाय अर्थात् डी. पी. सी. द्वारा ही तैयार किया जा सकता है । अनुच्छेद 243यघ के खंड (4) के अनुसार, अन्य डी. पी. सी. के अध्यक्ष राज्य सरकार की समिति द्वारा की गई सिफारिश के अनुसार विकास योजना अग्रेषित करेगा ।"

जिला योजना समिति की भूमिका के महत्व पर बल देते हुए, इस न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया कि विकास प्राधिकारी जिला योजना समिति जैसे लोकतंत्रीय निर्वाचित निकाय की राय और सुझावों पर विचार किए बिना योजना की पुनर्संरचना करके एकतरफा विकास स्कीम तैयार करने के लिए स्वतंत्र नहीं है ।

11. अनुच्छेद 243यघ और 1999 के विधान के उपबंधों पर अपना

[1] (2015) 10 एस. सी. सी. 400.

निवेदन देते हुए, अपीलार्थी की यह दलील है कि संविधान के अनुसरण में राज्य विधान-मंडल द्वारा बनाई गई विधि संपूर्ण क्षेत्र पर अधिभावी है । अतः यह आग्रह किया गया कि राज्य सरकार कार्यपालिक कार्रवाई के माध्यम द्वारा यह कार्य करने के लिए स्वतंत्र नहीं है जैसाकि राज्य विधान-मंडल के निर्वाचित सदस्यों को अपने विधान क्षेत्रों में विकास कार्य के चयन की अनुज्ञा देने के लिए विधायक निधि स्कीम की विरचना से प्रकट है जो हो सकता है कि जिला योजना समितियों द्वारा विरचित विकास योजनाओं के अनुसार न हो । उस सीमा तक जहां स्कीम विपथन अनुज्ञात करती है, यह आग्रह किया गया कि यह अधिकारातीत होगी । अनुकल्पतः, यह सुझाव दिया गया कि स्कीम केवल ऐसे कार्य की सिफारिश करने की राज्य सरकार के निर्वाचित सदस्यों को अनुज्ञात करने तक सीमित रख सकती है जो जिला योजना समितियों द्वारा तैयार की गई विकास योजनाओं के अधीन सम्यक् रूप से मंजूर की गई । इस संदर्भ में, यह निवेदन किया गया कि उपरोक्त मुद्दे पर जो इस मामले में उच्च न्यायालय के समक्ष पक्षपोषित किए जाने की ईप्सा की गई है, **भीम सिंह** (उपरोक्त) वाले मामले में संविधान न्यायपीठ के निर्णय में विचार नहीं किया गया क्योंकि यह एम. पी. एल. ए. डी. एस. के संबंध में उद्भूत नहीं होता जो उस मामले में विचाराधीन था ।

12. **भीम सिंह** (उपरोक्त) वाले मामले के निर्णय में संविधान पीठ ने एम. पी. एल. ए. डी. एस. की विधिमान्यता को कायम रखा । निर्णय के निष्कर्ष को संक्षेप में इस प्रकार कहा जा सकता है :–

(i) एम. पी. एल. ए. डी. एस. अनुच्छेद 282 के शक्त्याधीन है क्योंकि यह विकासात्मक आवश्यकताओं को पूरा करने के उद्देश्य से "लोक प्रयोजन" पद के अर्थान्तर्गत आता है ;

(ii) निधियों के दुरुपयोग का मात्र अभिकथन स्कीम की अविधिमान्यता को न्यायोचित नहीं ठहराएगा, विशेषकर, चूंकि स्कीम में जवाबदेही के कई स्तरों का उपबंध है ;

(iii) शक्तियों के पृथक्करण के सिद्धांत का कोई अतिक्रमण नहीं हैं चूंकि एम. पी. एल. ए. डी. एस. का प्रभावी नियंत्रण और क्रियान्वयन लागू मार्गदर्शक सिद्धांतों के अधीन पर्याप्त सुरक्षोपायों के साथ जिला प्राधिकारियों द्वारा किया जाता है ; और

(iv) एम. पी. एल. ए. डी. एस. के अधीन संसद् के सदस्यों

> की भूमिका क्षेत्र में विकासात्मक कार्य के आरंभिक विकल्प तक सीमित है जबकि सिफारिश कार्य की पात्रता और संभाव्यता का सत्यापन और इसका अनुमोदन और निष्पादन स्थानीय प्राधिकारियों या प्रशासनिक निकायों द्वारा किया जाता है । जिला प्राधिकारी ही उस अभिकरण की पहचान करते हैं जिसके माध्यम से किसी विशिष्ट प्रकार का कार्य निष्पादित किया जाता है और पंचायती राज संस्थाएं और शहरी स्थानीय निकायों को एम. पी. एल. ए. डी. स्कीम के अधीन कार्य के क्रियान्वयन के लिए अधिमानी अभिकरण है ।

भीम सिंह (उपरोक्त) वाले मामले में एम. पी. एल. ए. डी. स्कीम की विधिमान्यता को कायम रखते हुए, संविधान पीठ ने यह अभिनिर्धारित किया कि स्कीम राज्यों और स्थानीय प्राधिकारियों के प्रयासों की पूरक है । तथापि, स्कीम को स्थानीय योजना प्राधिकारियों के कार्यात्मक या वित्तीय अधिकार क्षेत्र में हस्तक्षेप करने वाला अभिनिर्धारित नहीं किया गया था । उस संदर्भ में, संविधान न्यायपीठ ने इस प्रकार यह मत व्यक्त किया है :–

> "76. आगे, स्कीम केवल राज्य और अन्य स्थानीय प्रधिकारियों के प्रयासों की पूरक है और राज्य के स्थानीय योजना प्राधिकारियों के कार्यात्मक और वित्तीय अधिकार क्षेत्र में हस्तक्षेप की ईप्सा नहीं करती । दूसरे शब्दों में यह केवल उनके द्वारा किए गए कल्याणकारी उपायों को मजबूत करती है । स्कीम अपने वर्तमान स्वरूप में राज्य सरकार या स्थानीय प्राधिकारी में निहित किन्हीं शक्तियों पर अभिभावी नहीं होती । क्रियान्वयन करने वाले प्राधिकारी स्थानीय विधियों के अनुपालन के अधीन रहते हुए, स्कीम को मंजूर कर सकते हैं ।"

13. संविधान के तिहत्तरवें और चौहत्तरवें संशोधन के उपबंधों का प्रभाव पर भी निर्णय के अनुक्रम में चर्चा की गई जिसे भाग 9 और 9क द्वारा पुरःस्थापित किया गया था । अपीलार्थियों की यह शिकायत थी कि एम. पी. एल. ए. डी. स्कीम एक निर्णय करने वाली प्राधिकारी को लागू किया जो भाग 9 और 9क के बाहर था । निवेदन को निम्नलिखित शब्दों में उल्लिखित किया गया :–

> "91. अपीलार्थियों की यह भी शिकायत है कि पंचायत के संबंध में भाग 9 और नगरपालिकाओं के संबंध में भाग 9क को पुरःस्थापित करते हुए संविधान के तिहत्तरवें और चौहत्तरवें संशोधनों को पारित करने के साथ-साथ स्थानीय स्वशासन का संपूर्ण क्षेत्र अनुसूची 11 के

साथ पठित अनुच्छेद 243छ के अधीन पंचायतों को और संविधान के अनुच्छेद 12 के साथ पठित अनुच्छेद 243प, 243यघ और 243यङ के अधीन नगरपालिकाओं को सौंपा गया है । उनके अनुसार एम. पी. एल. ए. डी. स्कीम भाग 9 और 9क से असंगत है क्योंकि पेय जल, प्राथमिक शिक्षा, सार्वजनिक स्वास्थ्य, सफाई और सड़क आदि सहित टिकाऊ सामुदायिक आस्तियों के सृजन के लिए विकासात्मक प्रकृति के कार्यों के सामुदायिक अवसंरचना से संबंधित संपूर्ण विनिश्चय करने वाली प्रक्रिया संसद् सदस्यों को दी गई है, यद्यपि इन्हीं समरूप मामलों से संबंधित विनिश्चय करने की प्रक्रिया का कार्य पंचायतों और नगरपालिकाओं को प्रदत्त किया गया है । उनके अनुसार एम. पी. एल. ए. डी. स्कीम संविधान के भाग 9 और 9क के प्रत्यक्ष प्रतिकूल है । यह तर्क किया गया कि स्कीम में ऐसा विदेशी तत्व सम्मिलित किया गया है जो पंचायतों और नगरपालिकाओं के कार्यों के भाग का अधिग्रहण करता है ।"

14. तथापि, निवेदन के उत्तर में, संविधान न्यायपीठ ने यह अभिनिर्धारित किया कि लागू मार्गदर्शक सिद्धांतों के अधीन संसद् सदस्य का कार्य मात्र काम की प्रकृति की सिफारिश करना है । जिला प्राधिकारी को सिफारिश किए गए कार्य की संभावना का विनिश्चय करने, निष्पादन के लिए अपेक्षित निधियों का निर्धारण करने, कार्यान्वित अभिकरण को काम पर लगाने, कार्य का पर्यवेक्षण करने और संपरीक्षा तथा उपयोग प्रमाणपत्र उपलब्ध कराकर वित्तीय पारदर्शिता सुनिश्चित करने के लिए पूर्ण प्राधिकार दिया गया । संविधान न्यायपीठ ने यह मत व्यक्त किया कि एम. पी. एल. ए. डी. स्कीम के अधीन मुख्य भूमिका पंचायत, नगरपालिका और नगर निगम को समनुदेशित की गई है । अविधिमान्यता के तर्क को खारिज करते हुए, इस न्यायालय ने यह मत व्यक्त किया :–

"93. उपरोक्त हमारे द्वारा पेश किए गए मार्गदर्शक सिद्धांतों के उद्धरण से यह स्पष्ट होता है कि यद्यपि जिला प्राधिकारी को ऐसे अभिकरण की पहचान करने की शक्ति दी गई है जिसके माध्यम से संसद् सदस्य द्वारा सिफारिश किए गए किसी विशिष्ट कार्य का निष्पादन किया जाना है, फिर भी पंचायती राज संस्थाएं ग्रामीण क्षेत्रों में संबद्ध पंचायती राज संस्थाओं के मुख्य कार्यपालक के माध्यम से अधिमानी क्रियान्वयनकारी अभिकरण होंगे और नगरी क्षेत्रों में क्रियान्वयनकारी अभिकरण नगर निगम, नगरपालिका के आयुक्त/

मुख्य कार्यपालक अधिकारी के माध्यम से नगरीय स्थानीय निकाय होंगे ।"

तद्नुसार इस निवेदन को अस्वीकार किया गया कि स्कीम शक्तियों के पृथक्करण के संवैधानिक सिद्धांत का अतिक्रमण करती है ।

15. इस मामले में **भीम सिंह** (उपरोक्त) वाले मामले के निर्णय का अवलंब लेते हुए उच्च न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया कि विधायक निधि स्कीम राज्यों और स्थानीय प्राधिकारियों के प्रयासों का केवल पूरक है । उच्च न्यायालय की दृष्टि से निर्वाचित प्रतिनिधि, चाहे वे संसद् या विधानसभा या विधान परिषद् के सदस्य हों, को दी गई विकासात्मक कार्य की पहचान करने और सिफारिश करने की शक्ति जिला योजना समितियों को प्रदत्त शक्ति का पूरक है और इस आधार पर अविधिमान्य नहीं ठहराया जा सकता कि यह 1999 के अधिनियम के साथ सह-अस्तित्व में नहीं रह सकती । इस पहलू पर उच्च न्यायालय का विनिश्चय संविधान न्यायपीठ के निर्णय से संगत है । विधायक निधि स्कीम (इसकी सही व्याप्ति और प्रयोजन में) 1999 के राज्य विधान के उपबंधों के अधीन गठित जिला योजना समितियों की भूमिका का स्थानापन्न या प्रतिस्थापक नहीं है । वर्ष 1998 में स्कीम की घोषणा करते समय राज्य सरकार द्वारा विरचित किए गए मार्गदर्शक सिद्धांत महत्वपूर्ण हैं और 21 मई, 2014 को ग्रामीण विकास विभाग के सचिव द्वारा पारित आदेश में वर्णित किए गए हैं । मार्गदर्शक सिद्धांतों के पैरा 1.1 में यह उल्लेख है कि मुख्यमंत्री ने स्थानीय अपेक्षाओं को पूरा करने और संतुलित विकास के हित में राज्य विधान-मंडल के निर्वाचित प्रतिनिधियों को उनके क्षेत्रों के भीतर विकास कार्य को सुकर बनाने के लिए प्रतिवर्ष पचास लाख रुपए के परिव्यय का उपबंध करते हुए दो सौ साठ करोड़ रुपए की निधि गठित करने की घोषणा की है । पैरा 2.2 में उपबंध है कि स्थानीय आस्तियों के सृजन के लिए संन्निर्माण कार्य विकासात्मक प्रकृति का होगा और निधियों का उपयोग राजस्व व्यय को पूरा करने के लिए नहीं किया जाएगा । पैरा 4.2 में यह परिकल्पित है कि विधायक निधि से खर्च की गई रकम की संपरीक्षा ग्रामीण विकास विभाग द्वारा की जाएगी । प्रत्येक वर्ष किए गए संन्निर्माण कार्य की तकनीकी संपरीक्षा, तकनीकी संपरीक्षा सेल द्वारा की जाएगी । पारदर्शिता सुनिश्चित करने के लिए प्रत्येक नागरिक सेवा प्रदाता अभिकरण/ग्रामीण विकास विभाग के माध्यम से किए गए विशिष्ट कार्य के संबंध में जानकारी रखने का हकदार होगा । पैरा 5.1 के अधीन मुख्य विकास अधिकारी को राज्य सरकार और ग्रामीण विकास विभाग के बीच समन्वय बनाए रखने के लिए

नोडल अधिकारी नियुक्त किया जाता है । मुख्य विकास अधिकारी और उप-क्षेत्रीय और खंड स्तर पर अधिकारियों द्वारा विकास कार्य के निरीक्षण के उपबंध हैं । मुख्य विकास अधिकारी जो नोडल अधिकारी के रूप में नियुक्त किया जाता है, जिला योजना मानीटरिंग समिति से भी सहबद्ध है । परिणामतः, मुख्य विकास अधिकारी को यह सुनिश्चित करने का कार्य सौंपा जाता है कि कार्य का कोई दोहरापन न हो । निर्वाचित प्रतिनिधियों द्वारा सिफारिश किए गए कार्य की परीक्षा मुख्य विकास अधिकारी द्वारा की जाती है । निधि को जिला ग्रामीण विकास अभिकरण के माध्यम से बनाए रखा जाता है जिसके साथ तकनीकी समिति से स्कीम के अधीन किए जा रहे कार्य का निरीक्षण करने की अपेक्षा है । स्कीम में कतिपय विसंगतियों को स्पष्ट करने के लिए तारीख 29 नवंबर, 2012 को आगे सरकारी आदेश जारी किया गया है ।

16. वह पहलू जिस पर सावधानीपूर्वक ध्यान देने की आवश्यकता है, अपीलार्थी की यह शिकायत है कि उच्च न्यायालय एम. पी. एल. ए. डी. स्कीम और विधायक निधि स्कीम के बीच महत्वपूर्ण अंतर पर ध्यान देने में असफल रहा यद्यपि इनका अभिवचन फाइल किए गए शपथपत्रों में विनिर्दिष्ट रूप से किया गया । इन विभेदों की काफी भूमिका है जो विनिश्चय करने वाली प्रक्रिया में निर्वाचित प्रतिनिधियों को समनुदेशित की गई है ।

17. **भीम सिंह** (उपरोक्त) वाले मामले में, इस न्यायालय ने एम. पी. एल. ए. डी. स्कीम के अधीन विरचित मार्ग-निर्देशक सिद्धांतों के गहन विश्लेषण के पश्चात् यह उल्लेख किया था कि खंड 3.1 के अधीन संसद् सदस्य का कार्य मात्र "कार्य की सिफारिश" करना है । दूसरी ओर, जिला प्राधिकारियों को सिफारिश किए गए कार्य की संभावना पर निर्णय करना, निधियों की अपेक्षा का निर्धारण करना, क्रियान्वयनकारी अभिकरण को नियुक्त करना, कार्य का पर्यवेक्षण करना और संपरीक्षा तथा उपयोग प्रमाणपत्र के रूप में वित्तीय पारदर्शिता सुनिश्चित करने का प्राधिकार दिया गया है । तथापि, यद्यपि जिला प्राधिकारी को क्रियान्वयनकारी अभिकरण की पहचान करने की शक्ति दी गई है जो निर्वाचित प्रतिनिधियों द्वारा सिफारिश किए गए कार्य निष्पादित कराएगा, फिर भी ग्रामीण क्षेत्रों में पंचायती राज संस्थाएं अधिमानी क्रियान्वयनकारी अभिकरण हैं जबकि शहरी क्षेत्रों में ये शहरी स्थानीय निकाय होंगे जो एम. पी. एल. ए. डी. स्कीम के अधीन क्रियान्वयन के लिए अधिमानी स्थिति रखेंगे । स्कीम की इन

पहलुओं पर सम्यक् ध्यान रखते हुए इस न्यायालय ने **भीम सिंह** (उपरोक्त) वाले मामले में इस निवेदन को अस्वीकार कर दिया कि स्कीम ने संविधान के भाग 9 और 9क के अधीन पंचायतों और नगरपालिकाओं के कार्यों का अधिग्रहण कर लिया है ।

18. इस मामले में, राज्य सरकार ने उच्च न्यायालय के समक्ष ग्रामीण विकास विभाग के अपने विशेष सचिव के माध्यम से प्रति-शपथपत्र फाइल किया । रिट याचिका में शिकायत पर विचार करते हुए, विशेष सचिव ने उस भूमिका का इस प्रकार उप वर्णन किया जो विधायक निधि स्कीम के संदर्भ में निर्वाचित प्रतिनिधियों को समनुदेशित हैं :–

> "......... विधानसभा और विधान परिषद् के सदस्यों की भूमिका अपने-अपने विधान क्षेत्रों के विकासात्मक कार्यों की प्राथमिकताओं की पहचान करना है और संबद्ध जिले के ऐसे मुख्य विकास अधिकारी को इसकी सिफारिश करना है जो विधायक निधि से संबंधित मार्गदर्शक सिद्धांतों और सरकारी आदेशों के अनुसार कार्य का क्रियान्वयन करेगा ।"

अपीलार्थी ने विनिर्दिष्टतः **भीम सिंह** (उपरोक्त) वाले मामले में इस न्यायालय के निर्णय के संदर्भ में 10 अक्तूबर, 2011 को शपथपत्र फाइल किया । शपथपत्र में इस तथ्य की शिकायत की गई है कि एम. पी. एल. ए. डी. स्कीम के असमान, जहां शहरी क्षेत्रों के लिए शहरी स्थानीय निकाय और ग्रामीण क्षेत्रों के लिए पंचायती राज संस्थाएं अधिमानी क्रियान्वयनकारी अभिकरण हैं वहीं विधायक निधि स्कीम के मामले में न केवल क्रियान्वयनकारी अभिकरण बल्कि ठेकेदार भी प्रायः एम. एल. ए./एम. एल. सी. के विकल्प हैं । अपीलार्थी की शिकायत इस प्रकार है :–

> "पुनः, [निर्णय के पैरा 97(7)] एम. पी. एल. ए. डी. स्कीम के असमान, विधायक निधि स्कीम के अधीन नगरपालिका और पंचायती राज संस्थाओं को अपनी भूमिका और अधिकारिता से वंचित किया गया है । **एम. पी. एल. ए. डी. स्कीम के पैरा 2.11 के अधीन शहरी क्षेत्र में शहरी स्थानीय निकाय और ग्रामीण क्षेत्रों में पंचायती राज संस्थाएं अधिमानी क्रियान्वयनकारी अभिकरण होंगी । विधायक निधि के मामले में यह चेतावनी अविद्यमान हैं । तथापि, न केवल क्रियान्वयनकारी अभिकरण बल्कि प्रायः ठेकेदार भी एम. एल. ए./एम. एल. सी. विकल्प हैं जिसके परिणामस्वरूप स्कीम के अधीन**

कार्यों के निष्पादन में व्यापक भ्रष्टाचार की गुंजाइश है ।"

(बल दिया गया ।)

पुनः उसी शपथपत्र में निम्नलिखित उद्धरण को दोहराया गया :–

"एम. पी. एल. ए. डी. स्कीम के मामले में अनुबंधित नियंत्रण और संतुलन विधायक निधि के मामले में उपलब्ध नहीं है । **जहां एम. पी. एल. ए. डी. स्कीम के अधीन संसद् सदस्य की भूमिका सैद्धांतिकतः कार्य की सिफारिश करने तक सीमित है वहीं विधायक निधि स्कीम के पैरा 3.1 के अधीन एम. एल. ए./एम. एल. सी. की सहमति न केवल कार्य के चयन के लिए बल्कि इसकी मंजूरी के लिए ही अपेक्षित है जिसमें उसका स्थान निर्धारण और खर्चा तथा क्रियान्वयनकारी अभिकरण का चयन भी सम्मिलित है । यह उन्हें तथ्यतः कार्य का अनुमोदनकारी प्राधिकारी बनाता है ।** इस प्रकार, इन कार्यों को मंजूर करने का कार्य उनके द्वारा किया जाता है क्योंकि यह उनके वीटो के अधीन है ।

(बल दिया गया ।)

19. अपीलार्थी की यह भी शिकायत है कि एम. पी. एल. ए. डी. स्कीम के असमान, विधायक निधि स्कीम का उपयोग ऐसे प्राइवेट संगठनों के भवनों को वित्त पोषित करने के लिए किया गया है जो यह स्पष्ट करता है कि क्यों एम. एल. ए./एम. एल. सी. या उनके या उनके कुटुम्ब के सदस्यों द्वारा नियंत्रित विद्यालयों को धन देने का शोर मचता है । यह निवेदन किया गया कि इसके परिणामस्वरूप लोक निधि का दुरुपयोग होता है क्योंकि विद्यालय भवनों के सन्निर्माण का क्रियान्वयन प्रधानाचार्य/प्रबंधक के माध्यम से किया जा सकता है । अतः, यह प्राख्यान किया गया कि जवाबदेही तंत्र विधायक निधि स्कीम के अधीन अविद्यमान है जिसे इस न्यायालय ने एम. पी. एल. ए. डी. स्कीम के अधीन विद्यमान पाया है ।

20. राज्य सरकार ने न तो उच्च न्यायालय के समक्ष कार्यवाहियों के अनुक्रम में फाइल किए गए अभिवचनों में और न ही प्रति-शपथपत्र में जो इस न्यायालय के समक्ष फाइल किया गया है, अपीलार्थी की शिकायत पर विचार किया । यह शिकायत कि एम. पी. एल. ए. डी. स्कीम के असमान, राज्य विधान-मंडल के निर्वाचित प्रतिनिधियों की भूमिका कार्य के मात्र सिफारिश करने के परे है, असंविवादित बना हुआ है । **भीम सिंह** (उपरोक्त) वाले मामले में इस न्यायालय के निर्णय ने यह बल दिया कि एम. पी. एल.

ए. डी. स्कीम मात्र राज्यों और अन्य स्थानीय प्राधिकारियों की कल्याण स्कीमों का पूरक है और स्थानीय योजना प्राधिकारियों के कार्यात्मक या वित्तीय अधिकार क्षेत्र में हस्तक्षेप नहीं करता । उस संदर्भ में मार्गदर्शक सिद्धांतों के आधार पर यह ध्यान दिया गया कि निर्वाचित प्रतिनिधियों की भूमिका उस कार्य की सिफारिश करने तक मात्र सीमित है जो किया जाना है । इसके पश्चात्, कार्य की संभाव्यता के निर्धारण से आरंभ करते हुए विनिश्चय करने की प्रक्रिया, अपेक्षित निधि का प्राक्कलन तथा क्रियान्वयनकारी अभिकरण का चयन और पर्यवेक्षण कार्य जिला स्तर के सक्षम प्राधिकारियों को सौंपा गया है । संविधान के भाग 9 और 9क के उपबंधों का सम्यक् रूप से पालन किया जाना चाहिए चूंकि ग्रामीण क्षेत्रों में पंचायती राज संस्थाएं और शहरी क्षेत्रों में शहरी स्थानीय निकाय एम. पी. एल. ए. डी. स्कीम के अधीन अधिमानी क्रियान्वयनकारी अभिकरण है । राज्य सरकार को इन निर्णायक पहलुओं पर अपने विवेक का प्रयोग करना चाहिए जो एम. पी. एल. ए. डी. स्कीम को विधायक निधि से भिन्न करते हैं । जब उच्च न्यायालय के खंड न्यायपीठ ने 30 मई, 2013 को अपना निर्णय दिया तो उसने सार्वजनिक धन के संबंध में जवाबदेही सुनिश्चित करने और उनके दुरुपयोग के निवारण के लिए सभी संभव उपाय करने के राज्य के कर्तव्य की आवश्यकता पर बल दिया । खंड न्यायपीठ ने यह उल्लेख किया कि "विधायक निधि के इंद्रियगोचर दुरुपयोग के विरुद्ध फुस्फुसाहट अधिक श्रवणगोचर होता जा रहा है ।" यह इसलिए था कि योजना और विकास विभाग और विधायी विभाग के मुख्य सचिवों को अपीलार्थी के सुझावों को "ईमानदारी और तत्परता" से ध्यान देने का निदेश दिया गया था । राज्य सरकार ने अपने दो आदेशों जो 21 मई, 2014 और 17 जून, 2014 को इसके मुख्य सचिवों द्वारा पारित किए गए हैं, अपीलार्थी की शिकायत पर केवल दिखावटीपन दर्शाया है । वे सिद्धांत जो **भीम सिंह** (उपरोक्त) वाले मामले में संविधान न्यायपीठ के निर्णय में विरचित किए गए हैं, पर ध्यान नहीं दिया गया न ही यह सुनिश्चित करने के लिए राज्य सरकार की ओर से कोई प्रयास किया गया कि ऐसे मार्गदर्शक सिद्धांत जो विधायक निधि स्कीम को लागू होते हैं, का अनुपालन संविधान के भाग 9 और 9क के उपबंधों और **भीम सिंह** (उपरोक्त) वाले मामले में इस न्यायालय के निर्णय में व्यक्त मताभिव्यक्तियों के अनुरूप किया जाए । अतः, जहां हमारा यह मत है कि ऐसी प्रकृति की स्कीम को जो **भीम सिंह** (उपरोक्त) वाले मामले में संविधान न्यायपीठ द्वारा कायम रखा गया है, क्रियान्वयन करने में राज्य को कोई आपत्ति नहीं हो सकती वहीं ऐसे सुरक्षोपाय जो एम. पी. एल. ए. डी.

स्कीम को भाग गठित करते हैं, का सम्यक् रूप से विचार किया जाना चाहिए जिससे कि यह सुनिश्चित किया जा सके कि ऐसी भूमिका जो जिला योजना प्राधिकारियों और स्थानीय स्वशासन की संस्थाओं को दी गई है, से वंचित न किया जाए । ऐसे सुरक्षोपाय जिन्हें लागू किया जाए, में निम्नलिखित सम्मिलित होगा :–

(i) निर्वाचित प्रतिनिधियों की भूमिका स्कीम के अधीन आबंटित बजट के भीतर अपने विधान क्षेत्रों में विकासात्मक प्रकृति के कार्य की सिफारिश करना होगी ;

(ii) कार्य की संभाव्यता, निधियों का प्राक्कलन, क्रियान्वयनकारी अभिकरण का चयन और कार्य का पर्यवेक्षण राज्य सरकार के नामनिर्दिष्ट प्राधिकारी या निकाय द्वारा स्वतंत्र रूप से अवधारित किया जाए ;

(iii) ग्रामीण क्षेत्रों में पंचायती राज संस्थाएं और शहरी क्षेत्रों में नगरपालिक निकायों को संविधान के भाग 9 और 9क के अधीन उत्तरदायित्वों को ध्यान में रखते हुए अधिमानी क्रियान्वयनकारी अभिकरण के रूप में विचार किया जाए ;

(iv) अनुच्छेद 243यघ के साथ पठित उत्तर प्रदेश जिला योजना समिति अधिनियम, 1999 के अधीन जिला योजना समितियों द्वारा तैयार की गई योजनाओं को निर्वाचित प्रतिनिधियों को उन्हें यह विनिश्चित करने के लिए समर्थ बनाने हेतु प्रत्येक जिला कलक्टर द्वारा उपलब्ध कराया जाए कि क्या ऐसा कोई विकासात्मक कार्य जिसकी पहचान पहले उपरोक्त योजना में की गई है, का निष्पादन विधायक निधि स्कीम के अधीन उपलब्ध कराए गए निधियों के अनुसरण में किया जा सकता है ;

(v) निर्वाचित प्रतिनिधि या उसके कुटुम्ब के सदस्य द्वारा नियंत्रित संस्थाओं को निधियों के आबंटन जैसे हित की प्रतिकूलता सुनिश्चित करने के लिए पर्याप्त सुरक्षोपाय उपलब्ध कराया जाए ; और

(vi) उचित संपरीक्षा और निधियों के उपयोग को सुनिश्चित करने की प्रक्रिया के अलावा स्कीम में कार्य के उचित पर्यवेक्षण, मानीटरिंग गुणता और समयबद्ध कार्य निष्पादन जैसी वित्तीय पारदर्शिता सुनिश्चित करने के लिए स्कीम में पर्याप्त सुरक्षोपाय

सम्मिलित किया जाए ।

21. हम उच्च न्यायालय के मत से सहमत हैं कि विधायक निधि स्कीम स्वतः अनुच्छेद 243यघ या उत्तर प्रदेश योजना और विकास अधिनियम, 1999 का अतिक्रमण नहीं करती । निर्वाचित प्रतिनिधियों की लोकतंत्र में महत्वपूर्ण भूमिका है । उनका अपने निर्वाचन क्षेत्रों से गहन संबंध है और अपने निर्वाचन क्षेत्रों की विकासात्मक आवश्यकताओं को पूरा करने में विधिसम्मत भूमिका है । अनुच्छेद 243यघ उनकी भूमिका से अपवर्जित नहीं करता । इसके प्रतिकूल, वे स्थानीय स्वशासन की संस्थाओं के कार्य को बढ़ाकर और सहयोग देकर पूरक भूमिका का पालन करते हैं । तथापि, हमारी दृष्टि से यह आवश्यक है कि ऐसे मार्गदर्शक सिद्धांत जो राज्य सरकार द्वारा बनाए गए हैं, पर पुनर्विचार किया जाए और उपरोक्त वर्णित निदेशों का पालन किया जाए जिससे यह सुनिश्चित किया जा सके कि मार्गदर्शक सिद्धांत **भीम सिंह** (उपरोक्त) वाले मामले में इस न्यायालय के संविधान न्यायपीठ द्वारा व्यक्त किए गए निबंधनों के अनुसार संविधान के भाग 9 और 9क के पीछे छिपी भावना और प्रयोजन के अनुरूप हों । पुनरीक्षित मार्गदर्शक सिद्धांत जिसके पश्चात् विधायक निधि स्कीम के अधीन किए जाने वाले सभी परियोजनाओं को लागू होंगे । राज्य सरकार द्वारा यह कार्य इस निर्णय की अभिप्राप्ति से दो मास की अन्यून अवधि के भीतर पूरा किया जाए । तद्नुसार अपील का उपरोक्त निबंधनानुसार निपटान किया जाता है । खर्चे के संबंध में कोई आदेश नहीं दिया जाता ।

अपील का निपटान किया गया ।

पां.

यूको बैंक और एक अन्य

बनाम

दीपक देव बर्मा और अन्य

25 नवम्बर, 2016

न्यायमूर्ति रंजन गोगोई और न्यायमूर्ति अभय मनोहर सप्रे

संविधान, 1950 – अनुच्छेद 132, 246, 254 और सातवीं अनुसूची की सूची I की प्रविष्टि 45 तथा सूची II की प्रविष्टि 18 और 45 [सपठित वित्तीय आस्तियों का प्रतिभूतिकरण और पुनर्गठन तथा प्रतिभूति हित का प्रवर्तन अधिनियम, 2002 की धारा 13 तथा त्रिपुरा भूमि राजस्व और भूमि सुधार अधिनियम, 1960 की धारा 187] – विधायी शक्तियों का बंटवारा – संसद् और राज्य विधान-मंडल द्वारा एक दूसरे की शक्तियों का अधिक्रमण करते हुए एक ही विषय पर विधान बनाना – संसद् की विधि का अधिष्ठायी प्रभाव होना – यदि संयोगवश राज्य विधान-मंडल और संसद् अपनी-अपनी विधायी शक्तियों का प्रयोग करते हुए एक ही विषय पर कोई विधि बनाते हैं तो संसद् द्वारा बनाई गई विधि ही प्रवर्तित होगी और राज्य विधान-मंडल की विधि विरोध और असंगतता की मात्रा तक शून्य और अविधिमान्य होगी ।

वर्तमान मामले में, रिट याची, जो इसमें प्रत्यर्थी हैं, त्रिपुरा राज्य के अनुसूचित जनजाति के सदस्य हैं । उन्होंने यह दलील दी थी कि अपीलार्थी बैंक द्वारा वित्तीय आस्तियों का प्रतिभूतिकरण और पुनर्गठन तथा प्रतिभूति हित का प्रवर्तन अधिनियम, 2002 के अधीन जारी तारीख 26 जून, 2012 की विक्रय अधिसूचना, त्रिपुरा भूमि राजस्व और भूमि सुधार अधिनियम, 1960 की धारा 187 के अतिक्रमण में था क्योंकि त्रिपुरा अधिनियम, 1960 के अधीन बैंक द्वारा किसी ऐसे व्यक्ति को बंधक संपत्तियों का विक्रय करने के लिए विधायी निषेध है जो अनुसूचित जनजाति का सदस्य नहीं है । वर्तमान मामले में, नीलामी क्रेता वे व्यक्ति हैं जो किसी भी अनुसूचित जनजाति के सदस्य नहीं हैं । उच्च न्यायालय ने आक्षेपित आदेश द्वारा रिट याचिका का उत्तर प्रत्यर्थियों/रिट याचियों के पक्ष में दिया, इस आधार पर कि त्रिपुरा अधिनियम, 1960, संविधान, 1950 के नवीं अनुसूची में सम्मिलित है और इसलिए, संविधान, 1950 के अनुच्छेद 31ख के संरक्षण

का लाभ अधिनियम, 2002 के ऊपर अभिभावी होगा, इसलिए, यह त्रिपुरा अधिनियम, 1960 की धारा 187 के उपबंधों के प्रतिकूल होने के नाते तारीख 26 जून, 2012 की विक्रय अधिसूचना अविधिमान्य हो जाती है । इससे व्यथित होकर उच्चतम न्यायालय के समक्ष अपील फाइल की गई । न्यायालय द्वारा अपीलें मंजूर करते हुए,

अभिनिर्धारित – केन्द्रीय और राज्य अधिनियमों के उपबंधों के बीच विरोधाभास या असंगतता दो परिस्थितियों में उद्‌भूत हो सकती है । प्रथमतः, केन्द्रीय और राज्य अधिनियम के मामले में, सातवीं अनुसूची (समवर्ती सूची) के सूची III में अधिसूचित किसी प्रविष्टि के क्षेत्र में । विरोधाभास या असंगतता की ऐसी स्थिति में, संविधान, 1950 के अनुच्छेद 254 के उपबंध लागू होंगे । यदि ऐसी असंगतता उद्‌भूत होती है तो संविधान, 1950 का अनुच्छेद 254(1) यह स्पष्टतः उपबंध करता है कि केन्द्रीय विधि अभिभावी होगी तथापि, यह अनुच्छेद 254(2) और अनुच्छेद 254(2) के परन्तुक के अध्यधीन होगी । वर्तमान मामले में, सूची I की प्रविष्टि 45 से संबंधित पश्चात्‌वर्ती केन्द्रीय विधि (अधिनियम, 2002) और सूची II की प्रविष्टि 18 और 45 से संबंधित पूर्ववर्ती राज्य विधि (त्रिपुरा अधिनियम, 1960) के बीच विरोध की मात्रा या असंगतता है । ऐसी परिस्थिति को हल करना और उत्तर देना है और कौन विधान श्रेष्ठता रखता है, वर्तमान अपीलों में विचार के लिए उद्‌भूत मूल प्रश्न है । अनुच्छेद 246 का निर्वचन उस सांविधानिक स्कीम से संबंधित होना चाहिए जो संघीय संसद् के साथ ही राज्य विधान-मंडलों को विधान से संबंधित/सीमांकित अपने क्षेत्र में पूर्ण स्वायत्तता देने में परिसंघीय ढांचे से दर्शित होता है । तथापि, समस्या और अधिक जटिल हो जाती है जब संबंधित विधान-मंडलों द्वारा अपने क्षेत्र के भीतर ही दो विधान का निर्माण करते हैं और तब भी समनुदेशित विधान क्षेत्र के परे व्यतिक्रमण करते हैं । ऐसी परिस्थिति में, सांविधानिक न्यायालयों को यह देखने का साधारण कर्तव्य होता है कि यदि कोई विरोधाभास है तो दोनों विधानों के आपसी अस्तित्व को कायम रखते हुए कैसे हल किया जा सकता है । यदि ऐसा करना संभव नहीं होता है तो अनुच्छेद 246(1) के उपबंधों को ध्यान में रखते हुए, संसदीय विधान, राज्य विधान पर अभिभावी होगी और इस तथ्य के होते हुए भी कि राज्य विधान-मंडल ने सीमांकित क्षेत्र (सूची II) के भीतर कार्य किया है । यह परिसंघीय सर्वोच्चता का सिद्धांत है जिसे संविधान, 1950 के अनुच्छेद 246 में समाहित किया गया है । तथापि, उक्त सिद्धांत, मौजूदा पूर्व-शर्त उपबंधित करने में अभिभावी होगा अर्थात्, संसदीय विधान, अधिष्ठायी विधान होता है

और राज्य विधान यद्यपि अपने क्षेत्र के भीतर होता है फिर भी उस विषय या प्रविष्टि के एक अनिवार्य भाग का अतिक्रमण करता है जो अधिष्ठायी विधान से संबंधित होता है । सांविधानिक स्कीम के अधीन परिसंघीय ढांचा राज्य विधान-मंडल के विषय पर जहां अधिष्ठायी विधान-मंडल, राज्य विधान-मंडल है, वहां संसदीय विधान द्वारा संयोग रूप से अधिक्रमण को अकृत करने का कार्य भी करता है । पूर्वोक्त सांविधानिक संतुलन सम्पूर्ण रूप से कायम रखने का प्रयास किया जाना चाहिए और परिसंघीय सर्वोच्चता के सिद्धांत का सीमित रूप से प्रवर्तन किया जाना चाहिए । केन्द्रीय और राज्य अधिनियम के बीच विरोधाभास, केन्द्रीय अधिनियम द्वारा आच्छादित बैंकिग क्षेत्र में भूमि सुधार पर विचार करने वाले राज्य अधिनियम के उपबंधों द्वारा प्रकट अतिक्रमण के कारण है । इसलिए, परीक्षण, यह पता लगाना है कि किसे अधिक्रमण क्षेत्र के बारे में अधिष्ठायी विधान बनाने का अधिकार है । अधिनियम, 2002 के उपबंध बैंक को ऐसे किसी संपत्ति का कब्जा लेने को समर्थ बनाते हैं जिसमें, उसके पक्ष में प्रतिभूति हित सृजित होते हैं । विनिर्दिष्टतः, अधिनियम, 2002 की धारा 13 बैंक को अपने बकाए ऋण का उद्ग्रहण करने के लिए किसी व्यक्ति की ऐसी संपत्ति को कब्जे में लेने और विक्रय करने के लिए समर्थ बनाता है । ऐसी संपत्ति का क्रेता, विहित अपेक्षाओं के अनुपालन के अध्यधीन ऐसे विक्रय संपत्ति में स्पष्ट हक अर्जित करता है । दूसरी ओर, त्रिपुरा अधिनियम, 1960 की धारा 187, बैंक को ऐसी संपत्ति अन्तरित करने से प्रतिषिद्ध करता है जो अनुसूचित जनजाति के सदस्य द्वारा बंधक रखी गई है, उसे अनुसूचित जनजाति के सदस्य के अलावा किसी अन्य व्यक्ति को अन्तरित करता है । यह बैंक के बकाए रकम का उद्ग्रहण करने के लिए अधिनियम, 2002 द्वारा प्राप्त अनुज्ञा पर स्पष्ट निर्बंधन लगाता है । अधिनियम, 2002 उस बैंकिंग प्रविष्टि से संबंधित है जो सातवीं अनुसूची की सूची I में सम्मिलित है । बैंक द्वारा बंधक संपत्ति का विक्रय, बैंकिंग कारबार का एक अपृथक्करणीय और आंतरिक भाग है । राज्य अधिनियम का उद्देश्य, जैसा कि पहले उल्लिखित किया जा चुका है, राज्य में भूमि राजस्व विधि को समेकित करने और कृषि सुधारों के लिए उपाय भी उपबंधित करना है । राज्य विधान-मंडल द्वारा किए गए अधिक्रमण का क्षेत्र, बैंकिंग क्षेत्र है । जहां तक प्रतिभूत आस्तियों और सूची I की प्रविष्टि 45 में निर्देशित आस्तियों के विक्रय पर विचार करते हुए, कोई समानांतर केन्द्रीय विधि मौजूद नहीं है तो वहां राज्य अधिनियम जिसमें धारा 187 सम्मिलित है, वैधतः प्रवर्तित होगी । तथापि, यदि संसद् द्वारा प्रविष्टि 45 के विषय पर

ऐसी कोई विधि बनाते हुए और प्रतिभूत आस्तियों के विक्रय से संबंधित क्रियाकलापों पर अनन्य रूप से विचार करते हुए, कोई विधि बनाई जाती है तो राज्य विधि उस सीमा तक जहां तक कि यह अधिनियम, 2002 से असंगत होती है, प्रवर्तित नहीं होगी । संसदीय विधान, अधिष्ठायी विधान होने के नाते उस सीमा तक, जहां तक त्रिपुरा अधिनियम, 1960 के उपबंध (धारा 187) असंगत होंगे, अवैध होंगे । अधिनियम, 2002 के उपबंध, जो ऐसे व्यक्तियों के संवर्ग पर कोई निषेध अन्तर्विष्ट नहीं करता है जिसकी बंधक रखी संपत्ति को बैंक द्वारा अपने बकाए रकमों का उद्ग्रहण करने के लिए विक्रय किया जा सकता है, त्रिपुरा अधिनियम, 1960 की धारा 187 में अन्तर्विष्ट उपबंधों के ऊपर अभिभावी होंगे । उच्च न्यायालय ने चुनौतीधीन निर्णय में, यह भी मत अपनाया कि तारीख 26 जून, 2012 की आक्षेपित विक्रय अधिसूचना, प्रतिभूति हित (प्रवर्तन) नियम, 2002 के नियम 5 और नियम 8(5) का व्यतिक्रमण करने के कारण अविधिमान्य हैं क्योंकि बैंक ने आक्षेपित नीलामी विक्रय करने के पूर्व संपत्ति का कोई मूल्यांकन रिपोर्ट प्राप्त नहीं की है । न्यायालय का ध्यान, विनिर्दिष्टतः अपीलार्थी बैंक द्वारा उच्च न्यायालय के समक्ष फाइल प्रति-शपथपत्र में लिए गए आधार की ओर आकर्षित किया गया है । उक्त शपथपत्र में किए गए प्रकथनों को ध्यान में रखते हुए, न्यायालय का यह निष्कर्ष है कि विक्रय उद्घोषणा में 275 लाख रुपए का आरक्षित मूल्य उल्लिखित था और संपत्ति को वस्तुतः 416 लाख रुपए की नीलामी द्वारा बेचा गया था । इसके अलावा, अनुमोदित मूल्यांकक द्वारा संपत्ति की 314.15 लाख रुपए मूल्यांकित करते हुए तारीख 14 जून, 2012 की मूल्यांकन रिपोर्ट अतिरिक्त दस्तावेज के माध्यम से न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत की गई थी जिसे न्यायालय ने अभिलेख पर लिया था । इसलिए, नियम 5 और नियम 8(5) की अपेक्षाओं का अनुपालन किया गया है और विक्रय उद्घोषणा तथा उसके अनुसरण में किए गए विक्रय को उपर्युक्त आधार पर अविधिमान्य नहीं कहा जा सकता है । (पैरा 7, 9, 11, 13, 15, 16, 17, 18, 20 और 21)

निर्दिष्ट निर्णय

		पैरा
[2016]	(2016) 3 एस. सी. सी. 752 : **विशाल एन. काल्सरिया** बनाम **बैंक आफ इंडिया और अन्य ;**	14

[2010]	(2010) 3 एस. सी. सी. 571 : **पश्चिमी बंगाल राज्य और अन्य** बनाम **लोकतांत्रिक अधिकारों के संरक्षण के लिए समिति, पश्चिमी बंगाल और अन्य ;**	11
[2009]	(2009) 4 एस. सी. सी. 94 : **सेन्ट्रल बैंक आफ इंडिया** बनाम **केरल राज्य और अन्य ;**	19
[2004]	(2004) 10 एस. सी. सी. 201 : **पश्चिमी बंगाल राज्य** बनाम **केसोराम इंडस्ट्रीज लि. और अन्य ;**	8
[2004]	(2004) 4 एस. सी. सी. 489 : **एसोसिएशन आफ नेचुरल गैस** बनाम **यूनियन आफ इंडिया ;**	12
[2002]	(2002) 9 एस. सी. सी. 232 : **आई. टी. सी. लिमिटेड** बनाम **एग्रीकल्चरल प्रोड्यूज मार्केट कमेटी और अन्य ;**	13
[1994]	(1994) 3 एस. सी. सी. 1 : **एस. आर. बोम्मई** बनाम **भारत संघ ;**	13
[1983]	[1983] 3 उम. नि. प. 889 = (1983) 4 एस. सी. सी. 45 : **होक्स्ट फार्मास्युटिकल्स लि. और अन्य** बनाम **बिहार राज्य और अन्य ।**	7

अपीली (सिविल) अधिकारिता : 2016 की सिविल अपील सं. 11247 और 11250.

संविधान, 1950 के अनुच्छेद 13 के अधीन अपील ।

पक्षकारों की ओर से सर्वश्री मुकुल रोहतगी, महान्यायवादी, वी. गिरी, ज्येष्ठ अधिवक्ता, (सुश्री) आरती सिंह, (सुश्री) पूजा सिंह, शंकर दिवाते, मनोज, (सुश्री) अर्पणा सिन्हा, अभिजीत पी. मेध, शिवम् सिंह, ऋतुराज विश्वास, गोपाल सिंह,

(सुश्री) वर्षा पोद्दार और सागर चक्रवर्ती अधिवक्तागण

न्यायालय का निर्णय न्यायमूर्ति रंजन गोगोई ने दिया ।

न्या. गोगोई – विशेष इजाजत मंजूर की गई ।

2. रिट याचिका जिससे ये अपीलें उद्‌भूत हुई हैं, गुवाहाटी उच्च न्यायालय की अगरतला खंड पीठ के समक्ष संस्थित की गई थी । रिट याची, जो इसमें प्रत्यर्थी हैं, त्रिपुरा राज्य के अनुसूचित जनजाति के सदस्य हैं । उन्होंने यह दलील दी थी कि अपीलार्थी बैंक द्वारा वित्तीय आस्तियों का प्रतिभूतिकरण और पुनर्गठन तथा प्रतिभूति हित का प्रवर्तन अधिनियम, 2002 (जिसे इसमें इसके पश्चात् "अधिनियम, 2002" कहा गया है) के अधीन जारी तारीख 26 जून, 2012 की विक्रय अधिसूचना, त्रिपुरा भूमि राजस्व और भूमि सुधार अधिनियम, 1960 (जिसे इसमें इसके पश्चात् त्रिपुरा अधिनियम, 1960" कहा गया है) की धारा 187 के व्यतिक्रमण में था क्योंकि "त्रिपुरा अधिनियम, 1960 के अधीन बैंक द्वारा किसी ऐसे व्यक्ति को बंधक संपत्तियों का विक्रय करने के लिए विधायी निषेध है जो अनुसूचित जनजाति का सदस्य नहीं है । वर्तमान मामले में, नीलामी क्रेता वे व्यक्ति हैं जो किसी भी अनुसूचित जनजाति के सदस्य नहीं हैं ।

3. उच्च न्यायालय ने आक्षेपित आदेश द्वारा रिट याचिका का उत्तर प्रत्यर्थियों/रिट याचियों के पक्ष में दिया, इस आधार पर कि त्रिपुरा अधिनियम, 1960, संविधान, 1950 के नवीं अनुसूची में सम्मिलित है और इसलिए, संविधान, 1950 के अनुच्छेद 31ख के संरक्षण का लाभ अधिनियम, 2002 के ऊपर अभिभावी होगा, इसलिए, यह त्रिपुरा अधिनियम, 1960 की धारा 187 के उपबंधों के प्रतिकूल होने के नाते तारीख 26 जून, 2012 की विक्रय अधिसूचना अविधिमान्य हो जाती है ।

4. यह निष्कर्ष निकालने के लिए और अधिक विवेचन या संवीक्षा करने की आवश्यकता नहीं होगी कि उच्च न्यायालय उपर्युक्त आधार पर रिट याचिका का उत्तर देने और तारीख 26 जून, 2012 की विक्रय अधिसूचना अभिखंडित करने में पूर्णतया गलत था । संविधान, 1950 के अनुच्छेद 31ख में अन्तर्विष्ट भाषा के आमुख पर स्वयमेव ही यह स्पष्टीकारक है और इस आधार पर चुनौती देने से विधान में संरक्षण/उन्मुक्ति प्रदान करता है कि यह संविधान, 1950 के भाग 3 के किसी भी उपबंधों का अतिक्रमण करता है । इसलिए, संविधान, 1950 की नवीं

अनुसूची में त्रिपुरा अधिनियम, 1960 के सम्मिलित होने से ही यह संसदीय संविधि के उपबंधों द्वारा अभिभावी होने से उक्त विधान को कोई उन्मुक्ति प्रदान नहीं करता है । इसलिए, यह प्रश्न कि इस न्यायालय ने अन्य बातों के होते हुए भी इस तथ्य पर विचार किया कि उच्च न्यायालय के समक्ष कार्यवाहियां पूर्वोक्त आधार पर नहीं की गई थीं । इसलिए, हम दोनों पक्षकारों के विद्वान् काउंसेल को वर्तमान अपीलों में उद्‌भूत होने वाले मूल प्रश्न अर्थात् क्या अधिनियम, 2002, जहां तक कि यह क्रेताओं के किसी वर्ग या संवर्ग पर कोई निबंधन अधिरोपित किए बिना अग्रिम ऋण के लिए धारित प्रतिभूति के रूप में प्रस्थापित अचल संपत्तियों के विक्रय के लिए उपबंध करता है, त्रिपुरा अधिनियम, 1960 की धारा 187 के अधीन इस बारे में निबंधित उपबंधों के होते हुए भी अभिभावी होगा ।

5. अपीलार्थी बैंक की ओर से उपस्थित विद्वान् भारत के महान्यायवादी श्री मुकुल रोहतगी और संबंधित अपील में नीलामी-क्रेताओं का प्रतिनिधित्व करने वाले विद्वान् ज्येष्ठ अधिवक्ता श्री वी. गिरी ने यह दलील दी है कि अधिनियम, 2002 का प्रयोजन और उद्‌देश्य वित्तीय परिसम्पत्तियों और प्रवर्तन की सुरक्षा के हित और उससे संबंधित मामलों के प्रतिभूतिकरण और पुनर्निर्माण को विनियमित करना है । दूसरी ओर, त्रिपुरा अधिनियम, 1960 का प्रयोजन भूमि राजस्व से संबंधित विधि और परिसम्पत्तियों के अर्जन के लिए उपबंध करना और भूमि सुधार के कतिपय अन्य मापकों को समेकित करना है । अधिनियम, 2002, जबकि संघीय संसद् द्वारा अधिनियमित अनुसूची-I की प्रविष्टि 45 के प्रति निर्देशित है जबकि त्रिपुरा अधिनियम, 1960 राज्य सूची की प्रविष्टि 18 और 45 की रूपरेखा कही जा सकती है । त्रिपुरा अधिनियम, 1960 की धारा 187 बैंक द्वारा ऐसे किसी व्यक्ति को आडमान/बंधक संपत्तियों का विक्रय करने पर निषेध लगाती है जो अनुसूचित जनजाति का व्यक्ति नहीं है । इसलिए, त्रिपुरा अधिनियम, 1960 के उपबंध बैंकिंग विषय-वस्तु के दुरुह पहलू पर विचार करते हैं । इस संबंध में, अधिनियम, 2002 की धारा 13 के उपबंध के प्रति निर्देश कर सकते हैं जो प्रतिभूति लेनदार को न्यायालय के हस्तक्षेप के बिना प्रतिभूति हित को प्रवर्तित कराने की अनुज्ञा देता है । बैंक द्वारा किसी व्यक्ति की संपत्ति जो किसी वित्तीय सुविधा के लिए प्रतिभूति के रूप में है, बैंक के बकायों को वसूल करने के लिए विक्रय करना किसी बैंक की मुख्य बैंकिंग क्रियाकलाप का एक भाग होता है । अधिष्ठायी विधान, जहां तक कि यह बैंकिंग से संबंधित है, वर्तमान मामले में, संघीय संसद् द्वारा अधिनियमित, अधिनियम, 2002 है और न कि राज्य अधिनियम है ।

उक्त आधार पर, यह दलील दी है कि संविधान, 1950 के अनुच्छेद 246(1) को ध्यान में रखते हुए, अधिनियम, 2002 का जहां तक बैंक द्वारा बंधक संपत्तियों के विक्रय का संबंध है, यह त्रिपुरा अधिनियम, 1960 की धारा 187 के ऊपर अभिभावी होगा । राज्य अधिनियम के उपबंध, केन्द्रीय अधिनियम के उपबंधों के अधीन ही होने चाहिए, यह तर्क दिया है ।

6. उत्तर में, प्रत्यर्थियों/रिट याचियों के विद्वान् काउंसेलों ने यह दलील दी है कि दोनों संविधियों के उपबंध बिना किसी विरोधाभास के सह-अस्तित्व और समानांतर तौर पर चल सकते हैं । यह तर्क दिया कि वस्तुतः दोनों के बीच कोई विरोधाभास नहीं है । त्रिपुरा अधिनियम, 1960 की धारा 187 बंधक संपत्तियों के विक्रय पर पूर्णतः कोई प्रतिषिद्ध या निषेध अधिरोपित नहीं करती है । मात्र जब ऋण लेने वाला एक अनुसूचित जनजाति का होता है तब बैंक द्वारा उसकी संपत्ति का विक्रय अनुसूचित जनजाति के व्यक्ति को ही करना होता है ।

7. केन्द्रीय और राज्य अधिनियमों के उपबंधों के बीच विरोधाभास या असंगतता दो परिस्थितियों में उद्भूत हो सकती है । प्रथमतः, केन्द्रीय और राज्य अधिनियम के मामले में, सातवीं अनुसूची (समवर्ती सूची) के सूची III में अधिसूचित किसी प्रविष्टि के क्षेत्र में । विरोधाभास या असंगतता की ऐसी स्थिति में, संविधान, 1950 के अनुच्छेद 254 के उपबंध लागू होंगे । यदि ऐसी असंगतता उद्भूत होती है तो संविधान, 1950 का अनुच्छेद 254(1) यह स्पष्टतः उपबंध करता है कि केन्द्रीय विधि अभिभावी होगी तथापि, यह अनुच्छेद 254(2) और अनुच्छेद 254(2) के परन्तुक के अध्यधीन होगी । उपर्युक्त प्रास्थिति, **होक्स्ट फार्मास्युटिकल्स लि. और अन्य** बनाम **बिहार राज्य और अन्य**[1] वाले मामले में इस न्यायालय के तीन न्यायाधीशों की न्यायपीठ द्वारा दिए गए मत से भी स्पष्ट होती है । पूर्वोक्त राय का पैरा 67 जो लाभप्रद है, निम्नलिखित रूप में उल्लिखित किया जाता है :–

> "67. संविधान का अनुच्छेद 254 प्रथमतः इस बारे में उपबंध करता है कि ऐसी दशा में क्या होगा जिसमें कि समवर्ती सूची के अन्तर्गत प्रमाणित विषयों के बारे में किसी केन्द्रीय तथा राज्य विधि के बीच मतभेद है और दूसरे, उसके अन्तर्गत ऐसे मतभेद का समाधान करने के लिए उपबंध किया गया है । अनुच्छेद 254(1) इस प्रसामान्य

---

[1] [1983] 3 उम. नि. प. 889 = (1983) 4 एस. सी. सी. 45.

नियम को प्रतिपादित करता है कि संघ तथा राज्य विधि के बीच समवर्ती क्षेत्र में मतभेद होने की दशा में भी पूर्वतर पश्चात्वर्ती पर अभिभावी होगा । खंड (1) में यह अधिकथित किया गया है कि यदि कोई राज्य विधि जिसका संबंध किसी समवर्ती विषय से है, तत्विषय के संबंध में संघ की विधि के प्रतिकूल है तो क्या संघ विधि समय की दृष्टि से पश्चात्वर्ती अथवा पूर्ववर्ती मानी जाएगी, संघ विधि अभिभावी होगी और जहां तक प्रतिकूलता हो वहां पर राज्य विधि शून्य हो जाएगी । खंड (1) खंड (2) में अधिकथित सामान्य नियम एक अपवाद को अन्तःस्थापित करता है अर्थात् यह कि यदि राष्ट्रपति किसी राज्य विधि को अनुमति प्रदान करता है जो कि उसके विचारार्थ आरक्षित रखी गई है तो इस बात के बावजूद कि वह संघ की किसी पूर्ववर्ती विधि के प्रतिकूल है, अभिभावी होगी और दोनों की विधियां समवर्ती विषय की बाबत लागू होगीं । ऐसी दशा में, केन्द्रीय अधिनियम केवल उस हद तक जहां तक कि राज्य अधिनियम में दोनों के अन्तर्गत विसंगति हो, लागू नहीं होगा, न कि इससे अधिक विस्तार-पर्यन्त । संक्षेप में किसी ऐसे राज्य अधिनियम हेतु राष्ट्रपति की अनुमति अभिप्राप्त करने का परिणाम जो किसी ऐसी पश्चात्वर्ती संघ विधि से विसंगत हो जो कि समवर्ती विषय के संबंध में है, राज्य अधिनियम उस राज्य में अभिभावी होगा और केवल उसी राज्य को उनके लागू किए जाने की बाबत केन्द्रीय अधिनियम के उपबंध अध्यारोही होंगे । किन्तु हो सकता है कि राज्य विधि का आधिपत्य ऐसी दशा में छीन लिया जाए, जिसमें कि संसद् खंड (2) के परन्तुक के अधीन विधान बनाती है । अनुच्छेद 254(2) का उपबंध संघ की संसद् को इस बात के लिए सशक्त बनाता है कि वह किसी प्रतिकूल राज्य संबंधी विधि को प्रत्यक्षतः अथवा स्वतः उसी विषय की बाबत राज्य विधि के प्रतिकूल किसी विधि को अधिनियमित करते हुए उसे निरसित अथवा संशोधित कर सकेगी । यद्यपि ऐसी पश्चात्वर्ती विधि जो संसद् द्वारा बनाई गई हो अभिव्यक्त रूप से राज्य की विधि को निरसित नहीं करती है तो भी राज्य विधि वैसे ही शून्य हो जाएगी जैसे कि संसद् की वह पश्चात्वर्ती विधि शून्य हो जाती है जिसके लिए प्रतिकूलता उत्पन्न की गई है । कोई राज्य संबंधी विधि वहां संघ की विधि के प्रतिकूल होगी जहां कि इन दोनों विधियों के बीच परस्पर मतभेद हैं । हो सकता है कि ऐसी प्रतिकूलता उस दशा में भी उद्भूत हो जिसमें कि दोनों विधियां एक ही क्षेत्र में प्रवर्तित होती हैं

और इन दोनों प्रकार की विधियों का एक साथ रहना संभव नहीं है । देखिए न्यायाधिपति सुब्बाराव – जेवरभाई अमैदास **बनाम** मुम्बई राज्य [1955] 2 एस. सी. आर. 799, एम. करुणानिधि **बनाम** भारत संघ [1980] 1 उम. नि. प. 1121 = [1979] 3 एस. सी. आर. 284, टी. बरई **बनाम** हेनरी आह हो (1983) 1 एस. सी. सी. 177 ।"

8. उपर्युक्त मत को **पश्चिमी बंगाल राज्य** बनाम **केसोराम इंडस्ट्रीज लि. और अन्य**[1] वाले मामले में भी दोहराया गया है । पूर्वोक्त मुद्दे पर इस न्यायालय के कतिपय अन्य उद्घोषणाएं हैं । तथापि, उन सभी का उल्लेख करना अपेक्षित नहीं है क्योंकि ऐसे किसी निर्देश पर सुस्थिर विवाद्यक प्रतीत होने पर ही गुणात्मक चर्चा की जाती है । तथापि, वर्तमान मामले में, इस न्यायालय के समक्ष प्रश्न, सूची III (समवर्ती सूची) से संबंधित केन्द्रीय और राज्य विधि के बीच असंगतता में से एक नहीं है । इसलिए, मामले के उपर्युक्त पहलू की ओर और ध्यान दिलाना अपेक्षित नहीं है ।

9. द्वितीय परिस्थिति, वर्तमान मामले में, सूची I की प्रविष्टि 45 से संबंधित पश्चात्वर्ती केन्द्रीय विधि (अधिनियम, 2002) और सूची II की प्रविष्टि 18 और 45 से संबंधित पूर्ववर्ती राज्य विधि (त्रिपुरा अधिनियम, 1960) के बीच विरोध की मात्रा या असंगतता है । ऐसी परिस्थिति को हल करना और उत्तर देना है और कौन विधान श्रेष्ठता रखता है, वर्तमान अपीलों में विचार के लिए उद्भूत मूल प्रश्न है ।

10. संविधान, 1950 का अनुच्छेद 246 निम्नलिखित है :–

"246. **संसद् द्वारा और राज्यों के विधान-मंडलों द्वारा बनाई गई विधियों की विषय-वस्तु** – (1) खंड (2) और खंड (3) में किसी बात के होते हुए भी, संसद् को सातवीं अनुसूची की सूची 1 में (जिसे इस संविधान में 'संघ सूची' कहा गया है) प्रगणित किसी भी विषय के संबंध में विधि बनाने की अनन्य शक्ति है ।

(2) खंड (3) में किसी बात के होते हुए भी, संसद् को और खंड (1) के अधीन रहते हुए किसी राज्य के विधान-मंडल को भी, सातवीं अनुसूची की सूची 3 में (जिसे इस संविधान में 'समवर्ती सूची' कहा गया है) प्रगणित किसी भी विषय के संबंध में विधि बनाने की शक्ति है ।

---

[1] (2004) 10 एस. सी. सी. 201.

(3) खंड (1) और खंड (2) के अधीन रहते हुए, किसी राज्य के विधान-मंडल को, सातवीं अनुसूची की सूची 2 में (जिसे इस संविधान में 'राज्य सूची' कहा गया है) प्रगणित किसी भी विषय के संबंध में उस राज्य या उसके किसी भाग के लिए विधि बनाने की अनन्य शक्ति है ।

(4) संसद् को भारत के राज्यक्षेत्र के ऐसे भाग के लिए जो किसी राज्य के अन्तर्गत नहीं है, किसी भी विषय के संबंध में विधि बनाने की शक्ति है, चाहे वह विषय राज्य सूची में प्रगणित विषय ही क्यों न हो ।"

11. अनुच्छेद 246 का निर्वचन उस सांविधानिक स्कीम से संबंधित होना चाहिए जो संघीय संसद् के साथ ही राज्य विधान-मंडलों को विधान से संबंधित/सीमांकित अपने क्षेत्र में पूर्ण स्वायत्तता देने में परिसंघीय ढांचे से दर्शित होता है । तथापि, समस्या और अधिक जटिल हो जाती है जब संबंधित विधान-मंडलों द्वारा अपने क्षेत्र के भीतर ही दो विधान का निर्माण करते हैं और तब भी समनुदेशित विधान क्षेत्र के परे व्यतिक्रमण करते हैं । ऐसी परिस्थिति में, सांविधानिक न्यायालयों को यह देखने का साधारण कर्तव्य होता है कि यदि कोई विरोधाभास है तो दोनों विधानों के आपसी अस्तित्व को कायम रखते हुए कैसे हल किया जा सकता है । यदि ऐसा करना संभव नहीं होता है तो अनुच्छेद 246 (1) के उपबंधों को ध्यान में रखते हुए, संसदीय विधान, राज्य विधान पर अभिभावी होगी और इस तथ्य के होते हुए भी कि राज्य विधान-मंडल ने सीमांकित क्षेत्र (सूची II) के भीतर कार्य किया है । यह परिसंघीय सर्वोच्चता का सिद्धांत है जिसे संविधान, 1950 के अनुच्छेद 246 में समाहित किया गया है । तथापि, उक्त सिद्धांत, मौजूदा पूर्व-शर्त उपबंधित करने में अभिभावी होगा अर्थात्, संसदीय विधान, अधिष्ठायी विधान होता है और राज्य विधान यद्यपि अपने क्षेत्र के भीतर होता है फिर भी उस विषय या प्रविष्टि के एक अनिवार्य भाग का अतिक्रमण करता है जो अधिष्ठायी विधान से संबंधित होता है । इस सिद्धांत को इस न्यायालय के सांविधानिक न्यायपीठ द्वारा **पश्चिमी बंगाल राज्य और अन्य** बनाम **लोकतांत्रिक अधिकारों के संरक्षण के लिए समिति, पश्चिमी बंगाल और अन्य**[1] वाले मामले में स्पष्टीकृत किया गया है । निर्णय का पैराग्राफ 25, 26 और 27, जो मुद्दे को सविस्तार वर्णित करता है, को सुविधा के लिए निम्नलिखित वर्णित कर सकते हैं :–

[1] (2010) 3 एस. सी. सी. 571.

"25. अनुच्छेद 246(1) में सर्वोपरि खंड, संघीय विधान-मंडल की प्रधानता या सर्वोच्चता अनुध्यात करती है । यह शक्ति, स्वयमेव इन खंडों के लिए खंड (2) और (3) में अन्तर्विष्ट किसी चीज द्वारा परिगणित नहीं है, अभिव्यक्ततः सीमित है और अनुच्छेद 246(1) में सर्वोपरि खंड का विषय बनाया गया है । राज्य विधान-मंडल को सातवीं अनुसूची के सूची II में परिगणित विषयों के किसी भी विषय के संबंध में ऐसे राज्य या उसके किसी भाग के लिए विधियां बनाने की अनन्य शक्ति है और सूची III (समवर्ती सूची) में परिगणित किसी विषयों के संबंध में भी विधियां बनाने की भी शक्ति प्राप्त है । सूची II में परिगणित किसी विषय के संबंध में विधान करने का राज्य विधान-मंडल को अनन्य शक्ति खंड (1) के अध्यधीन है अर्थात् सूची II में परिगणित विषयों के संबंध में संसद् द्वारा विधान बनाने के अनन्य शक्ति के अध्यधीन है । परिणामस्वरुप, यदि सूची I की प्रविष्टि सूची II की प्रविष्टि के बीच कोई विरोधाभास होता है जिसमें समाधान किया जाना संभव नहीं है तो सूची II में परिगणित विषय के संबंध में विधान बनाने की संसद् की शक्ति, राज्य विधान-मंडल की शक्ति पर अधिक्रांत की सीमा तक अभिभावी होगी ।

26. दोनों संसद् और राज्य विधान-मंडल को, सूची III में परिगणित किसी विषयों के संबंध में, विधान की समवर्ती शक्तियां हैं । अनुच्छेद 246(1) में खंड (2) और खंड (3) में 'किसी बात के होते हुए भी' शब्द अन्तर्विष्ट है और अनुच्छेद 246(3) में खंड (1) और (2) के अध्यधीन, शब्द परिसंघीय सर्वोच्चता का सिद्धांत अधिकथित करता है, अर्थात् यह कि संघ और राज्य शक्तियों के बीच अपरिहार्य विरोधाभास की दशा में, संघ शक्ति, जैसा कि सूची I में परिगणित है, राज्य शक्ति, जैसा कि सूची II और III में परिगणित है, पर अभिभावी होगी और सूची II और III के अतिव्याप्ति की दशा में पश्चात्वर्ती अभिभावी होगी ।

27. यद्यपि, निस्संदेह तौर पर, संविधान, 1950 राज्य विधान-मंडलों के ऊपर संसद् की सर्वोच्चता प्रदर्शित करती है फिर भी संविधान, 1950 के अनुच्छेद 246 में अधिकथित परिसंघीय सर्वोच्चता के सिद्धांत का तब तक अवलंब नहीं लिया जा सकता है जब तक कि संघ और राज्य सूचियों की प्रविष्टियों के बीच असंगत, प्रत्यक्ष विरोधाभास नहीं हो । इस प्रकार, इस व्यापक प्रतिपादना के बारे में कोई विवाद नहीं है कि संविधान, 1950 के अधीन संघ और राज्यों

के बीच विधान शक्तियों का स्पष्ट बंटवारा किया गया है और वे उन्हें न्यस्त क्षेत्र के भीतर ही स्वयं को सीमित रखते हैं । हमारे विवेक में यह भी आ सकता है कि सूचियों के कार्य शक्तियां प्रदान नहीं करते हैं और वे मात्र विधायी क्षेत्र का सीमांकन करते हैं ....।"

12. **एसोसिएशन आफ नेचुरल गैस** बनाम **यूनियन आफ इंडिया**[1] वाले मामले में इस न्यायालय ने इसी प्रकार की राय व्यक्त की है जिसे नीचे प्रस्तुत किया जा रहा है :–

"13. भारत के संविधान की सातवीं अनुसूची में परिगणित कतिपय विषयों के संबंध में, राज्य विधान-मंडल और संसद् द्वारा प्रयोग की जाने वाली शक्तियों की रूपरेखा प्रस्तुत की गई है । शक्तियों के वितरण से संबंधित नियम, भाग XI में अन्तर्विष्ट कतिपय उपबंधों से प्राप्त होते हैं और विधायी शीर्ष, सातवीं अनुसूची के तीन सूचियों में उल्लिखित हैं । दोनों संघ और राज्य विधान-मंडल बहुमूल्य निबंधनों में दिए गए हैं । सूचियों में प्रविष्टियां, स्वयमेव ही विधान की शक्तियां प्रदान नहीं करती हैं अपितु, विधान के क्षेत्र विहित करती हैं । तथापि, एक सूची में एक प्रविष्टि का इस प्रकार निर्वचन नहीं किया जा सकता है कि यह एक दूसरी प्रविष्टि को रद्द या नष्ट करती है या एक अन्य प्रविष्टि को निरर्थक बनाती है । प्रकट विरोधाभास की दशा में, न्यायालय का यह कर्तव्य होता है कि वह उन कारणों का समाधान करे और विरोधाभास का समाधान करते हुए, विरोधाभास से बचने की कोशिश करे । यदि कोई एक प्रविष्टि दूसरे एक अन्य प्रविष्टि के साथ अतिव्याप्ति में है या प्रकट विरोधाभास में है तो उसे सुसंगत बनाने के लिए प्रत्येक प्रयास किया जाना चाहिए ।

14. जब सूची I की प्रविष्टि 45, उत्पाद-शुल्क और सूची II की प्रविष्टि 18, माल विक्रय पर कर की सुसंगतता के बारे में, भारत सरकार अधिनियम, 1935 और सेन्ट्रल प्रोविन्सेज एण्ड बेरर ऐक्ट संख्या XIV आफ 1938 में प्रश्न उद्‌भूत हुआ तो मुख्य न्यायमूर्ति सर मेरिस गायर ने निम्नलिखित मत व्यक्त किया [देंखे – (1939) एफ. सी. आर. 18 पृष्ठ 42-44] –

'साधारण निबंधनों में शक्ति प्रदान किए जाने का अर्थ

[1] (2004) 4 एस. सी. सी. 489.

निस्संदेह व्यापक रूप में नहीं लगाया जा सकता किन्तु उसी अधिनियमिति में अन्य अभिव्यक्त उपबंधों द्वारा उसी संदर्भ में तथा अधिनियम का सामान्य अर्थ लगाते हुए ही समझा जा सकता है ।'

यह भी मत व्यक्त किया गया था कि –

'इसे हल करने का प्रयास किया जाना चाहिए क्योंकि न्यायिक समिति द्वारा अधिनियम का संदर्भ और स्कीम का अवलंब लेते हुए कहा गया है और एक साथ दो प्रविष्टियों के परिशीलन द्वारा और निर्वचन द्वारा दोनों में प्रकटतः अधिकारिता संबंधी विरोधाभास के बीच समाधान करना चाहिए और जहां आवश्यक हो वहां अन्य को दूसरे की भाषा द्वारा उपांतरित किया जाना चाहिए । यदि ऐसा समाधान किया जाना वस्तुतः असंभाव्य साबित हो जाता है तो और तभी सर्वोपरि खंड और परिसंघीय शक्ति अभिभावी होगी ।'

15. यद्यपि, संसद्, राज्य सूची की प्रविष्टियों में से किसी भी सूची के बारे में विधान नहीं बना सकती है फिर भी संयोगवश संघ सूची की प्रविष्टि की परिधि के भीतर आने वाले विषय पर आवश्यक रूप से विचार करते हुए, ऐसा हो सकता है । संविवाद रूप से, राज्य विधान-मंडल भी विधान बनाते समय संयोगवश संघ सूची में आने वाले विषय का अधिक्रमण कर सकता है । ऐसे संयोगवश अधिक्रमण करते हुए, संविधान, 1950 के अधीन अधिकारातीत विधान बनाने की किसी भी दशा में आवश्यकता नहीं होती है । सार और तत्व के सिद्धांत का विधान की प्रकृति और अन्तर्वस्तुओं का पता लगाने के लिए कभी-अभी अवलंब लिया जा सकता है । तथापि, जब दो विधानों के बीच असंगत विरोधाभास होता है तो केन्द्रीय विधान अभिभावी होती है । तथापि, विरोधाभास का समाधान करने के लिए प्रत्येक प्रयास किए जाने चाहिएं ।"

13. सांविधानिक स्कीम के अधीन परिसंघीय ढांचा राज्य विधान-मंडल के विषय पर जहां अधिष्ठायी विधान-मंडल, राज्य विधान-मंडल है, वहां संसदीय विधान द्वारा संयोग रूप से अधिक्रमण को अकृत करने का कार्य भी करता है । पूर्वोक्त सांविधानिक संतुलन सम्पूर्ण रूप से कायम रखने का प्रयास किया जाना चाहिए और परिसंघीय सर्वोच्चता के सिद्धांत का सीमित रूप से प्रवर्तन किया जाना चाहिए जैसा कि न्यायमूर्ति रूमा पाल ने **आई.**

टी. सी. लिमिटेड बनाम **एग्रीकल्चरल प्रोड्यूज मार्केट कमेटी और अन्य**[1] वाले मामले में निर्णय दिया है जिसमें **एस. आर. बोम्मई** बनाम **भारत संघ**[2] वाले मामले में इस न्यायालय की मताभिव्यक्तियों को उद्धृत करने के पश्चात् विद्वान् न्यायाधीश ने निम्नलिखित मत व्यक्त किया है (पैरा 94) :–

> "276. तथ्य यह है कि हमारे संविधान की स्कीम के अधीन केन्द्र के साथ ही राज्यों को भी सर्वोच्च शक्ति दी गई है जिसका अभिप्रायः यह नहीं है कि केन्द्र से राज्य मात्र संलग्न हैं । स्वयं को आबंटित क्षेत्र के भीतर राज्य सर्वोच्च हैं । केन्द्र उनकी शक्तियों में छेड़छाड़ नहीं कर सकता है । विशिष्टतया, न्यायालयों को यह मत स्वीकार नहीं करना चाहिए कि निर्वचन, जो इस प्रभाव का है या जो राज्यों की आरक्षित शक्तियों को प्रभावित करता है या कम करने का प्रभाव रखता है ।
>
> 94. यद्यपि, संसद्, राज्य सूची की प्रविष्टियों में से किसी भी प्रविष्टि पर विधान नहीं बना सकती है फिर भी संघ सूची के अधीन प्रविष्टियों के भीतर आवश्यक विधान बनाते समय संयोगवश ऐसा हो सकता है । संविवाद तौर पर राज्य विधान-मंडल संघ सूची का अधिक्रमण कर सकता है जब ऐसा अधिक्रमण राज्य सूची के अधीन मूलभूत शक्तियों का प्रयोग करते हुए, मात्र संयोगवश हो सकता है । अधिक्रमण का तथ्य विधि को अधिकारातीत रूप से प्रभावित नहीं करता है जहां तक कि यह अधिक्रमण का क्षेत्र होता है (देंखे – ए. एस. कृष्णा **बनाम** मद्रास राज्य, ए. आई. आर. 1957 एस. सी. 297, चतुरभाई एम. पटेल **बनाम** भारत संघ, [1960] 2 एस. सी. आर. 362, राजस्थान राज्य **बनाम** जी. चावला, ए. आई. आर. 1959 एस. सी. 544 और ईश्वरी खेतान शुगर मिल्स (प्रा.) लि. **बनाम** उत्तर प्रदेश राज्य, (1980) 4 एस. सी. सी. 136 । यह सिद्धांत साधारण तौर पर सार और तत्व के सिद्धांत के रूप में जाना जाता है जो विधायी क्षेत्र के विस्तार की कोटि में नहीं आता है । इसलिए, ऐसा संयोगवश अधिक्रमण न तो प्रथम मामले में राज्य विधान-मंडल की शक्ति से वंचित करता है अथवा द्वितीय मामले में संसद् को ऐसे अधिक्रमित प्रविष्टि के अधीन अपनी अनन्य शक्तियों से वंचित करता

---

[1] (2002) 9 एस. सी. सी. 232.

[2] (1994) 3 एस. सी. सी. 1.

है । संयोगवश अधिक्रमण की दशा में, विधान में विरोधाभास होता है जो वस्तुतः अधिष्ठायी शक्ति द्वारा अधिनियमित होता है वहीं अधिष्ठायी विधान अभिभावी होगा ।"

(बल देने के लिए रेखांकन किया गया है ।)

14. **आई. टी. सी. लिमिटेड** बनाम **एग्रीकल्चरल प्रोड्यूज मार्केट कमेटी और अन्य** (उपर्युक्त) वाले मामले में न्यायमूर्ति रूमा पाल के निर्णय में व्यक्त पूर्वोक्त मत का समर्थन **विशाल एन. काल्सरिया** बनाम **बैंक आफ इंडिया और अन्य**[1] वाले मामले में इस न्यायालय के नवीनतम उद्घोषणा में किया गया प्रतीत होता है जिसमें इस न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया था कि अधिनियम, 2002 के उपबंध, राज्य किराया नियंत्रण अधिनियमों के उपबंधों पर अतिव्याप्ति का प्रभाव नहीं रखते हैं ।

15. वर्तमान मामले में, केन्द्रीय और राज्य अधिनियम के बीच विरोधाभास, केन्द्रीय अधिनियम द्वारा आच्छादित बैंकिग क्षेत्र में भूमि सुधार पर विचार करने वाले राज्य अधिनियम के उपबंधों द्वारा प्रकट अतिक्रमण के कारण है । इसलिए, परीक्षण, यह पता लगाना है कि किसे अधिक्रमण क्षेत्र के बारे में अधिष्ठायी विधान बनाने का अधिकार है ।

16. अधिनियम, 2002 के उपबंध बैंक को ऐसे किसी संपत्ति का कब्जा लेने को समर्थ बनाते हैं जिसमें, उसके पक्ष में प्रतिभूति हित सृजित होते हैं । विनिर्दिष्टतः, अधिनियम, 2002 की धारा 13 बैंक को अपने बकाए ऋण का उद्ग्रहण करने के लिए किसी व्यक्ति की ऐसी संपत्ति को कब्जे में लेने और विक्रय करने के लिए समर्थ बनाता है । ऐसी संपत्ति का क्रेता, विहित अपेक्षाओं के अनुपालन के अध्यधीन ऐसे विक्रय संपत्ति में स्पष्ट हक अर्जित करता है ।

17. दूसरी ओर, त्रिपुरा अधिनियम, 1960 की धारा 187, बैंक को ऐसी संपत्ति अन्तरित करने से प्रतिषिद्ध करता है जो अनुसूचित जनजाति के सदस्य द्वारा बंधक रखी गई है, उसे अनुसूचित जनजाति के सदस्य के अलावा किसी अन्य व्यक्ति को अन्तरित करता है । यह बैंक के बकाए रकम का उद्ग्रहण करने के लिए अधिनियम, 2002 द्वारा प्राप्त अनुज्ञा पर स्पष्ट निर्बंधन लगाता है ।

18. अधिनियम, 2002 उस बैंकिंग प्रविष्टि से संबंधित है जो सातवीं

[1] (2016) 3 एस. सी. सी. 752.

अनुसूची की सूची I में सम्मिलित है । बैंक द्वारा बंधक संपत्ति का विक्रय, बैंकिंग कारबार का एक अपथृक्करणीय और आंतरिक भाग है । राज्य अधिनियम का उद्देश्य, जैसा कि पहले उल्लिखित किया जा चुका है, राज्य में भूमि राजस्व विधि को समेकित करने और कृषि सुधारों के लिए उपाय भी उपबंधित करना है । राज्य विधान-मंडल द्वारा किए गए अधिक्रमण का क्षेत्र, बैंकिंग क्षेत्र है । जहां तक प्रतिभूत आस्तियों और सूची I की प्रविष्टि 45 में निर्देशित आस्तियों के विक्रय पर विचार करते हुए, कोई समानांतरण केन्द्रीय विधि मौजूद नहीं है तो वहां राज्य अधिनियम जिसमें धारा 187 सम्मिलित है, वैधतः प्रवर्तित होगी । तथापि, यदि संसद् द्वारा प्रविष्टि 45 के विषय पर ऐसी कोई विधि बनाते हुए और प्रतिभूत आस्तियों के विक्रय से संबंधित क्रियाक्रलापों पर अनन्य रूप से विचार करते हुए, कोई विधि बनाई जाती है तो राज्य विधि उस सीमा तक जहां तक कि यह अधिनियम, 2002 से असंगत होती है, प्रवर्तित नहीं होगी । संसदीय विधान, अधिष्ठायी विधान होने के नाते उस सीमा तक, जहां तक त्रिपुरा अधिनियम, 1960 के उपबंध (धारा 187) असंगत होंगे, अवैध होंगे । अधिनियम, 2002 के उपबंध, जो ऐसे व्यक्तियों के संवर्ग पर कोई निषेध अन्तर्विष्ट नहीं करता है जिसकी बंधक रखी संपत्ति को बैंक द्वारा अपने बकाए रकमों का उद्ग्रहण करने के लिए विक्रय किया जा सकता है, त्रिपुरा अधिनियम, 1960 की धारा 187 में अन्तर्विष्ट उपबंधों के ऊपर अभिभावी होंगे ।

19. **सेन्ट्रल बैंक आफ इंडिया** बनाम **केरल राज्य और अन्य**[1] वाले मामले में, इस न्यायालय के विनिश्चय में यह अभिनिर्धारित किया गया है कि बाम्बे विक्रय कर अधिनियम, 1959 और केरल केन्द्रीय विक्रय कर अधिनियम, 1963 के उपबंध, जो राज्य के पक्ष में विक्रय कर संदाय करने के लिए दायी व्यक्तियों की संपत्ति पर प्रथम प्रभार के लिए उपबंध करते हैं वे बैंकों और वित्तीय संस्थानों को शोध्य ऋण वसूली अधिनियम, 1993 में अन्तर्विष्ट उपबंधों से असंगत नहीं हैं और अधिनियम, 2002 के उपबंधों को भी बैंक के पक्ष में प्रथम प्रभार के लिए सामानांतर उपबंध अन्तर्विष्ट करते हुए केन्द्रीय अधिनियमों में किसी विनिर्दिष्ट उपबंध के अभाव को उल्लिखित करते हुए, समझा जाना चाहिए । इस न्यायालय का निर्णय, राज्य अधिनियमों को विधिमान्य अभिनिर्धारित किया और यह भी अभिनिर्धारित किया कि यह केन्द्रीय अधिनियमों पर अभिभावी प्रभाव नहीं रखता है उस आधार पर अर्थात् केन्द्रीय अधिनियमों में भी बैंक के पक्ष में प्रथम प्रभार सृजित करते हुए, किसी उपबंध के अभाव में आगे कार्यवाही की गई ।

---

[1] (2009) 4 एस. सी. सी. 94.

20. उच्च न्यायालय ने चुनौतीधीन निर्णय में, यह भी मत अपनाया कि तारीख 26 जून, 2012 की आक्षेपित विक्रय अधिसूचना, प्रतिभूति हित (प्रवर्तन) नियम, 2002 के नियम 5 और नियम 8(5) का व्यतिक्रमण करने के कारण अविधिमान्य हैं क्योंकि बैंक ने आक्षेपित नीलामी विक्रय करने के पूर्व संपत्ति का कोई मूल्यांकन रिपोर्ट प्राप्त नहीं की है । प्रश्नगत नियम निम्नलिखित है :–

"5. चल प्रतिभूत आस्तियों का मूल्यांकन –

नियम 4 के उप-नियम (1) के अधीन कब्जा लेने के पश्चात् और विक्रय करने के पूर्व किसी दशा में, प्राधिकृत अधिकारी चल प्रतिभूत आस्तियों का आकलित मूल्यांकन प्राप्त करेगा और इसके पश्चात्, यदि विचार करना आवश्यक हो, प्रतिभूत लेनदार से विचार-विमर्श करते हुए, नियत आस्तियों के आरक्षित मूल्य में प्रतिभूत लेनदार के बकायों के उद्ग्रहण में विक्रय करेगा ।"

"8. अचल प्रतिभूत आस्तियों का विक्रय –

(5) नियम 9 के उप-नियम (1) में निर्दिष्ट अचल संपत्ति का विक्रय करने के पूर्व, प्राधिकृत अधिकारी एक अनुमोदित मूल्यांकक से संपत्ति का मूल्यांकन प्राप्त करेगा और प्रतिभूत लेनदार से विचार-विमर्श करते हुए, संपत्ति का आरक्षित मूल्य नियत करेगा और निम्नलिखित तरीकों में से किसी द्वारा ऐसी अचल प्रतिभूत आस्तियों के सम्पूर्ण या किसी भाग का विक्रय कर सकेगा ।"

21. हमारा ध्यान, विनिर्दिष्टतः अपीलार्थी बैंक द्वारा उच्च न्यायालय के समक्ष फाइल प्रति-शपथपत्र में लिए गए आधार की ओर आकर्षित किया गया है । उक्त शपथपत्र में किए गए प्रकथनों को ध्यान में रखते हुए, हमारा यह निष्कर्ष है कि विक्रय उद्घोषणा में 275 लाख रुपए का आरक्षित मूल्य उल्लिखित था और संपत्ति को वस्तुतः 416 लाख रुपए की नीलामी द्वारा बेचा गया था । इसके अलावा, अनुमोदित मूल्यांकक द्वारा संपत्ति की 314.15 लाख रुपए मूल्यांकित करते हुए तारीख 14 जून, 2012 की मूल्यांकन रिपोर्ट अतिरिक्त दस्तावेज के माध्यम से हमारे समक्ष प्रस्तुत की गई थी जिसे हमने अभिलेख पर लिया था । इसलिए, नियम 5 और नियम 8(5) की अपेक्षाओं का अनुपालन किया गया है और विक्रय उद्घोषणा तथा उसके अनुसरण में किए गए विक्रय को उपर्युक्त आधार

पर अविधिमान्य नहीं कहा जा सकता है ।

22. पूर्वोक्त कारणों से, उच्च न्यायालय द्वारा पारित आक्षेपित आदेश अपास्त किए जाने योग्य है जिसे हम, तद्द्वारा अपास्त करते हैं । परिणामतः, अपीलें मंजूर की जाती हैं । तथापि, खर्चे का कोई आदेश पारित नहीं किया जाता है ।

अपीलें मंजूर की गईं ।

क.

[2017] 2 उम. नि. प. 132

दोकीसीला रामुलू

बनाम

अरि संगमेश्वर स्वामी वारू और अन्य

29 नवंबर, 2016

न्यायमूर्ति जगदीश सिंह खेहर और न्यायमूर्ति अरूण मिश्रा

आंध्र प्रदेश (आंध्र क्षेत्र) संपदा (उत्सादन और रैयतवाड़ी में संपरिवर्तन) अधिनियम, 1948 – धारा 3 और 11 [सपठित आंध्र प्रदेश चेरिटेबल एंड हिंदू रिलिजियस इंस्टीट्यूशन्स एंड इंडोमेंट ऐक्ट, 1987 की धारा 82] – राज्य सरकार द्वारा अधिसूचना जारी करके गांव की कतिपय भूमि ग्रहण किया जाना – अधिसूचना की तारीख के बहुत पहले से अपीलार्थी और उसके पूर्वजों का भूमि पर जोत अभिधारी होना – अधिसूचना के परिणामस्वरूप भूमिधारक और जोत अभिधारी के संबंध समाप्त हो जाना – जोत अभिधारी धारा 11 के अनुसार रैयतवाड़ी पट्टे का हकदार होना – चूंकि अपीलार्थी को साक्ष्य के आधार पर रैयतवाड़ी पट्टे का हकदार पाया गया था और प्रत्यर्थी 1987 के अधिनियम की धारा 82 का फायदा लेने के हकदार नहीं थे, अतः उच्च न्यायालय द्वारा अपनाया गया मत उचित नहीं है ।

आंध्र प्रदेश राज्य के जिला श्रीकाकुलम के अंतर्गत आने वाले संगम अग्राहरम गांव पर राज्य सरकार द्वारा तारीख 31 मार्च, 1950 को लगान में कमी (रिडक्शन इन रेंट) अधिनियम लागू किया गया था और इस गांव को

मद्रास एस्टेट्स लैंड ऐक्ट के अर्थांतर्गत 'इनाम' संपदा घोषित किया गया था । उक्त के परिणामस्वरूप इसका आंध्र प्रदेश (आंध्र एरिया) एस्टेट्स (अबोलिशन एंड कनवरजन इनटू रैयतवाड़ी) ऐक्ट, 1948 द्वारा उत्सादन कर दिया गया । राज्य सरकार ने 1948 के अधिनियम की धारा 3 के अधीन संगम अग्राहरम को कतिपय भूमि अधिसूचना जारी करके ग्रहण कर ली गई । इस अपील में अपीलार्थी और उससे पूर्व उसके पूर्वज प्रश्नगत भूमि को राज्य सरकार द्वारा ग्रहण करने के बहुत पहले से उसके जोत अभिधारी थे । इसलिए अधिसूचित तारीख को अपीलार्थी और तत्कालीन भू-स्वामी (प्रत्यर्थी सं. 1) के बीच भू-स्वामी और अभिधारी के संबंध कानूनी रूप से समाप्त हो गए और जोत अभिधारी 1948 के अधिनियम की धारा 11 के अधीन रैयतवाड़ी पट्टे का हकदार था । अपीलार्थी ने उपरोक्त कृषि भूमि, जिस पर वह "रैयतवाड़ी पट्टादार" था, से बे-कब्जा किए जाने का डर महसूस करते हुए जिला मुंसिफ, पालाकोंडा के समक्ष 1974 का मूल वाद सं. 32 फाइल किया । अपीलार्थी ने यह घोषणा करने की प्रार्थना की कि प्रश्नगत भूमि संगम अग्राहरम गांव का भाग है, जिस पर तारीख 31 मार्च, 1950 को जी. ओ. एम. एस. सं. 3724 द्वारा लगान में कमी अधिनियम लागू किया गया था और इसके अतिरिक्त संगम अग्राहरम गांव मद्रास संपदा भूमि अधिनियम की धारा 3(2) के अर्थांतर्गत एक 'इनाम' संपदा है और इसलिए अधिनियम, 1948 के उपबंधों के अध्यधीन है और यह कि 'इनाम संपदा' अधिनियम, 1948 के अधिनियमन के पश्चात् उत्सादित हो गई थी । अपीलार्थी ने एक व्यादेश के लिए भी प्रार्थना की ताकि तत्कालीन भू-स्वामी-प्रत्यर्थी सं. 1 (श्री संगमेश्वर स्वामी वारू) को अपीलार्थी के कब्जे में हस्तक्षेप करने से अवरुद्ध किया जा सके । साथ ही साथ संपदा अधिकारी, देवास्थानम् द्वारा 1974 का वाद सं. 73 यह प्राख्यान करते हुए फाइल किया गया कि देवता श्री संगमेश्वर स्वामी वारू संगम अग्राहरम गांव में स्थित प्रश्नगत भूमि का आत्यंतिक स्वामी है । देवास्थानम् का यह भी पक्षकथन था कि अपीलार्थी को उपरोक्त भूमि में 103-78 रुपए प्रतिवर्ष के करार किए गए लगान पर प्रवेश दिया था । देवास्थानम् का यह पक्षकथन था कि अपीलार्थी ने देवास्थानम् के पक्ष में तारीख 29 नवंबर, 1970 को एक कडापा (लगान-विलेख) निष्पादित किया था और यह कि अपीलार्थी देवास्थानम् के अधीन एक अभिधारी के रूप में उपरोक्त भूमि जोत रहा था । चूंकि अपीलार्थी अभिकथित रूप से देवास्थानम् द्वारा की गई कई मांगों के बावजूद वर्ष 1970-71 से 1972-73 के लगान का संदाय करने में असफल रहा, इसलिए प्रश्नगत भूमि के उपयोग के लिए लगान/नुकसानी तथा उस पर ब्याज और खर्चे के लिए 311-34 रुपए की

रकम की वसूली के लिए उपरोक्त वाद फाइल किया गया था । उपरोक्त दोनों वादों को एक साथ संयोजित किया गया । मूल वाद सं. 32/1974 में साक्ष्य अभिलिखित किया गया और उसके उपरांत यह अभिनिर्धारित किया गया कि अपीलार्थी अधिसूचित तारीख (17 जनवरी, 1959) के बहुत पहले से उपरोक्त कृषि भूमि की बाबत एक जोत अभिधारी था और यह कि अपीलार्थी का राज्य सरकार द्वारा अधिनियम, 1948 के अधीन "इनाम संपदाओं" का ग्रहण करने के पूर्व से उपरोक्त भूमि पर अधिभोगी अधिकार था और इसके अतिरिक्त, अधिसूचित तारीख 17 जनवरी, 1959 से तत्कालीन भू-स्वामी श्री संगमेश्वर स्वामी वारू-प्रत्यर्थी सं. 1 और रैयत के बीच भू-स्वामी और अभिधारी के संबंध समाप्त हो गए थे और यह कि अपीलार्थी वादांतर्गत भूमि के लिए "रैयतवाड़ी" पट्टे का हकदार था । मूल वाद सं. 32/74 में यह अवधारण प्रश्नगत मंदिर के एक "अर्चक" और एक "न्यासी" (क्रमशः अभि. सा. 2 और अभि. सा. 3) के साक्ष्य द्वारा उपरोक्त स्थिति सिद्ध करने में अपीलार्थी के समर्थ होने के परिणामस्वरूप अभिलिखित किया गया था । अपीलार्थी यह प्रदर्शित करने में भी समर्थ रहा कि अपीलार्थी और उसके हित-पूर्वाधिकारी अधिसूचित तारीख 17 जनवरी, 1959 के बहुत पहले से वादांतर्गत भूमि के जोत अभिधारी थे । मामले को उपर्युक्त रूप से देखते हुए 1974 का मूल वाद सं. 32 डिक्रीत किया गया । उपरोक्त के विरुद्ध संपदा अधिकारी, देवास्थानम् अपीलार्थी के पक्ष में किए गए तारीख 29 नवंबर, 1970 के अभिकथित लगान-विलेख (कडापा) के निष्पादन को सिद्ध नहीं कर सका और इसलिए देवास्थानम् श्री संगमेश्वर स्वामी वारू और अपीलार्थी के बीच यथा अभिकथित भू-स्वामी और अभिधारी के संबंध सिद्ध नहीं हो सके । इसलिए 1974 का वाद सं. 73 खारिज कर दिया गया । 1974 के मूल वाद सं. 32 और 1974 के वाद सं. 73 में तारीख 31 अक्तूबर, 1977 को निर्णय और डिक्री पारित किए गए । उक्त निर्णय और डिक्री को उच्च्व न्यायालय में सिविल पुनरीक्षण आवेदन फाइल करके चुनौती दी गई । उक्त पुनरीक्षण आवेदन मंजूर किया गया । अपीलार्थी ने व्यथित होकर उच्चतम न्यायालय में अपील फाइल की । उच्चतम न्यायालय द्वारा अपील मंजूर करते हुए,

अभिनिर्धारित – सर्वप्रथम यह अवधारित किए जाने की आवश्यकता है कि क्या अपीलार्थी और प्रत्यर्थी सं. 1 श्री संगमेश्वर स्वामी वारू के बीच कृषि भूमि का पट्टा विद्यमान है या नहीं । जब अधिनियम, 1987 प्रख्यापित किया गया था तब यदि अस्तित्वशील पट्टा था तो केवल तभी धारा 82 का अवलंब लिया जा सकता है । न्यायालय का यह समाधान हो गया है कि आंध्र प्रदेश (आंध्र एरिया) एस्टेट्स (अबोलिशन एंड कनवरजन इनटू

रैयतवाड़ी) अधिनियम, 1948 की धारा 3 के अधीन तारीख 17 जनवरी, 1959 को अधिसूचना जारी होने के परिणामस्वरूप संगम अग्राहरम गांव के राजस्व संपदा में की प्रश्नगत कृषि भूमि को सम्यक् रूप से "इनाम संपदा" घोषित किया गया था । पूर्वोक्त "इनाम संपदा" में अपीलार्थी का अधिकार स्पष्ट रूप से तारीख 17 जनवरी, 1959 अर्थात् अधिसूचित तारीख से पूर्व अपीलार्थी के अभिधृति दावे के अवधारण पर निर्भर करता है । जहां तक प्रस्तुत विवाद्यक का संबंध है, 1974 का मूल वाद सं. 32 अपीलार्थी के पक्ष में डिक्रीत किया गया था और सम्यक् रूप से यह घोषित किया गया था कि अपीलार्थी का प्रश्नगत भूमि पर कब्जा था । यह भी अभिनिर्धारित किया गया था कि अधिसूचित तारीख 17 जनवरी, 1959 के बहुत पहले से प्रश्नगत भूमि अपीलार्थी और उसके पूर्वजों के लगातार कब्जे में थी । ऐसी स्थिति होने पर, अधिनियम, 1948 की धारा 11 के निबंधनों के अनुसार अपीलार्थी स्वतः "रैयतवाड़ी पट्टे" का हकदार बन गया था । न्यायालय ऐसा इसलिए कह रहा है क्योंकि यदि कृषि भूमि का कब्जा और अधिभोग जुलाई, 1945 के प्रथम दिन के बाद का है, केवल तभी राज्य सरकार प्रत्येक मामले की परिस्थितियों की परीक्षा करेगी और तदुपरांत, समुचित मामले में निदेश जारी करेगी कि ऐसी कृषि भूमि के अभिधारी को "रैयतवाड़ी पट्टे" का विस्तार किया जाना है । तथापि, 1974 के मूल वाद सं. 32 में स्पष्ट रूप से यह घोषणा की गई है कि प्रश्नगत कृषि भूमि अधिसूचित तारीख 17 जनवरी, 1959 के बहुत पहले से अपीलार्थी और उसके पूर्वजों की अभिधृति में थी, इसलिए अपीलार्थी प्रश्नगत भूमि की बाबत "रैयतवाड़ी पट्टे" का स्वतः हकदार था । यथा उपरोक्त निष्कर्ष पर पहुंचने के पश्चात् न्यायालय का यह समाधान हो गया है कि अधिनियम, 1987 की धारा 82 प्रस्तुत संविवाद को लागू नहीं होती है, क्योंकि अपीलार्थी को अधिनियम, 1987 की प्रारंभ की तारीख अर्थात् 21 अप्रैल, 1987 को अस्तित्वशील किसी संस्था से संबंधित या दी गई या विन्यास के प्रयोजन के लिए विन्यस्त कृषि भूमि का पट्टा धारक नहीं समझा जा सकता है । उपरोक्त स्थिति संपदा अधिकारी, देवास्थानम् द्वारा फाइल किए गए 1974 के वाद सं. 73 की खारिजी से भी प्रकट होता है, जिसमें श्री संगमेश्वर स्वामी वारू की ओर से किया गया यह प्राख्यान नामंजूर कर दिया गया था कि तारीख 21 नवंबर, 1970 के अभिकथित कडापा (लगान-विलेख) के आधार पर अपीलार्थी के साथ भू-स्वामी और अभिधारी के संबंध विद्यमान हैं । उपर्युक्त निष्कर्ष ने स्वीकृत रूप से पक्षकारों के बीच अंतिमता प्राप्त कर ली है । (पैरा 14 और 15)

निर्दिष्ट निर्णय

		पैरा
[1985]	[1985] 4 उम. नि. प. 564 = (1985) 4 एस. सी. सी . 10 : **तमिलनाडु राज्य** बनाम **रामलिंग सेमिगल मडम** ;	16
[1980]	[1980] 1 उम. नि. प. 1045 = ए. आई. आर. 1979 एस. सी. 1320 : **मुड्डाडा चयन्ना** बनाम **करनम नारायण** ।	13

अपीली (सिविल) अधिकारिता : 2016 की सिविल अपील सं. 11306.

2009 के सिविल पुनरीक्षण आवेदन सं. 258 में आंध्र प्रदेश उच्च न्यायालय, हैदराबाद के तारीख 3 अगस्त, 2009 को पारित निर्णय और आदेश के विरुद्ध अपील ।

अपीलार्थी की ओर से सर्वश्री वाई. राजा गोपाला राव और के. शरत कुमार

प्रत्यर्थियों की ओर से सर्वश्री के. शिवराज चौधरी, जी. बी. आर. चौधरी और ए. चन्द्रशेखर

न्यायालय का निर्णय न्यायमूर्ति जगदीश सिंह खेहर ने दिया ।

न्या. खेहर – इजाजत दी गई ।

2. वर्तमान संविवाद स्वीकृत रूप से 1 एकड़ और 80-1/2 सेंट कृषि भूमि के संबंध में है । संगम अग्राहरम गांव, वंगाना मंडल, जिला श्रीकाकुलम, आंध्र प्रदेश राज्य की उपरोक्त भूमि में से 33-1/2 सेंट सर्वेक्षण सं. 123/5 और शेष 1 एकड़ और 47 सेंट सर्वेक्षण सं. 129/2 में है । इस न्यायालय के समक्ष अपीलार्थी का यह पक्षकथन है कि वह एक निर्धन भूमिहीन व्यक्ति है और यह कि उसका परिवार बहुत वर्षों से उपरोक्त भूमि का अधिभोग कर रहा है । वास्तव में, अपीलार्थी का यह पक्षकथन है कि उसके पूर्वज उपरोक्त भूमि को जोत रहे थे, जो अंततः उसे और उसके अविभक्त कुटुम्ब के सदस्यों को संक्रांत हुई ।

3. संगम अग्राहरम गांव पर लगान में कमी अधिनियम तारीख 31 मार्च, 1950 को जी. ओ. एम. एस. सं. 3724 द्वारा लागू किया गया था । जैसाकि ऊपर उपदर्शित किया गया है, प्रश्नगत भूमि संगम अग्राहरम गांव

का भाग थी । संगम गांव को मद्रास एस्टेट्स लैंड ऐक्ट (मद्रास संपदा भूमि अधिनियम) की धारा 3(2)(घ) के अर्थांतर्गत 'इनाम संपदा' के रूप में घोषित किया गया था । परिणामतः, उसका आंध्र प्रदेश (आंध्र एरिया) एस्टेट्स (अबोलिशन एंड कनवरजन इनटू रैयतवाड़ी) ऐक्ट, 1948 (जिसे इसमें इसके पश्चात् "अधिनियम, 1948" कहा गया है) द्वारा उत्सादन किया गया ।

4. राज्य सरकार ने अधिनियम, 1948 की धारा 3 के अधीन संगम अग्राहरम गांव को तारीख 19 जनवरी, 1959 की अधिसूचना सं. 28 द्वारा अधिसूचित किया । यह विवाद का विषय नहीं है कि भूमि, जो प्रस्तुत संविवाद का विषय-वस्तु है, अधिनियम, 1948 के अधीन अधिसूचित की गई थी और आंध्र प्रदेश राज्य के राजपत्र के भाग-1 में प्रकाशित हुई थी ।

5. संगम अग्राहरम गांव की अधिसूचित भूमि तारीख 25 फरवरी, 1959 को राज्य सरकार द्वारा ग्रहण कर ली गई । अपीलार्थी और उससे पूर्व उसके पूर्वज राज्य सरकार द्वारा उपरोक्त भूमि/संपदा के ग्रहण करने के बहुत वर्ष पहले से प्रश्नगत भूमि की बाबत जोत अभिधारी थे । इसलिए अधिसूचित तारीख को और इस मामले में अपीलार्थी और तत्कालीन भू-स्वामी-प्रत्यर्थी सं. 1 (श्री संगमेश्वर स्वामी वारु) के बीच भू-स्वामी और अभिधारी के संबंध कानूनी रूप से समाप्त हो गए थे । उसके पश्चात् भू-स्वामी का अधिकार केवल प्रतिकर तक सीमित था । "रैयतवाड़ी पट्टा" के हकदार व्यक्तियों के कब्जे वाली भूमि को छोड़कर ऐसी भूमियों का कब्जा भी राज्य सरकार को अंतरित हो गया था । जोत अभिधारी, अधिनियम, 1948 की धारा 11 के अधीन "रैयतवाड़ी पट्टा" का हकदार था । इसमें ऊपर यथा अभिव्यक्त स्थिति को निर्देशित करने के लिए उक्त अधिनियम की धारा 3 और 11 को इसमें नीचे उद्धृत किया जा रहा है :–

*"3. **संपदा की अधिसूचना के परिणाम** – अधिसूचित तारीख को और से तथा इस अधिनियम में अन्यथा अभिव्यक्त रूप से उपबंधित के सिवाय –

(क) आंध्र प्रदेश (आंध्र क्षेत्र) स्थायी बंदोबस्त विनियम, 1802, संपदा भूमि अधिनियम, और आंध्र प्रदेश (आंध्र क्षेत्र) संपदा भूमि

---

*अंग्रेजी में यह इस प्रकार है –

"3. **Consequences of Notification of estate** – With effect on and from the notified date and save as otherwise expressly provided in this Act –

(a) the Andhra Pradesh (Andhra Area) Permanent Settlement Regulation, 1802, the Estates Land Act, and all enactments applicable to

(लगान में कमी) अधिनियम, 1947 को छोड़कर, संपदा पर लागू सभी अधिनियमितियों के बारे में यह समझा जाएगा कि संपदा पर उनका उपयोजन निरसित हो गया है ;

(ख) जमींदारी संपदा के स्थायी बंदोबस्त पर उस संपदा की आस्तियों में सम्मिलित संपूर्ण संपदा [जिसमें लघु इनाम (बंदोबस्त के पश्चात् या बंदोबस्त के पूर्व), सभी सामुदायिक भूमियां और पोरोम्बोक संपत्ति; अन्य गैर-रैयती भूमियां; बंजर भूमियां; चरागाह भूमियां; लंका भूमियां; वन; खान और खनिज; खदान; नदियां और धाराएं; तालाब और सिंचाई कर्म; मीन क्षेत्र और पारघाट सम्मिलित हैं] सरकार को अंतरित हो जाएगी और सभी विलंगमों से मुक्त उसमें निहित हो जाएगी; और आंध्र प्रदेश (आंध्र क्षेत्र) राजस्व वसूली अधिनियम, 1864, आंध्र प्रदेश (आंध्र क्षेत्र) सिंचाई उपकर अधिनियम, 1865 और रैयतवाड़ी क्षेत्रों पर लागू सभी अन्य अधिनियमितियां संपदा को लागू होंगी ;

(ग) सरकार द्वारा अधिसूचित तारीख से पूर्व संपदा में या संपदा के बारे में सृष्ट सभी अधिकार और हित समाप्त और पर्यवसित हो जाएंगे ;

(घ) सरकार किसी ऐसी बाधा को जो संपदा के कब्जे में आए, हटाने के पश्चात् तुरंत संपदा और उस संपदा से संबंधित सभी

---

the estate as such except the Andhra Pradesh (Andhra Area) Estates Land (Reduction of Rent) Act, 1947, shall be deemed to have been repealed in their application to the estate;

(b) the entire estate (including minor inams (post-settlement or pre-settlement) included in the assets of the zamindari estate at the permanent settlement of that estate; all communal lands and porambokes; other non-ryoti lands; waste lands; pasture lands; lanks lands; forests; mines and minerals; quarries; rivers and streams; tanks and irrigation works; fisheries; and ferries, shall stand transferred to the Government and vest in them, free of all encumbrances; and the Andhra Pradesh (Andhra Area) Revenue Recovery Act, 1864, the Andhra Pradesh (Andhra Area) Irrigation Cess Act, 1865 and all other enactments applicable to ryotwari areas shall apply to the estate ;

(c) all rights and interests created in or over the estate before the notified date by the Government cease and determine;

(d) the Governement may, after removing any obstruction that may

लेखों, रजिस्टरों, पट्टों, मुचलकों, नक्शों, रेखांकों और अन्य ऐसे दस्तावेजों को, जिनकी सरकार उसके प्रशासन के लिए अपेक्षा करे, कब्जे में ले सकती है :

परंतु यह कि सरकार किसी व्यक्ति को संपदा में की किसी ऐसी भूमि से बे-कब्जा नहीं करेगी, जिनकी बाबत वह यह समझती है कि वह प्रथमदृष्ट्या ऐसे रैयतवाड़ी पट्टे का हकदार है –

(i) यदि ऐसा व्यक्ति एक रैयत है, तो बंदोबस्त अधिकारी के इस विनिश्चय के लंबित रहते हुए कि क्या वह वास्तव में ऐसे पट्टे का हकदार है या नहीं ;

(ii) यदि ऐसा व्यक्ति भूमिधारक है तो बंदोबस्त अधिकारी के विनिश्चय और अपील करने पर, यदि कोई हो, अधिकरण के इस विनिश्चय के लंबित रहते हुए कि क्या वह ऐसे पट्टे का वास्तव में हकदार है या नहीं ;

(ङ) मालिक या अन्य कोई भूमिधारक तथा कोई अन्य व्यक्ति, जिसके अधिकार खंड (ख) के अधीन अंतरित हो जाते हैं या खंड (ग) के अधीन समाप्त या पर्यवसित हो जाते हैं, इस अधिनियम में उपबंधित अनुसार सरकार से केवल प्रतिकर प्राप्त करने का हकदार होगा ;

---

be offered, forthwith take possession of the estate, and all accounts, registers, pattas, muchilikas, maps, plans and other documents relating to that estate which the Government may require for the administration thereof :

Provided that the Government shall not dispossess any person of any land in the estate in respect of which they consider that he is prima facie entitled to a ryotwari patta –

(i) if such person is a ryot, pending the decision of the Settlement Officer as to whether he is actually entitled to such patta;

(ii) if such person is a landholder pending the decision of the Settlement Officer and the Tribunal on appeal, if any, to it, as to whether he is actually entitled to such patta;

(e) the principal or any other landholder and any other person whose rights stand transferred under clause (b) or cease and determine under clause (c), shall be entitled only to compensation from the Government as provided in this Act;

(च) उनके बीच भूमिधारक और रैयत का संबंध निर्वापित हो जाएगा ;

(छ) संपदा में रैयत और उनके अधीन धारण करने वाले व्यक्ति सरकार के विरुद्ध केवल ऐसे अधिकारों और विशेषाधिकारों के लिए हकदार होंगे, जिन्हें अधिनियम द्वारा या उसके अधीन मान्यता दी जाए अथवा उन्हें प्रदत्त किया जाए, और अन्य कोई अधिकार या विशेषाधिकार, जो उनको अधिसूचित तारीख से पूर्व मालिक या उसके किसी अन्य भूमिधारक के विरुद्ध प्रोद्भूत हुआ हो, समाप्त और पर्यवसित हो जाएगा और सरकार अथवा ऐसे भूमिधारक के विरुद्ध प्रवर्तनीय नहीं होगा ।

*   *   *   *   *

11. भूमियां जिनमें रैयत रैयतवाड़ी पट्टे का हकदार है – प्रत्येक रैयत किसी संपदा में अधिसूचित तारीख को और से निम्नलिखित की बाबत रैयतवाड़ी पट्टे का हकदार होगा –

(क) वह सभी रैयती भूमियां, जो अधिसूचित तारीख के ठीक पूर्व उसकी जोत भूमि में उचित रूप से सम्मिलित थी या उचित रूप से सम्मिलित की जानी चाहिए थी और जो न तो लंका भूमियां हैं और न ही ऐसी भूमियां हैं जिनकी बाबत भूमिधारक या कोई अन्य व्यक्ति इस अधिनियम के किसी अन्य उपबंध के अधीन रैयतवाड़ी पट्टे का हकदार है ; और

(f) the relationship of landholder and ryot shall as between them, be extinguished;

(g) ryots in the estate and persons holding under them shall, as against the Government, be entitled only to such rights and privileges as are recognized or conferred on them by or under this Act, and any other rights and privileges which may have accrued to them in the estate before the notified date against the principal or any other landholder thereof shall cease and determine and shall not be enforceable against the Government or such landholder.

*   *   *   *   *

11. Land in which ryot is entitle to ryotwari patta – Every ryot in an estate shall with effect on and from the notified date, be entitled to a ryotwari patta in respect of –

(a) all ryoti lands which, immediately before the notified date where properly included or ought to have been properly included in his holding and which are not either lanka lands or lands in respect of which a landholder or some other person is entitled to a ryotwari patta under any other provision of this Act; and

(ख) अधिसूचित तारीख से ठीक पूर्व उसके अधिभोग में की सभी लंका भूमियों में जबकि ऐसी भूमियां जुलाई, 1939 के प्रथम दिन से लगातार उसके या उसके हक पूर्वाधिकारी के अधिभोग में रही हैं :

परंतु कोई व्यक्ति, जिसे जुलाई, 1945 को या इसके पश्चात् भूमिधारक द्वारा किसी भूमि का कब्जा दिया गया है, वहां के सिवाय जहां सरकार सभी परिस्थितियों की परीक्षा करने के पश्चात् अन्यथा निदेश दे, ऐसी भूमि की बाबत रैयतवाड़ी पट्टे का हकदार नहीं होगा ।

स्पष्टीकरण – किसी लंका को कोई पट्टाधारी और कोई व्यक्ति जिसे अधिसूचित तारीख से पूर्व किसी भूमि का लगान एकत्र करने के अधिकार का पट्टा दिया गया है, जिसमें लगान पर कोई जरदार या कृषक भी सम्मिलित है, इस धारा के अधीन ऐसी भूमि की बाबत रैयतवाड़ी पट्टे का हकदार होगा ।"

(रेखांकित करके बल दिया गया है)

6. अपीलार्थी ने उपरोक्त कृषि भूमि, जिस पर वह "रैयतवाड़ी पट्टादार" था, से बे-कब्जा किए जाने का डर महसूस करते हुए जिला मुंसिफ, पालाकोंडा के समक्ष 1974 का मूल वाद सं. 32 फाइल किया । अपीलार्थी ने यह घोषणा करने की प्रार्थना की कि प्रश्नगत भूमि संगम अग्राहरम गांव का भाग है, जिस पर तारीख 31 मार्च, 1950 को जी. ओ. एम. एस. सं. 3724 द्वारा लगान में कमी अधिनियम लागू किया गया था और

(b) all lanka lands in his occupation immediately before the notified date, such land having been in his occupation or in that of his predecessors in title continuously from the 1st day of July, 1939;

Provided that no person who has been admitted into possession of any land by a landholder on or after the first day of July, 1945 shall, except where the Government, after an examination of all the circumstances otherwise direct, be entitled to a ryotwari patta in respect of such land.

Explanation – No lessee of any lanka and no person to whom a right to collect the rent of any land has been leased before the notified date, including an jardar or a farmer on rent, shall be entitled to ryotwari patta in respect of such land under this section.

(emphasis supplied)

इसके अतिरिक्त संगम अग्राहरम गांव मद्रास संपदा भूमि अधिनियम की धारा 3(2) के अर्थांतर्गत एक "इनाम संपदा" है और इसलिए अधिनियम, 1948 के उपबंधों के अध्यधीन है और यह कि "इनाम संपदा" अधिनियम, 1948 के अधिनियमन के पश्चात् उत्सादित हो गई थी । अपीलार्थी ने एक व्यादेश के लिए भी प्रार्थना की ताकि तत्कालीन भू-स्वामी-प्रत्यर्थी सं. 1 (श्री संगमेश्वर स्वामी वारू) को अपीलार्थी के कब्जे में हस्तक्षेप करने से अवरुद्ध किया जा सके ।

7. साथ ही साथ संपदा अधिकारी, देवारस्थानम् द्वारा 1974 का वाद सं. 73 यह प्राख्यान करते हुए फाइल किया गया कि देवता श्री संगमेश्वर स्वामी वारू संगम अग्राहरम गांव में स्थित प्रश्नगत भूमि का आत्यंतिक स्वामी है । देवारस्थानम् का यह भी पक्षकथन था कि अपीलार्थी को उपरोक्त भूमि में 103-78 रुपए प्रतिवर्ष के करार किए गए लगान पर प्रवेश दिया था । देवारस्थानम् का यह पक्षकथन था कि अपीलार्थी ने देवारस्थानम् के पक्ष में तारीख 29 नवंबर, 1970 को एक कडापा (लगान-विलेख) निष्पादित किया था और यह कि अपीलार्थी देवारस्थानम् के अधीन एक अभिधारी के रूप में उपरोक्त भूमि जोत रहा था । चूंकि अपीलार्थी अभिकथित रूप से देवारस्थानम् द्वारा की गई कई मांगों के बावजूद वर्ष 1970-71 से 1972-73 के लगान का संदाय करने में असफल रहा, इसलिए प्रश्नगत भूमि के उपयोग के लिए लगान/नुकसानी तथा उस पर ब्याज और खर्चे के लिए 311-34 रुपए की रकम की वसूली के लिए उपरोक्त वाद फाइल किया गया था ।

8. अपीलार्थी द्वारा फाइल किए गए 1974 के मूल वाद सं. 32 में निम्नलिखित विवाद्यक विरचित किए गए थे :–

"1. क्या वादी प्रार्थना किए गए व्यादेश का हकदार है ?

2. क्या विरचित वाद कायम रखने योग्य है ?

3. क्या अनुतोष दिया जाए ?"

7. तारीख 1 अगस्त, 1977 को निम्नलिखित अतिरिक्त विवाद्यक विरचित किया गया :–

"क्या वादी, वाद में प्रार्थना की गई घोषणा के लिए हकदार है ?"

9. प्रत्यर्थी सं. 1 द्वारा फाइल किए गए 1974 के वाद सं. 73 में निम्नलिखित विवाद्यक विरचित किए गए :–

"1. क्या वादी प्रतिवादी से लगान एकत्र करने का हकदार है ?

2. क्या प्रतिवादी ने उस भूमि पर अधिभोगी अधिकार अर्जित कर लिया है जिसके लिए लगान का दावा किया गया है ?

3. क्या अनुतोष दिया जाए ?"

10. उपरोक्त दोनों वादों को एक साथ संयोजित किया गया । मूल वाद सं. 32/1974 में साक्ष्य अभिलिखित किया गया और उसके उपरांत यह अभिनिर्धारित किया गया कि अपीलार्थी अधिसूचित तारीख (17 जनवरी, 1959) के बहुत पहले से उपरोक्त कृषि भूमि की बाबत एक जोत अभिधारी था और यह कि अपीलार्थी का राज्य सरकार द्वारा अधिनियम, 1948 के अधीन "इनाम संपदाओं" का ग्रहण करने के पूर्व से उपरोक्त भूमि पर अधिभोगी अधिकार था और इसके अतिरिक्त, अधिसूचित तारीख 17 जनवरी, 1959 से तत्कालीन भू-स्वामी श्री संगमेश्वर स्वामी वारू-प्रत्यथी सं. 1 और रैयत के बीच भू-स्वामी और अभिधारी के संबंध समाप्त हो गए थे और यह कि अपीलार्थी वादांतर्गत भूमि के लिए "रैयतवाड़ी" पट्टे का हकदार था । मूल वाद सं. 32/74 में यह अवधारण प्रश्नगत मंदिर के एक "अर्चक" और एक "न्यासी" (क्रमशः अभि. सा. 2 और अभि. सा. 3) के साक्ष्य द्वारा उपरोक्त स्थिति सिद्ध करने में अपीलार्थी के समर्थ होने के परिणामस्वरूप अभिलिखित किया गया था । अपीलार्थी यह प्रदर्शित करने में भी समर्थ रहा कि अपीलार्थी और उसके हित-पूर्वाधिकारी अधिसूचित तारीख 17 जनवरी, 1959 के बहुत पहले से वादांतर्गत भूमि के जोत अभिधारी थे । मामले को उपर्युक्त रूप से देखते हुए 1974 का मूल वाद सं. 32 डिक्रीत किया गया ।

11. उपरोक्त के विरुद्ध संपदा अधिकारी, देवास्थानम् अपीलार्थी के पक्ष में किए गए तारीख 29 नवंबर, 1970 के अभिकथित लगान-विलेख (कडापा) के निष्पादन को सिद्ध नहीं कर सका और इसलिए देवास्थानम् श्री संगमेश्वर स्वामी वारू और अपीलार्थी के बीच यथा अभिकथित भू-स्वामी और अभिधारी के संबंध सिद्ध नहीं हो सके । इसलिए 1974 का वाद सं. 73 खारिज कर दिया गया । 1974 के मूल वाद सं. 32 और 1974 के वाद सं. 73 में तारीख 31 अक्तूबर, 1977 को निर्णय और डिक्री पारित किए गए । विरोधी पक्षकारों के बीच यह विवादग्रस्त विषय नहीं है कि उपर्युक्त अवधारण ने पक्षकारों के बीच अंतिमता प्राप्त कर ली है ।

12. अपीलार्थी का इस न्यायालय के समक्ष दावा आंध्र प्रदेश (आंध्र

क्षेत्र) संपदा (उत्सादन और रैयतवाड़ी में संपरिवर्तन) अधिनियम, 1948 [आंध्र प्रदेश (आंध्र एरिया) एस्टेट्स (अबोलिशन एंड कनवरजन इनटू रैयतवाड़ी) ऐक्ट, 1948] (ऊपर पहले ही उद्धृत) की धारा 3 और 11 के सामूहिक पठन पर आधारित है, जबकि संपदा अधिकारी, देवास्थानम् (श्री संगमेश्वर स्वामी वारू की ओर से) का दावा आंध्र प्रदेश पूर्त और हिंदू धार्मिक संस्थाएं और विन्यास अधिनियम, 1987 (आंध्र प्रदेश चैरिटेबल एंड हिंदू रिलिजियस इंस्टीट्यूशन्स एंड इंडोमेंट ऐक्ट, 1987) (जिसे इसमें इसके पश्चात् "अधिनियम, 1987" कहा गया है) की धारा 82 पर आधारित है । पूर्वोक्त उल्लिखित धारा 82 को इसमें नीचे उद्धृत किया जा रहा है :–

*"82. कृषि भूमियों का पट्टा – (1) इस अधिनियम के प्रारंभ की तारीख को अस्तित्वशील किसी संस्था या विन्यास से संबंधित या उसके प्रयोजन के लिए दिया या विन्यस्त किया गया किसी ऐसे व्यक्ति द्वारा धारित, जो भूमिहीन निर्धन व्यक्ति नहीं है, कृषि भूमि का कोई पट्टा तत्समय प्रवृत्त किसी अन्य विधि में किसी बात के होते हुए भी रद्द हो जाएगा ।

(2) ऐसी किसी भूमियों के पट्टे जो नगरपालिकाओं और नगर निगमों में स्थित भूमियों से भिन्न हैं, भूमिहीन निर्धन व्यक्ति द्वारा लगातार छह वर्ष से अन्यून समय से धारित किए गए हैं, तो ऐसा व्यक्ति ऐसी भूमियों को क्रय करने के समय समान रूप से स्थित भूमियों के वर्तमान बाजार मूल्य के पचहत्तर प्रतिशत के प्रतिफल पर क्रय कर सकेगा और ऐसा प्रतिफल चार समान किस्तों में विहित रीति में संदत्त किया जाएगा । ऐसा विक्रय निविदा-सह-लोक नीलामी के बिना किया जा सकेगा :

---

* अंग्रेजी में यह इस प्रकार है –

"82. Lease of Agricultural Land – (1) Any lease of agricultural land belonging to or given or endowed for the purpose of any institution or endowment subsisting on the date of commencement of this Act shall, notwithstanding anything in any other law for the time being in force, held by a person who is not a landless poor person stand cancelled.

(2) In respect of leases of agricultural lands other than those lands situated in Municipalities and Municipal Corporation held by landless poor person for not less than six years continuously, such person shall have the to purchase such lands for a consideration of seventy five per centum of the prevailing market value of similarly situated lands at the time of purchase and such consideration shall be paid in four equal instalments in the manner prescribed. Such sale may be effected otherwise than by tender-cum-public auction :

परंतु यदि ऐसे छोटे और सीमांत किसान, जो भूमि का क्रय करने में समर्थ नहीं हैं, अभिधारियों के रूप में बने रहेंगे बशर्ते यदि वे समान रूप से स्थित भूमियों के बाजार मूल्य का कम से कम दो तिहाई पट्टा रकम के रूप में संदाय करने के लिए सहमत होते हैं ।

स्पष्टीकरण – इस उपधारा के प्रयोजन के लिए 'भूमिहीन निर्धन व्यक्ति' से ऐसा व्यक्ति अभिप्रेत है जिसकी उसके द्वारा धारित भूमि की कुल सीमा, या तो स्वामी के रूप में या जोत अभिधारी के रूप में या दोनों के रूप में, तर भूमि 1.011715 हेक्टेयर (अढ़ाई एकड़) या शुष्क भूमि 2.023420 हेक्टेयर (पांच एकड़) से अधिक नहीं है और ऐसी भूमियों को छोड़कर उसकी मासिक आय एक हजार रुपए मासिक या बारह हजार रुपए वार्षिक से अधिक नहीं है । तथापि, ऐसे अभिधारियों को, जो शहरी क्षेत्र में दो सौ वर्ग गज से अधिक की आवासीय संपत्ति के स्वामी हैं, विन्यास की संपत्ति का क्रय करने के प्रयोजन के लिए भूमिहीन निर्धन के रूप में नहीं समझा जाएगा ।

स्पष्टीकरण 2 – इस उपधारा के प्रयोजन के लिए छोटे और सीमांत किसान से ऐसा व्यक्ति अभिप्रेत है जो पट्टेदार होने के कारण क्रमशः 2.50 एकड़ तर भूमि या 5.00 एकड़ शुष्क भूमि की अधिकतम सीमाओं से अधिक 0.25 सेंट तर भूमि या 0.50 सेंट शुष्क भूमि धारित कर रहा है, उन्हें वर्तमान बाजार लगान के दो तिहाई संदाय करने के अध्यधीन रहते हुए पट्टा जारी रखने के लिए अनुज्ञात

Provided that if such small and marginal farmers who are not able to purchase the land will continue as tenants provided, if they agree to pay at least two third of the market rent for similarly placed lands as lease amount.

Explanation – For the purpose of this sub-section 'landless poor person means a person whose total extent of land held by him either as owner or as cultivating tenant or as both does not exceed 1.011715 hectares (two and half acres) of wet land or 2.023430 hesctare (five acres) of dry land and whose monthly income other than from such lands does not exceed thousand rupees per mensum or twelve thousand rupees per annum. However, those of the tenants who own residential property exceeding two hundred square yards in Urban Area shall not be considered as landless poor for the purpose of purchase of endowments property.

Explanation II – For the purpose of this sub-section, small and marginal farmer means a person who being a leassee is holding lands in excess of acres 0.25 cents of wet land or acres 0.50 cents of dry land over and above the ceiling limits of acres 2.50 wet or acres 5.00 dry land respectively they may be allowed to continue in lease subject to payment of 2/3rd of prevailing market rent and excess land held if any more than

किया जा सकेगा और यदि उपरोक्त सीमाओं से ऊपर अधिक भूमि, यदि कोई हो, धारित करता है तो उसकी लोक नीलामी की जाएगी ।

(3) किसी पूर्त या धार्मिक संस्था या विन्यास से संबंधित या उसके प्रयोजन के लिए दिए गए या विन्यस्त की गई किसी संपत्ति की बाबत पट्टे या अनुज्ञप्ति को स्वीकृत करने के लिए प्राधिकारी, वह रीति जिसमें और अवधि जिसके लिए ऐसा पट्टा और अनुज्ञप्ति स्वीकृत किया जाएगा वह होगा, जो विहित की जाए ।

(4) इस अधिनियम के प्रारंभ की तारीख को अस्तित्वशील किसी पूर्त या धार्मिक संस्था या विन्यास से संबंधित या उसके प्रयोजन के लिए दिया गया या विन्यस्त किसी स्थावर संपत्ति, कृषि भूमि को छोड़कर, का प्रत्येक पट्टा या अनुज्ञप्ति ऐसे नियमों के अधीन प्रवृत्त बनी रहेगी जो उपधारा (3) के अधीन विहित किए जाएं।

(5) आंध्र प्रदेश (आंध्र एरिया) टेनैंसी ऐक्ट, 1956 (1956 का अधिनियम सं. 18) और आंध्र प्रदेश (तेलंगाना एरिया) टेनैंसी एंड एग्रीकल्चरल लैंड्स ऐक्ट, 1950 (1950 का अधिनियम सं. 21) के उपबंध इस अधिनियम में यथा परिभाषित किसी पूर्त या धार्मिक संस्था या विन्यास से संबंधित या उनके प्रयोजन के लिए दी गई या विन्यस्त भूमि के किसी पट्टे को लागू नहीं होंगे ।"

(बल देने के लिए हमारे द्वारा रेखांकित किया गया)

---

the above limits shall be put in public auction.

(3) The authority to sanction the lease or licence in respect of any property or any or interest thereon belonging to or given or endowed for the purpose of any charitable or religious institution or endowment, the manner in which and the period for which such lease or licence shall be such as may be prescribed.

(4) Every lease or licence of any immovable property, other than the Agricultural land belonging to, or given or endowed for the purpose of any charitable or religious institution or endowment subsisting on the date of the commencement of this Act, shall continue to be in force subject to the rules as may be prescribed under sub-section (3).

(5) The provisions of the Andhra Pradesh (Andhra Area) Tenancy Act, 1956 (Act XVIII of 1956) and the Andhra Pradesh (Telangana Area) Tenancy and Agricultural Lands Act, 1950 (Act XXI of 1950) shall not apply to any lease of land belonging to or given or endowed for the purpose of any charitable or religious institutions or endowment as defined in this Act.

(emphasis supplied)

प्रत्यर्थी सं. 1 श्री संगमेश्वर स्वामी वारू का पक्षकथन यह है कि प्रस्तुत अधिनियम के प्रारंभ होने की तारीख को अस्तित्वशील किसी संस्था या विन्यास से संबंधित या इनके प्रयोजन के लिए दिया गया या विन्यस्त किया गया कृषि भूमि का कोई पट्टा रद्द हो जाएगा । धारा 82 के आधार पर यह प्राख्यान किया गया कि अधिनियम, 1987 के प्रवृत्त होने पर अपीलार्थी में विद्यमान सभी अधिकार स्वतः समाप्त हो जाते हैं ।

13. प्रत्यर्थी संस्था की ओर से विद्वान् काउंसेल ने अपनी पूर्वोल्लिखित दलील का समर्थन करने के लिए **मुड्डाडा चयन्ना** बनाम **करनम नारायण**[1] वाले मामले के निम्नलिखित विनिश्चय का अवलंब लिया :–

"3. यह बात विवादग्रस्त नहीं है कि भूमि भौमिका गांव में है । यह बात भी विवादग्रस्त नहीं है कि भौमिका गांव एक इनाम संपदा है और इसे आंध्र प्रदेश (आंध्र एरिया) एस्टेट्स (अबोलिशन एंड कनवरजन इनटू रैयतवाड़ी) ऐक्ट के अधीन सरकार ने अभिगृहीत कर लिया था । अपीलार्थी का दावा है कि वह विवादग्रस्त भूमि का विधिपूर्ण रैयत है और प्रत्यर्थी उसके अभिधारी हैं । इसके विपरीत प्रत्यर्थियों का दावा है कि वे जोत के विधिपूर्ण रैयत हैं । अतः पक्षकारों में विवाद्य प्रश्न यह है कि जोत का विधिपूर्ण रैयत अपीलार्थी है या प्रत्यर्थी है । आंध्र प्रदेश (आंध्र एरिया) एस्टेट्स (अबोलिशन एंड कनवरजन इनटू रैयतवाड़ी) ऐक्ट की धारा 56(1)(ग) के अधीन "जहां किसी संपदा के अधिसूचित किए जाने के बाद इस बारे में कोई विवाद उठता है कि (क) क्या किसी फसली वर्ष के लिए किसी रैयत द्वारा देय कोई लगान बकाया है, अथवा (ख) कितना लगान बकाया है अथवा (ग) किसी जोत की बाबत विधिपूर्ण रैयत कौन है इसका विनिश्चय बंदोबस्त अधिकारी द्वारा किया जाएगा ।" धारा 56(2) में बंदोबस्त अधिकारी के विनिश्चय के विरुद्ध संपदा उत्सादन अधिकरण से अपील के लिए उपबंध किया गया है और इसमें आगे उपबंधित है कि अधिकरण का विनिश्चय अंतिम होगा और उसे किसी भी न्यायालय में प्रश्नगत नहीं किया जाएगा । अतः प्रत्यक्षतः यदि यह प्रश्न कि किसी जोत का विधिपूर्ण रैयत कौन है, संपदा के अधिसूचित किए जाने के बाद विनिश्चय के लिए उत्पन्न होता है तो इसका निपटारा आंध प्रदेश एस्टेट्स अबोलिशन ऐक्ट की धारा 56(1)(ग)

[1] [1980] 1 उम. नि. प. 1045 = ए. आई. आर. 1979 एस. सी. 1320.

और 56(2) के अधीन बंदोबस्त अधिकारी द्वारा और संपदा उत्सादन अधिकरण द्वारा किया जाएगा । आंध्र प्रदेश एस्टेट्स अबोलिशन ऐक्ट एक स्वयं पूर्ण संहिता है जिसमें किसी संपदा के अधिसूचित किए जाने के बाद उत्पन्न होने वाले विभिन्न प्रकार के विवाद्यों का न्यायनिर्णयन विशेष रूप से गठित अधिकरणों द्वारा किए जाने के लिए किया गया है । सामान्य सिद्धांतों के आधार पर अधिनियम द्वारा गठित विशेष अधिकरणों के बारे में आवश्यक रूप से यह अभिनिर्धारित करना होगा कि उन्हें कानून द्वारा उनके न्यायनिर्णयन के लिए सौंपे गए विवादों का विनिश्चय करने की अनन्य अधिकारिता है ।

* * * * *

5. हमारे वर्तमान प्रयोजन के लिए सुसंगत आंध्र प्रदेश (आंध्र एरिया) एस्टेट्स (अबोलिशन एंड कनवरजन इनटू रैयतवाड़ी) ऐक्ट के उपबंधों का संक्षिप्त विवरण यहां अनुज्ञेय है । जैसाकि उद्देशिका में कहा गया है, अधिनियम स्थायी बंदोबस्त को निरसित करने के लिए स्थायी रूप से निर्धारित और कुछ अन्य संपदाओं में भूमिधारकों के अधिकारों के अर्जन के लिए और ऐसी संपदाओं में रैयतवाड़ी बंदोबस्त प्रारंभ करने के लिए उपबंध करने के लिए अधिनियमित किया गया था । धारा 1(4) में संपदाओं की अधिसूचनाओं के लिए उपबंध किया गया है और धारा 3 में वे परिणाम गिनाए गए हैं जो अधिनियम की धारा 1(4) के अधीन संपदा को अधिसूचित करने पर होंगे । विशिष्टतया धारा 3(घ) में उपबंधित है कि संपदा सरकार को अंतरित हो जाएगी और सभी विल्लंगमों से मुक्त उसमें निहित हो जाएगी । धारा 3(ग) उपबंध करती है कि भूमिधारक द्वारा संपदा में या उसके बारे में श्रेष्ठ सभी अधिकार और हित समाप्त हो जाएंगे और सरकार के विरुद्ध अवधारित किए जाएंगे । धारा 3(घ) सरकार को संपदाओं का कब्जा लेने के लिए सशक्त करती है किंतु ऐसे किसी व्यक्ति को बेकब्जा होने से बचाती है जिसे सरकार प्रथमदृष्ट्या रैयतवाड़ी पट्टे के लिए हकदार समझती है जब तक कि यह प्रश्न कि क्या वह ऐसे पट्टे के लिए वास्तविक रूप से हकदार है या नहीं, किस रैयत के मामले में बंदोबस्त अधिकारी द्वारा अथवा भूमिधारक के मामले में बंदोबस्त अधिकारी और अपील करने पर अधिकरण द्वारा विनिश्चित न किया जाए । धारा 3(च) में उपबंधित है कि उनके बीच भूमिधारक और रैयत का संबंध निर्वापित हो जाएगा । धारा 3(छ) उपबंध करती है कि संपदा में रैयत सरकार के विरुद्ध केवल ऐसे अधिकारों और

विशेषाधिकारों के लिए हकदार होंगे जिन्हें अधिनियम द्वारा या उसके अधीन मान्यता दी जाए अथवा उन्हें प्रदत्त किए जाएं । धारा 11 संपदा में प्रत्येक रैयत को रैयत भूमि के बाबत जो अधिसूचित तारीख को उसकी जोत में शामिल की गई थी, या शामिल की जानी चाहिए थी, रैयतवाड़ी पट्टा अभिप्राप्त करने के अधिकार प्रदत्त करती है । धारा 12, 13 और 14 क्रमशः जमींदारी, इनाम और अभिधृति के अधीन संपदा में निजी भूमि की बाबत रैयतवाड़ी पट्टा अभिप्राप्त करने का अधिकार भूमिधारक को प्रदान करती है । धारा 15(1) धारा 12, 13 और 14 के अधीन रैयतवाड़ी पट्टे के लिए भूमिधारक द्वारा किए गए दावों के बारे में बंदोबस्त अधिकारी द्वारा जांच के लिए उपबंध करती है । धारा 15(2) में बंदोबस्त अधिकारी के विनिश्चय के विरुद्ध अधिकरण से अपील के लिए उपबंध किया गया है और इसमें घोषणा की गई है कि अधिकरण का विनिश्चय अंतिम होगा और उसे किसी न्यायालय में प्रश्नगत नहीं किया जाएगा । धारा 16 प्रत्येक व्यक्ति पर, चाहे वह भूमिधारक या कोई रैयत हो जो किसी भूमि के बाबत अधिनियम के अधीन रैयतवाड़ी पट्टे के लिए हकदार हो जाता है, सरकार को इतनी निर्धारित राशि देने का दायित्व अधिरोपित करती है जो कि उस भूमि पर विधिपूर्णतया अधिरोपित की जा सकती है । धारा 21 से 23 संपदाओं के सर्वेक्षण के लिए रैयतवाड़ी बंदोबस्त करने की रीति के लिए और भू-राजस्व के अवधारण के लिए उपबंध करती है । धारा 55 से 68 प्रकीर्ण शीर्ष के अधीन आती है । धारा 55 उस लगान संग्रहण के लिए उपबंध करती है जो अधिसूचित तारीख से पूर्व प्रोद्भूत हो गया था । धारा 56 संपदा के अधिसूचित किए जाने के बाद उत्पन्न कुछ विवादों के लिए उपबंध करती है । यह इस संबंध में किसी विवाद के विनिश्चय के लिए उपबंध करती है कि (क) क्या किसी फसली वर्ष के लिए किसी रैयत द्वारा देय कोई लगान बाकी है या (ख) कितना लगान बकाया है, अथवा (ग) किसी जोत की बाबत विधिपूर्ण रैयत कौन है । विवाद का विनिश्चय बंदोबस्त अधिकारी द्वारा किया जाना चाहिए । बंदोबस्त अधिकारी के विनिश्चय के विरुद्ध अधिकरण के समक्ष अपील के लिए उपबंध किया गया है और अधिकरण के विनिश्चय को अंतिम घोषित किया गया है और वह किसी भी न्यायालय में प्रश्नगत नहीं किया जा सकता ।

6. इस प्रकार मोटे तौर पर अधिनियम किसी संपदा में प्रत्येक अभिधारी को रैयत भूमि की बाबत अधिसूचित तारीख के पूर्व जो

उसकी जोत में शामिल की गई थी या की जानी चाहिए थी रैयत वाड़ी पट्टा प्राप्त करने का अधिकार प्रदान करता है और भूमिधारक को ऐसी भूमि की बाबत जो अधिसूचित तारीख से पूर्व उसकी निजी भूमि थी रैयतवाड़ी पट्टा अभिप्राप्त करने का अधिकार प्रदान करता है । यह अधिनियम अधिकथित निजी भूमि की बाबत रैयतवाड़ी पट्टे की मंजूरी के लिए भूमिधारकों द्वारा किए गए दावों के अवधारण के लिए अभिव्यक्त उपबंध करता है । जिस अधिनियम का उद्देश्य बिचौलियों को समाप्त करना और रैयतवाड़ी बंदोबस्त लागू करना हो उसमें यदि अपनी अभिकथित निजी भूमि की बाबत रैयतवाड़ी पट्टों की मंजूरी के लिए किसी भूमिधारक के दावों के अवधारण के लिए उपबंध है तो निश्चय ही रैयतवाड़ी पट्टे की मंजूरी के लिए रैयतों के दावों के लिए भी आवश्यक उपबंध किया जाना चाहिए । धारा 56(1) स्पष्टतया ऐसा उपबंध है । किंतु चेरुकुरू मुथय्या **बनाम** गड्डे गोपालकृष्णय्या और अन्य (ए. आई. आर. 1974 आंध्र प्रदेश 85) वाले मामले में यह अभिनिर्धारित किया गया था कि विधिपूर्ण रैयत कौन है, इसके बारे में जांच उस बकाया लगान का संदाय करने के दायित्व को पक्का करने के सीमित प्रयोजन के लिए जो अधिसूचित तारीख से पहले प्रोद्भूत हो गया था, अन्य किसी प्रयोजन के लिए नहीं, धारा 56(1)(ग) के अधीन अनुज्ञेय है । पूर्ण न्यायपीठ का विनिश्चय संपूर्णतया इस कल्पित संदर्भ पर आधारित था जिसमें यह उपबंध आया है । विद्वान् न्यायाधीशों ने अभिनिर्धारित किया था कि धारा 56(1)(ग) धारा 55 और धारा 56(1)(ग) और (ख) के बाद इतनी निकट स्थित है कि धारा 56(1)(ग) के लागू होने के बारे में यह अभिनिर्धारित करना होगा कि यह उन उपबंधों से घनिष्ठतापूर्वक और अभिन्न रूप से संबद्ध है । हमारा विचार है कि पूर्ण न्यायपीठ का दृष्टिकोण गलत था। इस तथ्य के अलावा कि धारा 55 और 56(1), (क), (ख) और (ग) प्रकीर्ण शीर्षक के अंतर्गत आई है और इसीलिए "संदर्भगत निर्वचन" बहुत उपयुक्त न हो, पूर्ण न्यायपीठ ने अपने विनिश्चय से उत्पन्न गंभीर विसंगति को अनदेखा कर दिया । विसंगति यह है कि जबकि रैयतवाड़ी पट्टों की मंजूरी के लिए भूमिधारकों द्वारा किए गए दावों के न्यायनिर्णयन के लिए अधिनियम की धारा 15 में अभिव्यक्त उपबंध मिलता है, यदि पूर्ण न्यायपीठ का विनिश्चय सही है तो, रैयतवाड़ी पट्टों की मंजूरी के लिए रैयतों द्वारा दावों के न्यायनिर्णयन के लिए कोई उपबंध नहीं है । यदि यह अभिनिर्धारित किया जाए कि अधिनियम में जो कि रैयतों को रैयतवाड़ी पट्टे प्रदान करके और मध्यकों को समाप्त करके सुधार लाने के लिए कटिबद्ध है, इस

महत्वपूर्ण प्रश्न के अवधारण के लिए कोई उपबंध नहीं है कि जोत का विधिपूर्ण रैयत कौन है तो यह वस्तुतः विसंगत और हास्यास्पद होगा तथा अधिनियम निरर्थक हो जाएगा । अधिनियम का उद्देश्य रैयतों को संरक्षण देना है, न कि उन्हें भटकने के लिए छोड़ देना । जब अधिनियम यह पता लगाने के लिए कि जोत का विधिपूर्ण रैयत कौन है धारा 56(1)(ग) में एक तंत्र का प्रबंध करता है तो यह न्यायालय का काम है कि वह "संदर्भगत निर्वचन" के आधार पर और धारा 55 और 56(1)(क) और (ख) की सीमाओं में उपबंध को सीमित करके अधिनियम के संपूर्ण अर्थ को उद्घाटित करे । कानून के निर्वचन से चाहे वह संदर्भ के अनुसार हो या अन्यथा, कानून के उद्देश्य में वृद्धि होनी चाहिए, न कि वह विफल होना चाहिए । अतः हमारा मत है कि चेरुकुरू मुथय्या **बनाम** गड्डे गोपालकृष्णय्या और अन्य (ए. आई. आर. 1974 आंध्र प्रदेश 85) विनिश्चय किया गया था जहां तक उसमें यह अभिनिर्धारित किया गया था कि धारा 56(1)(ग) का क्षेत्र धारा 55 और धारा 56(1)(क) और (ग) द्वारा नियंत्रित है । टी. मुनिस्वामी नायडु **बनाम** आर. वेंकटरेड्डी और अन्य (ए. आई. आर. 1978 आंध्र प्रदेश 200) वाले मामले में आंध्र प्रदेश उच्च न्यायालय के पांच न्यायाधीशों के एक पूर्ववर्ती पूर्ण न्यायपीठ द्वारा इस मामले पर विस्तार पूर्वक किए गए विचार को ध्यान में रखते हुए हम इस मामले पर आगे विस्तार में विचार करना आवश्यक नहीं समझते । केवल यह कहना चाहेंगे कि चेरुकुरू मुथय्या **बनाम** गड्डे गोपालकृष्णय्या और अन्य (ए. आई. आर. 1974 आंध्र प्रदेश 85) वाले मामले में तीन न्यायाधीशों के पूर्ण न्यायपीठ के तर्क को अपनाने से अधिकारिता का झगड़ा पैदा हो जाएगा और अधिनियम का क्रियान्वयन संकट में पड़ जाएगा ।

(हमारे द्वारा रेखांकित करके बल दिया गया है)

14. हमने विरोधी पक्षकारों की ओर से विद्वान् काउंसेलों द्वारा दी गई दलीलों पर गंभीरतापूर्वक विचार किया है । सर्वप्रथम यह अवधारित किए जाने की आवश्यकता है कि क्या अपीलार्थी और प्रत्यर्थी सं. 1 श्री संगमेश्वर स्वामी वारू के बीच कृषि भूमि का पट्टा विद्यमान है या नहीं । जब अधिनियम, 1987 प्रख्यापित किया गया था तब यदि अस्तित्वशील पट्टा था तो केवल तभी धारा 82 का अवलंब लिया जा सकता है । हमारा समाधान हो गया है कि आंध्र प्रदेश (आंध्र एरिया) एस्टेट्स (अबोलिशन एंड कनवरजन इनटू रैयतवाड़ी) अधिनियम, 1948 की धारा 3 के अधीन तारीख 17 जनवरी, 1959 को अधिसूचना जारी होने के परिणामस्वरूप संगम अग्राहरम गांव के राजस्व संपदा में की प्रश्नगत कृषि भूमि को सम्यक् रूप

से "इनाम संपदा" घोषित किया गया था । पूर्वोक्त "इनाम संपदा" में अपीलार्थी का अधिकार स्पष्ट रूप से तारीख 17 जनवरी, 1959 अर्थात् अधिसूचित तारीख से पूर्व अपीलार्थी के अभिधृति दावे के अवधारण पर निर्भर करता है । जहां तक प्रस्तुत विवाद्यक का संबंध है, 1974 का मूल वाद सं. 32 अपीलार्थी के पक्ष में डिक्रीत किया गया था और सम्यक् रूप से यह घोषित किया गया था कि अपीलार्थी का प्रश्नगत भूमि पर कब्जा था । यह भी अभिनिर्धारित किया गया था कि अधिसूचित तारीख 17 जनवरी, 1959 के बहुत पहले से प्रश्नगत भूमि अपीलार्थी और उसके पूर्वजों के लगातार कब्जे में थी । ऐसी स्थिति होने पर, अधिनियम, 1948 की धारा 11 के निबंधनों के अनुसार अपीलार्थी स्वतः "रैयतवाड़ी पट्टे" का हकदार बन गया था । हम ऐसा इसलिए कह रहे हैं क्योंकि यदि कृषि भूमि का कब्जा और अधिभोग जुलाई, 1945 के प्रथम दिन के बाद का है, केवल तभी राज्य सरकार प्रत्येक मामले की परिस्थितियों की परीक्षा करेगी और तदुपरांत, समुचित मामले में निदेश जारी करेगी कि ऐसी कृषि भूमि के अभिधारी को "रैयतवाड़ी पट्टे" का विस्तार किया जाना है । तथापि, 1974 के मूल वाद सं. 32 में स्पष्ट रूप से यह घोषणा की गई है कि प्रश्नगत कृषि भूमि अधिसूचित तारीख 17 जनवरी, 1959 के बहुत पहले से अपीलार्थी और उसके पूर्वजों की अभिधृति में थी, इसलिए अपीलार्थी प्रश्नगत भूमि की बाबत "रैयतवाड़ी पट्टे" का स्वतः हकदार था ।

15. यथा उपरोक्त निष्कर्ष पर पहुंचने के पश्चात् हमारा यह समाधान हो गया है कि अधिनियम, 1987 की धारा 82 प्रस्तुत संविवाद को लागू नहीं होती है, क्योंकि अपीलार्थी को अधिनियम, 1987 की प्रारंभ की तारीख अर्थात् 21 अप्रैल, 1987 को अस्तित्वशील किसी संस्था से संबंधित या दी गई या विन्यास के प्रयोजन के लिए विन्यस्त कृषि भूमि का पट्टा धारक नहीं समझा जा सकता है । उपरोक्त स्थिति संपदा अधिकारी, देवास्थानम् द्वारा फाइल किए गए 1974 के वाद सं. 73 की खारिजी से भी प्रकट होता है, जिसमें श्री संगमेश्वर स्वामी वारू की ओर से किया गया यह प्राख्यान नामंजूर कर दिया गया था कि तारीख 21 नवंबर, 1970 के अभिकथित कडापा (लगान-विलेख) के आधार पर अपीलार्थी के साथ भू-स्वामी और अभिधारी के संबंध विद्यमान हैं । उपर्युक्त निष्कर्ष ने स्वीकृत रूप से पक्षकारों के बीच अंतिमता प्राप्त कर ली है । उपरोक्त कारण से, **मुड्डाडा चयन्ना** (उपरोक्त) वाले मामले में के निर्णय का लिया गया अवलंब प्रत्यर्थी-कंपनी के लिए किसी उपयोग का नहीं है, क्योंकि उपरोक्त निर्णय में के पैरा 3 (ऊपर उद्धृत) में उल्लिखित निर्विवाद स्थिति यह थी कि अपीलार्थी विवादग्रस्त भूमियों का विधिपूर्ण रैयत था और प्रत्यर्थी उसके अभिधारी थे । इस मामले में अपीलार्थी

श्री संगमेश्वर स्वामी वारू का अभिधारी नहीं है ।

16. हमारे लिए यह अवेक्षा करना भी सुसंगत है कि तारीख 31 अक्तूबर, 1977 के निर्णय और डिक्री (1974 के मूल वाद सं. 32 और 73 में पारित), जिसमें यह अभिनिर्धारित किया गया था कि अपीलार्थी और श्री संगमेश्वर स्वामी वारू के बीच अभिधारी और भू-स्वामी के संबंध नहीं हैं, से प्रकट होने वाले आबद्धकारी दायित्व से बचने के लिए प्रत्यर्थी सं. 1 की ओर से विद्वान् काउंसेल ने जोरदार रूप से यह दलील दी कि मामले में सिविल न्यायालयों को अधिकारिता नहीं थी, इसलिए अपीलार्थी उपरोक्त निर्णय से कोई फायदा व्युत्पन्न नहीं कर सकता था । हमारे लिए विद्वान् काउंसेल द्वारा अवलंब लिए गए उपबंधों पर कोई विस्तारपूर्वक विचार करने की आवश्यकता नहीं है, क्योंकि प्रत्यर्थी सं. 1 की ओर से दी गई ऐसी स्पष्ट दलील की परीक्षा **तमिलनाडु राज्य** बनाम **रामलिंग सेमिगल मडम**[1] वाले मामले में की गई थी, जिसमें इस न्यायालय ने निम्नलिखित अभिनिर्धारित किया :–

> "12. अब हम इन अपीलों में हमारे अवधारणार्थ उठाए गए प्रश्नों पर आते हैं । यह सच है कि अधिनियम की धारा 64सी उन मामलों की बाबत सरकार या अन्य प्राधिकारियों द्वारा पारित आदेशों को अंतिमता प्रदान करती है जो कि अधिनियम के अधीन उनके द्वारा अवधारित किए जाने हैं और उसकी उपधारा (2) में यह उपबंध किया गया है कि ऐसे किन्हीं आदेशों को किसी विधि न्यायालय में प्रश्नगत नहीं किया जाएगा । इस रूप में भी स्वयं ऐसा कोई उपबंध नहीं है जो कि धूलाभाई वाले उपर्युक्त मामले में उद्धृत दो प्रतिपादनाओं को ध्यान में रखते हुए, जो कि सिविल न्यायालय की अधिकारिता को हटाने के मुद्दे पर विनिश्चय करने और अनेक अन्य पहलुओं जैसे अधिनियम की स्कीम और इसके द्वारा उपबंधित उपचारों की पर्याप्तता आदि पर विधान-मंडल के संक्षिप्त आशय को अभिप्राप्त करने के लिए विचार किया जाएगा । इसके अतिरिक्त, ऊपर उपदर्शित महत्वपूर्ण अंतर को ध्यान में रखते हुए जो कि एक ओर भूमिधारक को रैयतवाड़ी पट्टे के दिए जाने से संबद्ध उपबंधों और दूसरी ओर रैयत को रैयतवाड़ी पट्टा दिए जाने से संबद्ध भूमि की सही प्रकृति या स्वरूप के न्यायनिर्णयन के लिए सिविल न्यायालय की अधिकारिता को हटाने का विवाद्यक विनिश्चित किया जाता है । प्रश्न को इस दृष्टिकोण से देखते हुए, प्रथमतः यह दर्शित

[1] [1985] 4 उम. नि. प. 564 = (1985) 4 एस. सी. सी. 10.

होता है कि धारा 64सी में स्वयं यह उपबंध किया गया है कि प्राधिकारियों द्वारा अधिनियम के अधीन उनको अवधारित करने के बारे में मामले की बाबत पारित आदेशों को अंतिमता दी जानी है "जो कि इस अधिनियम के प्रयोजनों के लिए है" और न कि सामान्यतः और न ही किसी अन्य प्रयोजन के लिए जैसाकि पहले ही उल्लेख किया गया है, अधिनियम का मुख्य उद्देश्य और प्रयोजन जमींदारों, इनामदारों, जागीरदारों या अभिधृति के अधीन धारकों आदि जैसे मध्यवर्तियों की संपदाओं को समाप्त करना है और सभी ऐसी जोत को ऐसी संपदाओं में संपरिवर्तित करना है जिनके रैयतवाड़ी समझौते जिसको राजस्व भाषा में अन्य संक्रांत भूमि के संपरिवर्तन को अन्यसंक्रांत भूमियां अभिप्रेत हैं, अर्थात् मध्यवर्तियों को ऐसी भूमियों की बाबत सभी राजस्व को एकत्रित करने के उनके अधिकार से वंचित करना और उसे सरकार में वापस निहित करना है । इस प्रकार अधिनियमिति और इसके अनेक उपबंधों का आशय सरकार के राजस्व प्रयोजनों को हल करना है जिसके द्वारा सरकार को सभी भूमियों से राजस्व को एकत्रित करने के प्रभुतासंपन्न अधिकार को लौटाना है और सरकार द्वारा उसकी वसूली करना है और उस प्रक्रिया में यदि आवश्यक हो, भूमियों के धारकों के दावे को निपटाना भूमि की प्रकृति आदि को देखना है जो कि संक्षिप्त रीति में एक आनुषंगिक है और वह भी राजस्व अभिलेखों में उन व्यक्तियों की पहचान करना और उनको पंजीकृत करना भी है जिनसे राजस्व की ऐसी वसूली की जाती है । रैयतवाड़ी पट्टा दिए जाने का उद्देश्य भी उसके धारक को भूमि पर खेती के लिए समर्थ बनाना है जो कि सरकार के अधीन उसकी ऐसे निर्धारण या उपकर के संदाय द्वारा विनिर्दिष्ट है जो कि भूमि पर विधिपूर्ण रूप से अधिरोपित किया जा सके । धारा 16 इस बारे में सुस्पष्ट है जो कि पट्टाधारक द्वारा सरकार को भूमि पर अधिरोपित अन्य निर्धारण या ऐसी रैयतवाड़ी के संदाय के दायित्व को अधिरोपित करता है । "इस अधिनियम के प्रयोजनों के लिए" अभिव्यक्ति का धारा में जिस उद्देश्य से उल्लेख किया गया है जिसकी अपेक्षा नहीं की जा सकती किंतु उसको अकाट्य अर्थ दिया ही जाना चाहिए और धारा के साधारण पठन से, जो कि ऐसी अभिव्यक्ति को प्रयुक्त करती है, यह स्पष्ट है कि बंदोबस्त अधिकारी द्वारा अधिनियम की धारा 11 के अधीन रैयत को रैयतवाड़ी पट्टा दिए जाने या उससे इनकार करने के बारे में पारित किसी आदेश को इस रूप में पारित किया गया समझा जाना चाहिए कि वह अधिनियम के प्रयोजनों को प्राप्त करने के लिए पारित किया गया है अर्थात् राजस्व प्रयोजन अर्थात् उस पर निर्धारण या अन्य देयों के दायित्व को लगाना है और

सरकार द्वारा उससे ऐसे राजस्व की वसूली करना है और इसलिए उस अवसर पर भूमि की प्रकृति या स्वरूप की बाबत दिया गया विवक्षित कोई विनिश्चय पट्टा दिए जाने या पट्टा दिए जाने से इनकार करने के आदेश को पारित करने के मात्र प्रयोजन के लिए आनुषंगिक रूप में होगा न कि अन्य प्रयोजनों के लिए ।

(हमारे द्वारा रेखांकित करके बल दिया गया है)

इस न्यायालय द्वारा घोषित उपरोक्त विधि स्थिति के कारण यह स्वीकार करना संभव नहीं है कि तारीख 21 अक्तूबर, 1977 का निर्णय और डिक्री श्री संगमेश्वर स्वामी वारू पर आबद्धकर नहीं था ।

17. हमारे लिए यह स्वीकार करना भी संभव नहीं है कि अपीलार्थी द्वारा किया गया दावा परिसीमा द्वारा वर्जित नहीं है । पक्षकारों के बीच कभी भी यह विवादग्रस्त नहीं था कि अपीलार्थी भूमि पर काबिज था । प्रत्यर्थी सं. 1 का केवल यह दावा है कि अपीलार्थी उसके अभिधारी के रूप में भूमि पर काबिज था । परिसीमा के विवाद्यक पर हमारा यह अवधारण इस तथ्य से प्रकट होता है कि अपीलार्थी ने तब 2007 का निष्पादन आवेदन फाइल किया था जब प्रत्यर्थी सं. 1 ने तारीख 6 जुलाई, 2005 को प्रश्नगत कृषि भूमि के कब्जे में हस्तक्षेप करने की कोशिश की थी । जब 1974 को मूल वाद सं. 32 में डिक्री पारित की गई थी, उस तारीख के प्रतिनिर्देश करते हुए परिसीमा अवधारित करने का कोई औचित्य नहीं है । परिसीमा अवधारित करने की सुसंगत तारीख 6 जुलाई, 2005 थी, जब अभिकथित रूप से अपीलार्थी के कब्जे को आशंका हुई थी । उपरोक्त रूप से दृष्टिगत करते हुए, अपीलार्थी द्वारा किया गया दावा निश्चित रूप से परिसीमा द्वारा वर्जित नहीं है ।

18. यथा उपरोक्त निष्कर्ष निकालने के पश्चात् हमारा यह मत है कि यह अपील मंजूर किए जाने योग्य है और तद्नुसार यह अपील मंजूर की जाती है तथा उच्च न्यायालय द्वारा पारित किया गया आक्षेपित आदेश अपास्त किया जाता है ।

अपील मंजूर की गई ।

जस.

कर्मा दोरजी और अन्य

बनाम

भारत संघ और अन्य

14 दिसंबर, 2016

मुख्य न्यायमूर्ति टी. एस. ठाकुर, न्यायमूर्ति (डा.) डी. वाई. चंद्रचूड़ और न्यायमूर्ति नागेश्वर राव

संविधान, 1950 – अनुच्छेद 15(1) और 51क(ङ) [सपठित दंड संहिता, 1860 की धारा 153क, 153ख और 505(2)] – मूलवंशीय विभेद – जन्म-स्थान और निवास-स्थान के आधारों पर विभिन्न समूहों के बीच शत्रुता फैलाना – उत्तर-पूर्व राज्य के नागरिकों के विरुद्ध देश के विभिन्न भागों और महानगरों में मूलवंशीय छेड़छाड़ और उत्पीड़न की घटनाओं पर उच्चतम न्यायालय द्वारा गंभीरता से विचार किया गया और केंद्रीय सरकार तथा राज्य सरकारों को एम. पी. बेजबरुआ समिति की रिपोर्ट के क्रियान्वयन पर मार्ग-दर्शक सिद्धांत जारी किए गए ।

याचीगण अधिवक्ता हैं और उत्तर-पूर्व राज्यों के व्यक्तियों के विरुद्ध विभेद को रोकने के लिए मार्ग-दर्शक सिद्धांत अधिकथित करने हेतु लोक हित में संविधान के अनुच्छेद 32 के अधीन ये कार्यवाहियां आरंभ की गईं हैं । याची पंथनिरपेक्ष भारत के विरुद्ध नारे लगाते हैं जहां एक ओर उत्तर-पूर्व राज्यों के ऐसे छात्र जो रोजगार और शिक्षा की तलाश में देश के अन्य भागों में जाते हैं और देश के शेष भाग के संस्कृति और परंपरा सीखते हैं वहीं दूसरी ओर उनकी चिंताओं के प्रति परस्पर संवेदनशीलता और जागरूकता का अभाव है । उन लोगों ने उत्तर-पूर्व राज्यों में राष्ट्र के नागरिकों के विरुद्ध समाज में व्याप्त विभेद की ओर ध्यान आकृष्ट किया । तथ्यात्मक ब्यौरों के साथ अभिवाक् का समर्थन करने के लिए याचियों ने ऐसे दृष्टांतों का उल्लेख किया जो वर्ष 2009 से मुद्रण मीडिया में प्रतिवेदित थे । तारीख 26 अक्तूबर, 2009 को, यह अभिकथित है कि एक अकेली महिला को ऐसे शिकारी द्वारा उसके घर के रसोई घर में मारने के लिए जला दिया गया जिसके अप्रिय कार्यों को उसने झिड़क दिया था । 17 अप्रैल, 2012 को, मणिपुर के नवयुवक छात्र का छात्रावास में हमला किए जाने के पश्चात् मृत्यु हो जाने का अभिकथन है । अगस्त, 2012 को, सोशल मीडिया में विरोधी संदेश के प्रचार के परिणामस्वरूप कर्नाटक में रह

रहे व्यक्तियों के समुदाय में भगदड़ हो जाने का अभिकथन है । 19 मई, 2013 को, राष्ट्रीय राजधानी के किराए के अपार्टमेंट में एक नवयुवती मणिपुरी की हत्या किए जाने का अभिकथन है । 25 जून, 2014 को उत्तर-पूर्व की दो नवयुवतियों को मूलवंशीय ताने मारे गए और छेड़छाड़ किया गया तथा उसके ठीक पश्चात् 29 जनवरी, 2014 को एक नवयुवक छात्र पर मूलवंशीय उपहास किया गया तथा नई दिल्ली के लाजपत नगर क्षेत्र में हमला करके मार डाला गया । इन दृष्टांतों का उद्देश्य ऐसे विनिर्दिष्ट मामलों में (विधि घृणा अपराध के ऐसे दृष्टांतों पर विचार करने के लिए अपना कार्य कर रही है) न्यायालय के हस्तक्षेप की ईप्सा करने की दृष्टि से संकेत करना नहीं है बल्कि ऐसे मार्ग-दर्शक सिद्धांत जारी करने की आवश्यकता स्थापित करना है जो समस्या से निपटने के लिए व्यवस्थित दृष्टिकोण सृजित करेंगे । उच्चतम न्यायालय द्वारा केंद्रीय सरकार और राज्य सरकारों को मार्ग-दर्शक सिद्धांत जारी किया गया । उच्चतम न्यायालय द्वारा रिट याचिकाओं का निपटान करते हुए,

अभिनिर्धारित – संविधान का अनुच्छेद 15 धर्म, मूलवंश, जाति, लिंग या जन्म-स्थान के आधारों पर विभेद का प्रतिषेध करता है । सभी प्रकार के मूलवंशीय विभेद पर अंतरराष्ट्रीय कन्वेंशन को संयुक्त राष्ट्र महासभा द्वारा 21 दिसंबर, 1965 को स्वीकार किया गया । भारत ने 1968 में कन्वेंशन का अनुसमर्थन किया । कन्वेंशन 4 जनवरी, 1969 को प्रवृत्त हुआ । उत्तर-पूर्व राज्यों के नागरिकों से संबंधित मूलवंशीय विभेद की घटनाओं की मानीटरिंग में विधि प्रवर्तन विषयक मुद्दों सहित अन्य बातें सम्मिलित हैं । तथापि, विधि प्रवर्तन मशीनरी का सम्मिलन मात्र समस्या को सुलझाने के लिए पर्याप्त नहीं है । विश्वविद्यालयों, महाविद्यालयों और शैक्षिक संस्थानों तथा समाज के कार्यस्थलों सहित प्रत्येक स्थान पर दृष्टिकोण में परिवर्तन लाया जाए । संवेदनशीलता और समामेलन की भावना पैदा की जाए । इसे प्राप्त करने के लिए उत्तर-पूर्व के इतिहास और समृद्धिशाली सांस्कृतिक परंपराओं की सुदृढ़ जानकारी पैदा किया जाना अपेक्षित है । उत्तर-पूर्व के व्यक्तियों द्वारा झेली जा रही समस्याओं में दैनिक जीवन के भौतिक मुद्दों से लेकर शिक्षा, रोजगार, सामाजिक सुरक्षा और गरिमा के साथ जीवन जीने के मूल अधिकार जैसे विभिन्न प्रकृति के मुद्दे सम्मिलित हैं । केंद्रीय और राज्य दोनों सरकारें मूलवंशीय समानता के प्रति भारत की वचनबद्धता को प्रभावी बनाने के लिए सकारात्मक कदम उठाने के लिए परस्पर वार्तालाप नहीं कर रही हैं । यह वचनबद्धता संवैधानिक अधिकार, मूल कर्तव्य, कानूनी उपबंध और ऐसे अंतरराष्ट्रीय बाध्यताओं में समाविष्ट हैं जिन्हें भारत द्वारा

स्वीकार किया गया है । न्यायालय का यह मत है कि सुरक्षा और समामेलन की भावना बढ़ाने के लिए केंद्रीय सरकार के गृह मंत्रालय को उत्तर-पूर्व से निकले भारत के नागरिकों द्वारा झेली गई मूलवंशीय विभेद विषयक मुद्दों के प्रतितोष की मानीटरिंग के लिए सक्रिय कदम उठाना चाहिए । उस प्रयोजन के लिए निम्नलिखित सदस्यों से मिलकर बने समिति द्वारा मानीटरिंग और प्रतितोष की नियमित कार्यवाही की जानी चाहिए :–

1. संयुक्त सचिव (उत्तर-पूर्व), गृह मंत्रालय ; और

2. केंद्रीय सरकार द्वारा नामनिर्दिष्ट किए गए दो अन्य सदस्य (जिसमें से एक लोकप्रिय व्यक्ति हो)

समिति के कार्य का व्यापक प्रचार उत्तर-पूर्व राज्यों सहित इलेक्ट्रानिक और प्रिंट मीडिया में किया जाना चाहिए । समिति शिकायतों, सुझावों और परिवादों के लिए पहुंच योग्य होना चाहिए । समिति की बैठक सावधिकतः और अधिमानतः मासवार अंतरालों पर बेजबरुआ समिति की सिफारिशों को उस सीमा तक जहां तक उन्हें केंद्रीय सरकार द्वारा स्वीकार किया गया है, के क्रियान्वयन सहित, ऐसी सभी शिकायतों के प्रतितोष की मानीटरिंग के लिए बैठक की जानी चाहिए । समिति निम्नलिखित कृत्यों का पालन करेगी :–

(क) तारीख 11 जुलाई, 2014 की एम. पी. बेजबरुआ समिति की रिपोर्ट के क्रियान्वयन की मानीटरिंग, पर्यवेक्षण, निरीक्षण और पुनर्विलोकन किया जाना ;

(ख) मूलवंशीय विभेद/मूलवंशीय अत्याचार/मूलवंशीय हिंसा की घटनाओं को रोकने और उससे निपटने के लिए सरकार द्वारा किए गए पहल की मानीटरिंग करना ;

(ग) मूलवंशीय विभेद/मूलवंशीय अत्याचार/मूलवंशीय हिंसा की घटनाओं की बाबत कार्यवाही की मानीटरिंग करना, उपाय सुझाना और कठोर कार्रवाई सुनिश्चित करना ;

(घ) ऐसे व्यक्तियों और व्यक्तियों के समूहों से परिवाद प्राप्त करना, विचार करना और ग्रहण करना जो मूलवंशीय दुर्व्यवहार/मूलवंशीय अत्याचार/मूलवंशीय हिंसा/मूलवंशीय विभेद के शिकार होने का दावा करते हैं और यथास्थिति, जांच और आवश्यक कार्रवाई के लिए इसे राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग और/या राज्य मानव अधिकार आयोग और/या अधिकारितागत पुलिस स्टेशन अग्रसारित

करना ;

(ङ) राज्य सरकारों/संघ राज्यक्षेत्रों से मूलवंशीय विभेद/मूलवंशीय अत्याचार/मूलवंशीय हिंसा की घटनाओं पर रिपोर्ट मांगने सहित आवश्यक निदेश जारी करना

केंद्रीय सरकार द्वारा यह भी विनिश्चय किया जाए कि क्या किसी अन्य सिफारिश को स्वीकार किया जाना चाहिए । (पैरा 3, 8 और 9)

निर्दिष्ट निर्णय

		पैरा
[1997]	(1997) 6 एस. सी. सी. 241 : **विशाखा** बनाम **राजस्थान राज्य** ;	3
[1986]	(1986) 8 एस. सी. सी. 525 पैरा 18 से 21 : **सी. मसिलामणि मुदालियर** बनाम **श्री स्वामीनाथस्वामी थिरुक्वायल की मूर्ति** ।	3

आरंभिक (सिविल) अधिकारिता : 2014 की रिट याचिका सं. 103.

संविधान, 1950 के अनुच्छेद 32 के अधीन रिट याचिका ।

पक्षकारों की ओर से सर्वश्री मनिन्दर सिंह, अपर महासालिसिटर, अशोक अग्रवाल, महाधिवक्ता, सी. डी. सिंह, संचार आनंद, अपर महाधिवक्ता, सूर्यनारायण सिंह, ज्येष्ठ अपर महाधिवक्ता, यू. के. उन्नियाल, ज्येष्ठ अधिवक्ता, अरुनभ चौधरी, अनूपम लाल दास, (सुश्री) बर्नाली चौधरी, (सुश्री) श्रुति चौधरी, (सुश्री) सम्तेन दोमा वाचुंग्पा, दिनेश कुमार गर्ग, अभिषेक गर्ग, धनंजय गर्ग, दीपक मिश्रा, अशोक भारद्वाज, पी. के. दे, (सुश्री) गुनवंत दारा, डी. एस. मेहरा, (सुश्री) माधवी दीवान, (सुश्री) निधी खन्ना, नवीन शर्मा, सौरभ मिश्र, बी.

के. प्रसाद, डी. एल. चिदानंद, साक्षी कक्कर, (सुश्री) आवी पांडेय, संदीपन, एस. उदय कुमार सागर, बास्कुला अथिक, के. एल. जंजानी, पंकज कुमार सिंह, वर्षा राणा, (सुश्री) रुचि कोहली, डा. आशीष शर्मा, निशांत रामाकांत राव, सपम विश्वजीत मेहतेई, नरेश कुमार गौड़, (सुश्री) लिंथोइंगम्बी थोंगम, अशोक कुमार सिंह, (सुश्री) प्रगती नीखरा, कुलदीप सिंह, (सुश्री) अरुणा माथुर, युसूफ खान, अवनीश अर्पूथम, हैदिंग, (सुश्री) एनातोली सेमा, शुवदीप रॉय, सायोज मोहनदास, शिखर गर्ग, पी. वी. योगेश्वरन, जयेश गौरव, गोपाल प्रसाद, सी. के. ससी, (सुश्री) मीनु कृष्णन, वी. जी. प्रागसम, एस. प्रभू रामासुब्रमण्यन, के. वी. जगदीश्वरन, (श्रीमती) जी. इंदिरा, आर. बालासुब्रमण्यम, द्विपायन भौमिक, चांद कुरेशी, (सुश्री) जी. इंदिरा, गौतम शर्मा, गोपाल सिंह, रितुराज विश्वास, (सुश्री) वर्षा पोद्दार, पवन उपाध्याय, सर्वजीत प्रताप सिंह, (सुश्री) शर्मिला उपाध्याय, एडवर्ड बेल्हो, अमीत कुमार सिंह, के. लुइकांग माइकल, (श्रीमती) हेमंतिका वाही, (सुश्री) पूजा सिंह, (सुश्री) ममता सिंह, अनील के. चोपड़ा, बी. बालाजी, डी. महेश बाबू, परिजात सिन्हा, पी. वी. योगेश्वरन, राजीव नंदा, समीर अली खान, (श्रीमती) कीर्ति रेनू मिश्र, मैसर्स अर्पूथम अरुना एंड कंपनी, मैसर्स कार्पोरेट ला ग्रुप

न्यायालय का निर्णय न्यायमूर्ति (डा.) डी. वाई. चंद्रचूड़ ने दिया ।

न्या. (डा.) चंद्रचूड़ – याचीगण अधिवक्ता हैं और उत्तर-पूर्व राज्यों के व्यक्तियों के विरुद्ध विभेद को रोकने के लिए मार्ग-दर्शक सिद्धांत अधिकथित करने हेतु लोक हित में संविधान के अनुच्छेद 32 के अधीन ये कार्यवाहियां आरंभ की गई हैं । याची पंथनिरपेक्ष भारत के विरुद्ध नारे लगाते हैं जहां एक ओर उत्तर-पूर्व राज्यों के ऐसे छात्र जो रोजगार और शिक्षा की तलाश में देश के अन्य भागों में जाते हैं और देश के शेष भाग के संस्कृति और परंपरा सीखते हैं वहीं दूसरी ओर उनकी चिंताओं के प्रति परस्पर संवेदनशीलता और जागरूकता का अभाव है । उन लोगों ने उत्तर-पूर्व राज्यों में राष्ट्र के नागरिकों के विरुद्ध समाज में व्याप्त विभेद की ओर ध्यान आकृष्ट किया । विभेद के ऐसे कार्य अनुच्छेद 51क(ङ) के अधीन उस मूल कर्तव्य का अतिलंघन करते हैं, जो इस प्रकार है :–

> "भारत के सभी लोगों में समरसता और समान भ्रातृत्व की भावना का निर्माण करे जो धर्म, भाषा और प्रदेश या वर्ग पर आधारित सभी भेदभाव से परे हो, ऐसी प्रथाओं का त्याग करे जो स्त्रियों के सम्मान के विरुद्ध हैं ।"

तथ्यात्मक ब्यौरों के साथ अभिवाक् का समर्थन करने के लिए याचियों ने ऐसे दृष्टांतों का उल्लेख किया जो वर्ष 2009 से मुद्रण मीडिया में प्रतिवेदित थे । तारीख 26 अक्तूबर, 2009 को, यह अभिकथित है कि एक अकेली महिला को ऐसे शिकारी द्वारा उसके घर के रसोई घर में मारने के लिए जला दिया गया जिसके अप्रिय कार्यों को उसने झिड़क दिया था । 17 अप्रैल, 2012 को, मणिपुर के नवयुवक छात्र का छात्रावास में हमला किए जाने के पश्चात् मृत्यु हो जाने का अभिकथन है । अगस्त, 2012 को, सोशल मीडिया में विरोधी संदेश के प्रचार के परिणामस्वरूप कर्नाटक में रह रहे व्यक्तियों के समुदाय में भगदड़ हो जाने का अभिकथन है । 19 मई, 2013 को, राष्ट्रीय राजधानी के किराए के अपार्टमेंट में एक नवयुवती मणिपुरी की हत्या किए जाने का अभिकथन है । 25 जून, 2014 को उत्तर-पूर्व की दो नवयुवतियों को मूलवंशीय ताने मारे गए और छेड़छाड़ किया गया तथा उसके ठीक पश्चात् 29 जनवरी, 2014 को एक नवयुवक छात्र पर मूलवंशीय उपहास किया गया तथा नई दिल्ली के लाजपत नगर क्षेत्र में हमला करके मार डाला गया । इन दृष्टांतों का उद्देश्य ऐसे विनिर्दिष्ट मामलों में (विधि घृणा अपराध के ऐसे दृष्टांतों पर विचार करने के लिए अपना कार्य कर रही है) न्यायालय के हस्तक्षेप की ईप्सा करने की

दृष्टि से संकेत करना नहीं है बल्कि ऐसे मार्ग-दर्शक सिद्धांत जारी करने की आवश्यकता स्थापित करना है जो समस्या से निपटने के लिए व्यवस्थित दृष्टिकोण सृजित करेंगे ।

2. याची परमादेश के रूप में निम्नलिखित निदेश देने की मांग करते हुए अनुतोष की ईप्सा करते हैं :–

(i) केंद्रीय सरकार और राज्य मूलवंशीय अत्याचार से निपटने के लिए तंत्र विकसित करें ;

(ii) दिल्ली सरकार को यह निदेश दें कि विनिर्दिष्ट घटनाओं में किए गए अत्याचारों के अन्वेषण के लिए इस न्यायालय के भूतपूर्व न्यायाधीश की अध्यक्षता में एक विशेष अन्वेषण टीम गठित करें ;

(iii) केंद्रीय सरकार और राज्यों को यह निदेश दें कि मूलवंशीय असहनशीलता और विभेद के मामलों पर विचार करने के लिए एक उचित तंत्र विकसित करें ; और

(iv) सभी प्राधिकारियों को यह निदेश दें कि आम जनता और विधि प्रवृत्त करने वाली मशीनरी दोनों में जागरूकता पैदा करने और संवेदनशील बनाने के लिए कार्यक्रम आयोजित करें ।

3. संविधान का अनुच्छेद 15 धर्म, मूलवंश, जाति, लिंग या जन्मस्थान के आधारों पर विभेद का प्रतिषेध करता है । सभी प्रकार के मूलवंशीय विभेद पर अंतरराष्ट्रीय कन्वेंशन को संयुक्त राष्ट्र महासभा द्वारा 21 दिसंबर, 1965 को स्वीकार किया गया । भारत ने 1968 में कन्वेंशन का अनुसमर्थन किया । कन्वेंशन 4 जनवरी, 1969 को प्रवृत्त हुआ । कन्वेंशन का अनुच्छेद 2 राज्य पक्षकारों पर निम्नलिखित बाध्यता अधिरोपित करता है :–

"अनुच्छेद 2

1. राज्य पक्षकार मूलवंशीय विभेद की निन्दा करते हैं और सभी समुचित साधनों और विलंब किए बिना सभी मूलवंशों में समझ पैदा करने और मूलवंशीय विभेद को इसके सभी प्ररूपों में समाप्त करने की नीति अपनाने का वचन देते हैं और इस प्रयोजन के लिए –

(क) प्रत्येक राज्य पक्षकार, व्यक्तियों, व्यक्तियों या संस्थाओं के समूहों के विरुद्ध मूलवंशीय विभेद का कोई कार्य या व्यवहार में लिप्त न होने और यह सुनिश्चित करने का वचन देता है कि सभी राष्ट्रीय और स्थानीय लोक प्राधिकारी और

लोक संस्थाएं इस बाध्यता के अनुरूप कार्य करेंगे ;

(ख) प्रत्येक राज्य पक्षकार किसी व्यक्ति या संगठन द्वारा मूलवंशीय विभेद को प्रायोजित न करने, प्रतिरक्षा न करने या समर्थन न करने का वचन देता है ;

(ग) प्रत्येक राज्य पक्षकार सरकारी, राष्ट्रीय और स्थानीय नीतियों का पुनर्विलोकन करने के लिए तथा किसी विधि या विनियम जिनका प्रभाव मूलवंशीय विभेद जहां कहीं यह विद्यमान है, सृजित करना या शाश्वत बनाए रखना है, को संशोधित करने, विखंडित करने या अकृत करने का प्रभावी उपाय करेंगे ;

(घ) प्रत्येक राज्य पक्षकार किसी व्यक्ति, समूह या संगठन द्वारा जाति विभेद को सभी समुचित साधनों द्वारा जिसके अंतर्गत परिस्थितियों द्वारा यथा अपेक्षित विधान भी है, का प्रतिषेध करेंगे और समाप्त करेंगे ;

(ङ) प्रत्येक राज्य पक्षकार जहां उचित हो एकतावादी बहु-मूलवंशीय संगठनों और आंदोलनों तथा मूलवंशों के बीच अवरोधों को दूर करने के अन्य साधनों को प्रोत्साहित करेंगे और ऐसी किसी बात को हतोत्साहित करेंगे जो मूलवंशीय विभाजन को मजबूत करना चाहता है ।"

अनुच्छेद 5 के अधीन सभी राज्य पक्षकार सभी प्रकार के मूलवंशीय विभेद, विशेषकर निम्नलिखित अधिकारों (अन्य के साथ-साथ) के उपभोग में, का प्रतिषेध करने और समाप्त करने का वचन दिया है ;

(i) न्याय प्रशासन में समान व्यवहार ;

(ii) व्यक्ति की सुरक्षा का अधिकार ;

(iii) निर्वाचनों में भागीदारी सहित राजनैतिक अधिकार ;

(iv) सिविल अधिकार ;

(v) संचरण और निवास की स्वतंत्रता का अधिकार ;

(vi) विचार, अंतःकरण और धर्म तथा अपनी राय व्यक्त करने की स्वतंत्रता का अधिकार ;

(vii) आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक अधिकार ;

(viii) काम करने और रोजगार के विकल्प की स्वतंत्रता का अधिकार ; और

(ix) आवास, सार्वजनिक स्वास्थ्य, चिकित्सा देखभाल, सामाजिक सुरक्षा, शिक्षा, प्रशिक्षण तथा किसी सार्वजनिक स्थान तक पहुंच का अधिकार ।

भारत कन्वेंशन का हस्ताक्षरकर्ता होने के कारण विधि के अधीन अपनी बाध्यताएं प्रवृत्त करने के कर्तव्याधीन है । कन्वेंशन के उपबंध संविधान के अनुच्छेद 15 की संवैधानिक प्रत्याभूति की प्रकृति और परिधि का अर्थान्वयन करते समय महत्वपूर्ण हैं । मूल मानव अधिकारों का संरक्षण करने के लिए परिकल्पित अंतरराष्ट्रीय कन्वेंशन के अधीन भारत की बाध्यताओं को मूलवंशीय विभेद के विरुद्ध संवैधानिक प्रत्याभूति के रूप में पढ़ा जाना चाहिए । राष्ट्रों के अंतरराष्ट्रीय समुदाय में ऐसी सहमति, जिसमें भारत एक सशक्त भागीदार है, को हमारी निजी संवैधानिक प्रत्याभूति की अंतर्वस्तु से अनुप्राणित करना चाहिए । जैसाकि इस न्यायालय ने **विशाखा** बनाम **राजस्थान राज्य**[1] वाले मामले में अभिनिर्धारित किया :–

"..... अंतरराष्ट्रीय कन्वेंशनों और मानकों को ऐसे क्षेत्र में लागू अधिनियमित घरेलू विधि के अभाव में पढ़ा जाना चाहिए जहां उनके बीच कोई असंगति नहीं है । अब न्यायिक अर्थान्वयन का यह स्वीकृत नियम है कि घरेलू विधि का अर्थान्वयन करने के लिए अंतरराष्ट्रीय कन्वेंशनों और मानकों का सम्मान किया जाना चाहिए जब उनके बीच कोई असंगति नहीं हो और घरेलू विधि में रिक्तता हो ।" [पृष्ठ 251 पर]

[**सी. मसिलामणि मुदालियर** बनाम **श्री स्वामीनाथस्वामी थिरुक्वायल की मूर्ति**[2] वाला मामला भी देखें ।]

वस्तुतः भारत में घरेलू विधान के उपबंध ऐसी बाध्यताओं का पोषण और समर्थन करते हैं जिसे सीईआरडी के अधीन देश द्वारा स्वीकार किया गया है । मानव अधिकार संरक्षण अधिनियम, 1993 "अंतरराष्ट्रीय प्रसंविदा" पद को इस प्रकार परिभाषित करता है :–

"1[(च) 'अंतरराष्ट्रीय प्रसंविदा' से संयुक्त राष्ट्र की महासभा

---

[1] (1997) 6 एस. सी. सी. 241.

[2] (1986) 8 एस. सी. सी. 525.

द्वारा 16 दिसंबर, 1966 को अंगीकार की गई सिविल और राजनैतिक अधिकारों पर अंतरराष्ट्रीय प्रसंविदा और आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक अधिकारों पर अंतरराष्ट्रीय प्रसंविदा तथा संयुक्त राष्ट्र संघ की महासभा द्वारा अंगीकार की गई ऐसी अन्य प्रसंविदा या अभिसमय, जो केंद्रीय सरकार अधिसूचना द्वारा विनिर्दिष्ट करे, अभिप्रेत हैं ;]

केंद्रीय सरकार ने सीईआरडी को भारत में मानव अधिकारों के संरक्षण को अंतरराष्ट्रीय प्रसंविदा के लागू होने के रूप में विनिर्दिष्ट करते हुए, एक स्थायी आदेश तारीख 21 सितंबर, 2010 जारी किया है ।

4. देश के विभिन्न भागों, विशेषकर महानगरों में उत्तर-पूर्व राज्यों के रह रहे व्यक्तियों की चिंताओं से निपटने के लिए, केंद्रीय सरकार ने 5 फरवरी, 2014 को एक समिति गठित की । समिति की अध्यक्षता उत्तर-पूर्व परिषद के सदस्य श्री एम. पी. बेजबरुआ द्वारा की गई । विभिन्न पणधारियों से परामर्श करने के पश्चात्, समिति ने 11 जुलाई, 2014 को केंद्रीय गृह मंत्रालय को अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत की । समिति ने अपनी सिफारिशों को 3 प्रवर्गों में वर्गीकृत किया :–

(क) तत्काल उपाय जिसे छह मास से एक वर्ष के भीतर क्रियान्वित किए जाने की आवश्यकता है ;

(ख) ऐसे लघु अवधि उपाय जिन्हें एक वर्ष से डेढ़ वर्ष की अवधि के भीतर क्रियान्वित किए जाने की आवश्यकता है ; और

(ग) ऐसे दीर्घ अवधि उपाय जिसे डेढ़ वर्ष से दो वर्ष की अवधि के भीतर क्रियान्वित किए जाने की आवश्यकता है ।

केंद्रीय सरकार ने इन कार्यवाहियों में फाइल तारीख 15 अक्तूबर, 2015 के अपने प्रति-शपथपत्र में यह कहा कि तत्काल उपायों से संबंधित समिति द्वारा की गई सिफारिशों को स्वीकार किया गया है और सिफारिशों को क्रियान्वित करने के लिए कार्रवाई की गई है जिससे कि नई दिल्ली और देश के अन्य भागों में रह रहे उत्तर-पूर्व राज्यों के नागरिकों की चिंताओं से निपटा जा सके । तत्काल उपायों पर बेजबरुआ समिति की सिफारिशों में निम्नलिखित क्षेत्रों पर विचार किया गया :–

(i) नए कानूनी उपबंध या विद्यमान विधि के संशोधन सहित विधिक उपाय ;

(ii) विधिक सहायता के लिए सुविधाएं ;

(iii) विधि प्रवर्तन अभिकरणों को मजबूत बनाना ;

(iv) सक्रिय क्षेत्रीय कार्रवाई सहित विशेष पुलिस पहल ;

(v) खेल-कूद की एकजुटता शक्ति का उपयोग ;

(vi) उत्तर-पूर्व के बारे में लोगों को प्रशिक्षित करना ;

(vii) सूचना और प्रसारण मीडिया में उत्तर-पूर्व पर अधिक फोकस करना ;

(viii) प्रत्येक राज्य सरकार द्वारा नोडल अधिकारियों की नियुक्ति ; और

(ix) किरायों की समस्या सहित आवास संबंधी मुद्दे ।

समिति की रिपोर्ट द्वारा निम्न प्रकार से सिफारिशों के क्रियान्वयन का सुझाव दिया गया :–

"11.12 क्रियान्वयन

11.12.1 अतः, व्यवस्था में प्रभावी मानीटरिंग तंत्र बनाया जाए । हम सिफारिश करते हैं कि डीओएनईआर मंत्रालय, गृह मंत्रालय, आवास आयुक्त, दिल्ली पुलिस और उत्तर-पूर्व के लोगों की चिंताओं के संबंध में कार्य कर रहे सिविल सोसाइटी संगठनों के उपयुक्त प्रतिनिधियों के साथ गृह मंत्रालय के अधीन एक उच्चस्तरीय समिति गठित की जाए ।

11.12.2 समिति के पास क्रियान्वयन को सुनिश्चित करने की शक्तियां होनी चाहिए और शक्तियों और कृत्यों का स्पष्टतः अधिकथन किया जाना चाहिए । समिति को दी गई शक्तियों में जबाबदेही नियत करने की भी क्षमता होनी चाहिए और संबद्ध मंत्रालयों को विनिर्दिष्ट समय के भीतर समिति के विनिश्चयों पर कार्रवाई करनी चाहिए । समिति की बैठक तीन माह में कम से कम एक बार होनी चाहिए और की गई पहल के क्रियान्वयन का पुनर्विलोकन किया जाना चाहिए ।

11.12.3 गृह मंत्रालय में रखे जाने के लिए प्रस्तावित पुलिस के नोडल अधिकारी को समिति का संयोजक और सदस्य सचिव होना चाहिए ।

11.12.4 समिति द्वारा किए गए पुनर्विलोकन के परिणाम को उत्तर-पूर्व पुलिस के नेटवर्क पर अपलोड किया जाना चाहिए और बाद में हमारे द्वारा किए गए सिफारिश पर उत्तर-पूर्व नेटवर्क से लिंक किया जाना चाहिए ।"

बेजबरुआ समिति द्वारा प्रभावी मानीटरिंग तंत्र का सुझाव दिया गया है । तत्काल उपायों पर की गई सिफारिशों को केंद्रीय सरकार द्वारा एक बार स्वीकार किए जाने पर यह स्वयं सुपुर्द कर दिया जाए । बेजबरुआ समिति की रिपोर्ट को भी अपनी तरह की असंख्य दृष्टांतों की तरह अभिलेखागार में काफी समय से पड़ी रिपोर्टों की तरह आलमारियों में धूल में नहीं पड़ी रहने दिया जाए । केंद्रीय सरकार द्वारा स्वीकृत कथन एक ऐसा विवरण है जिसे उत्तर-पूर्व के भारतीय नागरिकों के प्रति विभेद को "बिल्कुल असहनीय" नीति कहा गया है । मानव अधिकारों के संरक्षक के रूप में न्यायालय यह सुनिश्चित करने में अधिकारिता के भीतर है कि इस आश्वासन को वास्तविक जामा पहनाया जाए ।

5. केंद्रीय गृह मंत्रालय ने न्यायालय के समक्ष अपने आरंभिक प्रत्युत्तर और 20 सितंबर, 2016 को फाइल किए गए अपने अतिरिक्त शपथपत्र दोनों में यह कहा कि नए उपबंध – धारा 153ग और धारा 509क के अंतःस्थापन द्वारा भारतीय दंड संहिता को संशोधित करने का प्रस्ताव विचाराधीन है । इन संशोधनों में मूलवंशीय विषयों के अपराधों पर विचार किया जाएगा । धारा 153क, 153ख और 505(2) जो पहले ही भारतीय दंड संहिता के भाग के रूप में विद्यमान हैं, इस प्रकार हैं :–

"**153क.** धर्म, मूलवंश, भाषा, जन्म-स्थान, निवास-स्थान, इत्यादि के आधारों पर विभिन्न समूहों के बीच शत्रुता का संप्रवर्तन और सौहार्द बने रहने पर प्रतिकूल प्रभाव डालने वाले कार्य करना – जो कोई –

(क) बोले गए या लिखे गए शब्दों द्वारा या संकेतों द्वारा या दृश्यरूपणों द्वारा या अन्यथा विभिन्न धार्मिक, मूलवंशीय या भाषायी या प्रादेशिक समूहों, जातियों या समुदायों के बीच असौहार्द अथवा शत्रुता, घृणा या वैमनस्य की भावनाएं, धर्म, मूलवंश, जन्म-स्थान, निवास-स्थान, भाषा, जाति या समुदाय के आधारों पर या अन्य किसी भी आधार पर संप्रवर्तित करेगा या संप्रवर्तित करने का प्रयत्न करेगा, अथवा

(ख) कोई ऐसा कार्य करेगा, जो विभिन्न धार्मिक, मूलवंशीय, भाषायी या प्रादेशिक समूहों या जातियों या समुदायों के बीच सौहार्द बने रहने पर प्रतिकूल प्रभाव डालने वाला है और जो लोकप्रशांति में विघ्न डालता है या जिससे उसमें विघ्न पड़ना संभाव्य हो,

(ग) कोई ऐसा अभ्यास, आंदोलन, कवायद या अन्य वैसा ही क्रियाकलाप इस आशय से संचालित करेगा कि ऐसे क्रियाकलाप में भाग लेने वाले व्यक्ति किसी धार्मिक, मूलवंशीय, भाषायी या प्रादेशिक समूह या जाति या समुदाय के विरुद्ध आपराधिक बल या हिंसा का प्रयोग करेंगे या प्रयोग करने के लिए प्रशिक्षित किए जाएंगे या यह संभाव्य जानते हुए संचालित करेगा कि ऐसे क्रियाकलाप में भाग लेने वाले व्यक्ति किसी धार्मिक, मूलवंशीय, भाषायी या प्रादेशिक समूह या जाति या समुदाय के विरुद्ध आपराधिक बल या हिंसा का प्रयोग करेंगे या प्रयोग करने के लिए प्रशिक्षित किए जाएंगे अथवा ऐसे क्रियाकलाप में इस आशय से भाग लेगा कि किसी धार्मिक, मूलवंशीय, भाषायी या प्रादेशिक समूह या जाति या समुदाय के विरुद्ध आपराधिक बल या हिंसा का प्रयोग करे या प्रयोग करने के लिए प्रशिक्षित किया जाए या यह संभाव्य जानते हुए भाग लेगा कि ऐसे क्रियाकलाप में भाग लेने वाले व्यक्ति किसी धार्मिक, मूलवंशीय, भाषायी या प्रादेशिक समूह या जाति या समुदाय के विरुद्ध आपराधिक बल या हिंसा का प्रयोग करेंगे या प्रयोग करने के लिए प्रशिक्षित किए जाएंगे और ऐसे क्रियाकलाप से ऐसी धार्मिक, मूलवंशीय, भाषायी या प्रादेशिक समूह या जाति या समुदाय के सदस्यों के बीच, चाहे किसी भी कारण से, भय या संत्रास या असुरक्षा की भावना उत्पन्न होती है या उत्पन्न होनी संभाव्य है ।

वह कारावास से, जिसकी अवधि तीन वर्ष तक की हो सकेगी, या जुर्माने से, या दोनो से दंडित किया जाएगा ।

(2) **पूजा के स्थान आदि में किया गया अपराध** – जो कोई उपधारा (1) में विनिर्दिष्ट अपराध किसी पूजा के स्थान में या किसी जमाव में, जो धार्मिक पूजा या धार्मिक कर्म करने में लगा हुआ हो, करेगा, वह कारावास से, जो पांच वर्ष तक का हो सकेगा, दंडित

किया जाएगा और जुर्माने से भी दंडनीय होगा ।

153ख. राष्ट्रीय अखंडता पर प्रतिकूल प्रभाव डालने वाले लांछन, प्राख्यान – (1) जो कोई बोले गए या लिखे गए शब्दों द्वारा या संकेतों द्वारा या दृश्यरूपणों द्वारा या अन्यथा, –

(क) ऐसा कोई लांछन लगाएगा या प्रकाशित करेगा कि किसी वर्ग के व्यक्ति इस कारण से कि वे किसी धार्मिक, मूलवंशीय, भाषायी या प्रादेशिक समूह या जाति या समुदाय के सदस्य हैं, विधि द्वारा स्थापित भारत के संविधान के प्रति सच्ची श्रद्धा और निष्ठा नहीं रख सकते या भारत की प्रभुता और अखंडता की मर्यादा नहीं बनाए रख सकते, अथवा

(ख) यह प्राख्यान करेगा, परामर्श देगा, सलाह देगा, प्रचार करेगा या प्रकाशित करेगा कि किसी वर्ग के व्यक्तियों को इस कारण कि वे किसी धार्मिक, मूलवंशीय, भाषायी या प्रादेशिक समूह या जाति या समुदाय के सदस्य हैं, भारत के नागरिक के रूप में उनके अधिकार न दिए जाएं या उन्हें उनसे वंचित किया जाए, अथवा

(ग) किसी वर्ग के व्यक्तियों की, बाध्यता के संबंध में इस कारण कि वे किसी धार्मिक, मूलवंशीय, भाषायी या प्रादेशिक समूह या जाति या समुदाय के सदस्य हैं, कोई प्राख्यान करेगा, परामर्श देगा, अभिवाक् करेगा या अपील करेगा अथवा प्रकाशित करेगा, और ऐसे प्राख्यान, परामर्श, अभिवाक् या अपील से ऐसे सदस्यों तथा अन्य व्यक्तियों के बीच असमंजस्य, अथवा शत्रुता या घृणा या वैमनस्य की भावनाएं उत्पन्न होती हैं या उत्पन्न होनी संभाव्य हैं,

वह कारावास से, जो तीन वर्ष तक का हो सकेगा, या जुर्माने से, अथवा दोनों से, दंडित किया जाएगा ।

(2) जो कोई उपधारा (1) में विनिर्दिष्ट कोई अपराध किसी उपासना स्थल में या धार्मिक उपासना अथवा धार्मिक कर्म करने में लगे हुए किसी जमाव में करेगा वह कारावास से, जो पांच वर्ष तक का हो सकेगा, दंडित किया जाएगा और जुर्माने से भी दंडनीय होगा ।

505. लोक रिष्टिकारक वक्तव्य (2) **विभिन्न वर्गों में शत्रुता, घृणा या वैमनस्य पैदा या सम्प्रवर्तित करने वाले कथन** – जो कोई जनश्रुति या सत्रासकारी समाचार अंतर्विष्ट करने वाले किसी कथन या रिपोर्ट को, इस आशय से कि, या जिससे यह संभाव्य हो कि विभिन्न धार्मिक, मूलवंशीय, भाषायी या प्रादेशिक समूहों या जातियों या समुदायों के बीच शत्रुता, घृणा या वैमनस्य की भावनाएं, धर्म, मूलवंश, जन्म-स्थान, निवास-स्थान, भाषा, जाति या समुदाय के आधारों पर या अन्य किसी भी आधार पर पैदा या संप्रवर्तित हो, रचेगा, प्रकाशित करेगा या परिचालित करेगा, वह कारावास से, जो तीन वर्ष तक का हो सकेगा, या जुर्माने से, या दोनों से, दंडित किया जाएगा ।"

क्योंकि विषय संविधान की सातवीं अनुसूची की समवर्ती सूची में आता है इसलिए विधि में कोई संशोधन लाने के पूर्व राज्य सरकारों से व्यापक परामर्श किया जाना चाहिए । क्या विधि में संशोधन किया जाए, यह केंद्रीय सरकार को स्थिति की गहन समीक्षा, समस्या की प्रकृति और विद्यमान उपबंधों के प्रभाव के आधार पर विनिश्चित करना है । विधान बनाने का परमादेश जारी नहीं किया जा सकता ।

6. बेजबरुआ समिति की सिफारिशों के क्रियान्वयन की मानीटरिंग केंद्रीय गृह मंत्रालय द्वारा की जा रही है और अंतिम पुनर्विलोकन बैठक 12 मई, 2016 को हुई । न्यायालय को इस तथ्य से अवगत कराया गया है कि केंद्रीय गृह मंत्रालय ने राज्य सरकारों को कई परामर्श जारी किए । इन परामर्शों में तारीख 10/14 मई, 2012, 3 जून, 2013, 5 फरवरी, 2014, 6 फरवरी, 2014, 12 अक्तूबर, 2015 और 23 मई, 2016 के परामर्श सम्मिलित हैं । ये परामर्श विभिन्न पहलुओं के बारे में हैं और इनका आशय उत्तर-पूर्व राज्यों के भारतीय नागरिकों द्वारा झेली जा रही विभेद और मूलवंशीय भेदभाव से निपटना है । परामर्शों में अन्य बातों के साथ-साथ दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 154 के अधीन प्रथम इत्तिला रिपोर्ट के अनिवार्य रजिस्ट्रीकरण के बारे में है जब सूचना से संज्ञेय और अनुसूचित और अनुसूचित जनजाति (अत्याचार निवारण) संशोधन अधिनियम, 2015 से संबंधित अपराध बनता हो ।

7. केंद्रीय सरकार ने अपने प्रति-शपथपत्र में भी ऐसे उपायों को उपदर्शित किया गया है जो उत्तर-पूर्व के व्यक्तियों में सुरक्षा की भावना पैदा करने के लिए दिल्ली पुलिस द्वारा उठाए जाने हैं । तारीख 17

अक्तूबर, 2016 को सुनवाई के दौरान इस न्यायालय का यह मत था कि गृह मंत्रालय आरंभ में विशेषकर दिल्ली पुलिस द्वारा उठाए जाने वाले कदमों की मानीटरिंग करे जिससे कि देश के अन्य भागों में उसी माडल को दोहराया जा सके । इन मताभिव्यक्तियों के अनुसरण में यह उल्लेख करते हुए केंद्रीय गृह मंत्रालय की ओर से 26 अक्तूबर, 2016 को एक अतिरिक्त शपथपत्र फाइल किया गया कि उत्तर-पूर्व के रहने वाले पुलिस अतिरिक्त आयुक्त की पंक्ति के किसी अधिकारी को उत्तर-पूर्व क्षेत्र से विशेष पुलिस यूनिट का प्रभारी अभिहित किया जाएगा । इसी प्रकार पुलिस संयुक्त आयुक्त/आई.जी.पी. की पंक्ति के अधिकारी को उत्तर-पूर्व राज्यों से संबंधित मुद्दों से निपटने के लिए नोडल अधिकारी नियुक्त किया जाना है । पृथक् जिला पुलिस अतिरिक्त आयुक्त और डी.सी.पी. को उनके जिलों में रह रहे उत्तर-पूर्व के नागरिकों से नियमित संपर्क करने के लिए नोडल अधिकारी नियुक्त किया जाना है । पुलिस बल को संवेदनशील बनाने के लिए उपाए किए गए हैं और उत्तर-पूर्व राज्यों के नागरिकों की नियुक्ति के लिए विशेष भर्ती अभियान चलाए गए हैं । तथापि, दिल्ली के लिए विशेष आयुक्त की पंक्ति का पुलिस अधिकारी उत्तर-पूर्व क्षेत्र के लोगों द्वारा भेजी जा रही समस्याओं के विषय में दिल्ली पुलिस के कार्यकरण का पर्यवेक्षण करेगा । विशेष हेल्पलाइन (1093) 14 फरवरी, 2014 आरंभ किया गया है । फेसबुक पेज – "उत्तर-पूर्व लोगों के लिए दिल्ली पुलिस" 9 मई, 2014 को आरंभ किया गया और 15 अक्तूबर, 2016 तक डेढ़ करोड़ से अधिक लोगों ने इसे देखा । फरवरी, 2014 को, अपराधों के आंकड़ों को उद्घाटित किया गया है । छात्रों और स्वयं सेवकों से प्रतिनिधि नियुक्त किए गए हैं । गृह मंत्रालय द्वारा ऐसे तंत्र की मानीटरिंग की जाएगी और प्राप्त अनुभवों के आधार पर, इसे अन्य महानगरों में दोहराया जाएगा ।

8. उत्तर-पूर्व राज्यों के नागरिकों से संबंधित मूलवंशीय विभेद की घटनाओं की मानीटरिंग में विधि प्रर्वतन विषयक मुद्दों सहित अन्य बातें सम्मिलित हैं । तथापि, विधि प्रर्वतन मशीनरी का सम्मिलन मात्र समस्या को सुलझाने के लिए पर्याप्त नहीं है । विश्वविद्यालयों, महाविद्यालयों और शैक्षिक संस्थानों तथा समाज के कार्यस्थलों सहित प्रत्येक स्थान पर दृष्टिकोण में परिवर्तन लाया जाए । संवेदनशीलता और समामेलन की भावना पैदा की जाए । इसे प्राप्त करने के लिए उत्तर-पूर्व के इतिहास और

समृद्धिशाली सांस्कृतिक परंपराओं की सुदृढ़ जानकारी पैदा किया जाना अपेक्षित है । उत्तर-पूर्व के व्यक्तियों द्वारा झेली जा रही समस्याओं में दैनिक जीवन के भौतिक मुद्दों से लेकर शिक्षा, रोजगार, सामाजिक सुरक्षा और गरिमा के साथ जीवन जीने के मूल अधिकार जैसे विभिन्न प्रकृति के मुद्दे सम्मिलित हैं । केंद्रीय और राज्य दोनों सरकारें मूलवंशीय समानता के प्रति भारत की वचनबद्धता को प्रभावी बनाने के लिए सकारात्मक कदम उठाने के लिए परस्पर वार्तालाप नहीं कर रही हैं । यह वचनबद्धता संवैधानिक अधिकार, मूल कर्तव्य, कानूनी उपबंध और ऐसे अंतरराष्ट्रीय बाध्यताओं में समाविष्ट हैं जिन्हें भारत द्वारा स्वीकार किया गया है ।

9. हमारा यह मत है कि सुरक्षा और समामेलन की भावना बढ़ाने के लिए केंद्रीय सरकार के गृह मंत्रालय को उत्तर-पूर्व से निकले भारत के नागरिकों द्वारा झेली गई मूलवंशीय विभेद विषयक मुद्दों के प्रतितोष की मानीटरिंग के लिए सक्रिय कदम उठाना चाहिए । उस प्रयोजन के लिए निम्नलिखित सदस्यों से मिलकर बने समिति द्वारा मानीटरिंग और प्रतितोष की नियमित कार्यवाही की जानी चाहिए :–

1. संयुक्त सचिव (उत्तर-पूर्व), गृह मंत्रालय ; और

2. केंद्रीय सरकार द्वारा नामनिर्दिष्ट किए गए दो अन्य सदस्य (जिसमें से एक लोकप्रिय व्यक्ति हो)

समिति के कार्य का व्यापक प्रचार उत्तर-पूर्व राज्यों सहित इलैक्ट्रोनिक और प्रिंट मीडिया में किया जाना चाहिए । समिति शिकायतों, सुझावों और परिवादों के लिए पहुंच योग्य होना चाहिए । समिति की बैठक सावधिकतः और अधिमानतः मासवार अंतरालों पर बेजबरुआ समिति की सिफारिशों को उस सीमा तक जहां तक उन्हें केंद्रीय सरकार द्वारा स्वीकार किया गया है, के क्रियान्वयन सहित, ऐसी सभी शिकायतों के प्रतितोष की मानीटरिंग के लिए बैठक की जानी चाहिए । समिति निम्नलिखित कृत्यों का पालन करेगी :–

(क) तारीख 11 जुलाई, 2014 की एम. पी. बेजबरुआ समिति की रिपोर्ट के क्रियान्वयन की मानीटरिंग, पर्यवेक्षण, निरीक्षण और पुनर्विलोकन किया जाना ;

(ख) मूलवंशीय विभेद/मूलवंशीय अत्याचार/मूलवंशीय हिंसा की

घटनाओं को रोकने और उससे निपटने के लिए सरकार द्वारा किए गए पहल की मानीटरिंग करना ;

(ग) मूलवंशीय विभेद/मूलवंशीय अत्याचार/मूलवंशीय हिंसा की घटनाओं की बाबत कार्यवाही की मानीटरिंग करना, उपाय सुझाना और कठोर कार्रवाई सुनिश्चित करना ;

(घ) ऐसे व्यक्तियों और व्यक्तियों के समूहों से परिवाद प्राप्त करना, विचार करना और ग्रहण करना जो मूलवंशीय दुर्व्यवहार/मूलवंशीय अत्याचार/मूलवंशीय हिंसा/मूलवंशीय विभेद के शिकार होने का दावा करते हैं और यथास्थिति, जांच और आवश्यक कार्रवाई के लिए इसे राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग और/या राज्य मानव अधिकार आयोग और/या अधिकारितागत पुलिस स्टेशन अग्रसारित करना ;

(ङ) राज्य सरकारों/संघ राज्यक्षेत्रों से मूलवंशीय विभेद/मूलवंशीय अत्याचार/मूलवंशीय हिंसा की घटनाओं पर रिपोर्ट मांगने सहित आवश्यक निदेश जारी करना

केंद्रीय सरकार द्वारा यह भी विनिश्चय किया जाए कि क्या किसी अन्य सिफारिश को स्वीकार किया जाना चाहिए ।

10. रिट याचिकाओं का तद्नुसार निपटान किया जाता है ।

रिट याचिकाओं का निपटान किया गया ।

पां.

राष्ट्रीय दलित मानव अधिकार अभियान और अन्य

बनाम

भारत संघ और अन्य

15 दिसंबर, 2016

मुख्य न्यायमूर्ति टी. एस. ठाकुर, न्यायमूर्ति (डा.) डी. वाई चंद्रचूड़ और न्यायमूर्ति एल. नागेश्वर राव

संविधान, 1950 – अनुच्छेद 15, 17, 46, 338 और 338क [सपठित अस्पृश्यता (अपराध) अधिनियम, 1955 की धारा 3 से 7 और अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति (अत्याचार निवारण) अधिनियम, 1989 की धारा 14 तथा अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति (अत्याचार निवारण) नियम, 1955 का नियम 3, 8, 9, 10, 15(1), 16 और 17] – अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति के अधिकारों का प्रवर्तन – केंद्रीय सरकार और राज्य सरकारों का यह दायित्व है कि वह उपरोक्त अधिनियम के प्रभावी क्रियान्वयन के लिए समुचित उपाय करें और अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति के सभी सदस्यों को समता के संवैधानिक अधिकार का संरक्षण प्रदान करें, अतः केंद्रीय सरकार, राज्य सरकारों तथा राष्ट्रीय आयोगों को अधिनियम के उपबंधों का कठोर अनुपालन सुनिश्चित करने तथा अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति को संरक्षित करने के अपने कर्तव्यों का निर्वहन करने का निदेश दिया जाता है ।

याची जो स्वैच्छिक संगठन हैं, अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति के सदस्यों के उद्धार के लिए सतत संघर्षरत हैं । याचियों ने अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति (अत्याचार निवारण) अधिनियम, 1989 (जिसे इसमें इसके पश्चात् "अधिनियम" कहा गया है) और इसके अधीन बनाए गए नियमों के अक्रियान्वयन द्वारा व्यथित होकर निम्नलिखित अनुतोषों की मांग करते हुए यह रिट याचिका फाइल की । उच्चतम न्यायालय द्वारा रिट याचिका का निपटान करते हुए,

अभिनिर्धारित – अनुच्छेद 17 को इसके सही भाषा और भाव में प्रभावी बनाने के लिए संसद् ने अस्पृश्यता (अपराध) अधिनियम, 1955 का अधिनियमन किया । उक्त अधिनियम की धारा 3 से 7 अस्पृश्यता के आधार पर धार्मिक, सामाजिक या किसी अन्य तरह की निर्योग्यताओं को

प्रवृत्त करने के लिए दंड विहित करते हैं । उक्त अधिनियम की खामियों और कमियों के बारे में समाज के विभिन्न क्षेत्रों से कई शिकायतें प्राप्त कीं । उक्त अधिनियम में कई संशोधन किए गए जिसे "सिविल अधिकार संरक्षण अधिनियम, 1955" के रूप में पुनः नामित किया गया । मुख्य मरम्मत के बावजूद, यह ध्यान में आया है कि सिविल अधिकार संरक्षण अधिनियम, 1955 और भारतीय दंड संहिता, 1860 अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों पर किए गए अत्याचारों को रोकने के लिए अपर्याप्त हैं । यह तथ्य कि अनुसूचित जातियां और अनुसूचित जनजातियां उनके सामाजिक आर्थिक दशा को सुधारने के लिए कई उपायों को लागू करने के बावजूद एक संवेदनशील समूह बना हुआ है जो संसद् के लिए एक गहरी चिंता का विषय है । संसद् ने यह स्वीकार किया कि अनुसूचित जातियां और अनुसूचित जनजातियां शाश्वतः विभिन्न अपराधों, अपमानों, अनादरों और प्रताड़नाओं के अधीन थे । अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों को उनके प्राण और संपत्ति से वंचित करने वाले क्रूरता और अत्याचार की अनेक घटनाएं संसद् के लिए चिंता का कारण थीं । इस तथ्य पर विचार करते हुए कि अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के विरुद्ध अत्याचार होने की विक्षुब्धकारी प्रवृत्ति में वृद्धि हो रही है, संसद् ने अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति (अत्याचार निवारण) अधिनियम, 1989 का अधिनियमन किया । अधिनियम ऐसे अत्याचारों के कई कार्यों या लोपों को शामिल कर आपराधिक दायित्व की व्याप्ति की वृद्धि करता है जो भारतीय दंड संहिता या सिविल अधिकार संरक्षण अधिनियम, 1955 के अधीन नहीं आते थे । अधिनियम सामाजिक निर्योग्यता, संपत्ति का दूर्भावपूर्ण अभियोजन, राजनैतिक अधिकारों और आर्थिक शोषण को प्रभावित करने वाले विभिन्न अत्याचारों के लिए अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के लिए संरक्षण का भी उपबंध करता है । अधिनियम अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के विरुद्ध अपराधों के किए जाने के लिए दंड की वृद्धि का भी उपबंध करता है । लोकसेवक द्वारा किए गए कार्यों की उपेक्षा के लिए न्यूनतम दंड में भी वृद्धि की गई है । अत्याचारों के पीड़ितों और उनके विधिक वारिसों को न्यूनतम राहत और प्रतिकर देने के लिए भी उपबंध किए गए हैं । अधिनियम के अन्य महत्वपूर्ण लक्षणों में अनुसूचित क्षेत्रों और जनजातीय क्षेत्रों से संभाव्य अपराधियों का वहिष्करण तथा अभियुक्त की संपत्तियों की कुर्की का शामिल किया जाना है । अधिनियम अभियुक्त को अग्रिम जमानत देने का प्रतिषेध करता है और अपराधी परिवीक्षा अधिनियम, 1958 को

अधिनियम पर लागू न होने योग्य बनाया गया है । अधिनियम में उपबंधित कतिपय निवारण उपायों में संभाव्य अपराधियों के आयुध अनुज्ञप्तियों का रद्दकरण और आत्मरक्षा के उपाय के रूप में अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों को आयुध अनुज्ञप्तियों का मंजूर किया जाना भी शामिल है । न्यायालय ने अनुसूचित जातियों के विरुद्ध अत्याचार पर राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग की रिपोर्ट न्यायमूर्ति के. पुन्नैया आयोग की रिपोर्ट राष्ट्रीय अनुसूचित जाति आयोग की छठी रिपोर्ट और याची सं. 1 द्वारा प्रकाशित "क्रियान्वयन की प्रास्थिति और अत्याचार निवारण में संशोधन की आवश्यकता" शीर्षक पत्र की परीक्षा की । याचियों द्वारा यह दलील दी गई कि अधिनियम का क्रियान्वयन पूर्णतः अप्रभावी रहा है और यह कि दलित अब भी अधिनियम के विभिन्न उपबंधों के अननुपालन के कारण अत्याचारों से ग्रस्त हैं । राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग अपनी रिपोर्ट में यह मत व्यक्त किया कि "जघन्य अपराधों की बाबत भी कई राज्यों में पुलिस तंत्र जानबूझकर अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति (अत्याचार निवारण) अधिनियम, 1989 से बच रही है ।" रिपोर्ट में आगे मामलों के गैर-रजिस्ट्रीकरण और अधिनियम के अधीन मामलों को दर्ज करने से दलितों को हतोत्साहित करने हेतु पुलिस द्वारा अपनाए गए विभिन्न अन्य साजिशों को उजागर किया गया है । याचियों ने भी अधिनियम के सीमित उपबंधों के अधीन मामलों के गैर-रजिस्ट्रीकरण की लगातार समस्या, आरोप पत्र फाइल करने में विलंब, अभियुक्त का गिरफ्तार न किया जाना, गंभीर जोखिमग्रस्त अपराधियों को जमानत पर छोड़ा जाना और दलित अपराधियों के विरुद्ध मिथ्या और प्रति मामलों के फाइल किए जाने को भी उजागर किया है । याचियों ने पीड़ितों और उनके विधिक वारिसों को प्रतिकर के असंदाय की भी शिकायत की । याची ने यह दर्शित करने के लिए राष्ट्रीय आयोग की छठी रिपोर्ट के निष्कर्षों का भी अवलंब लिया कि अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों की विधिक सहायता तक कोई पहुंच नहीं है । विभिन्न स्तरों पर अधिनियम द्वारा अनुध्यात विभिन्न समितियां सक्रिय नहीं हैं । याचियों ने यह निवेदन किया कि अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति (अत्याचार निवारण) नियम, 1995 के नियम 3, 8, 9, 10, 15(1), 16 और 17 का संबद्ध प्राधिकारियों द्वारा कठोरता से पालन किया जाना चाहिए । अत्याचार संभावित क्षेत्रों की पहचान और लिए जाने वाले उपायों का उल्लेख नियम 3 में उपबंधित है । नियम 8 चिह्नित क्षेत्रों के सर्वेक्षण करने के लिए विशेष सेल गठित करने, चिह्नित क्षेत्रों की विधि और व्यवस्था पर नोडल अधिकारियों और विशेष अधिकारियों को सूचित

करने, अन्वेषण और तत्काल निरीक्षण के बारे में जांच करने, विभिन्न प्राधिकारियों की जानबूझकर उपेक्षा और रजिस्ट्रीकृत मामलों की स्थिति का पुनर्विलोकन करने को निर्दिष्ट करता है । नियम 9 और 10 नोडल अधिकारियों और विशेष अधिकारियों की नियुक्ति के संबंध में है । अधिनियम के उपबंधों के क्रियान्वयन के लिए आकस्मिकता योजना का उल्लेख नियम 15(1) में है । राज्य और जिला स्तर पर अधिनियम के उपबंधों के क्रियान्वयन का पुनर्विलोकन करने के लिए सतर्कता और मानीटरिंग समितियों के गठन का उल्लेख नियम 16 और 17 के अधीन किया गया है । अधिनियम की धारा 14 के अनुसार, अभिहित विशेष न्यायालयों और अनन्य विशेष न्यायालयों की स्थापना अधिनियम के अधीन अपराधों के शीघ्र विचारण के लिए किया जाना है । अधिनियम, 1989 में बनाया गया क्योंकि संसद् को यह पता चला कि सिविल अधिकार संरक्षण अधिनियम, 1955 के उपबंध अपर्याप्त थे और दलितों के विरुद्ध अत्याचारों के बुरे आचरण को रोका नहीं गया था । याचियों की शिकायत है कि यद्यपि अधिनियम सामाजिक बुराई से निपटने के लिए सम्यकतः पर्याप्त है किंतु इसका क्रियान्वयन पूर्णतः अप्रभावी रहा है । मामलों की लगातार बढ़ती संख्या यह भी दर्शाती है कि अधिनियम और नियमों के उपबंधों का पालन करने में प्राधिकारियों की ओर से पूर्ण असफलता बरती गई है । राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग रिपोर्ट और अन्य रिपोर्टों का अवलंब लेते हुए याचियों ने अधिनियम और नियमों के प्रभावी क्रियान्वयन के लिए इस न्यायालय से परमादेश की ईप्सा की है । न्यायालय ने अभिलेख की सामग्री की सावधानीपूर्वक परीक्षा की और न्यायालय की यह राय है कि अधिनियम और नियमों के उपबंधों का पालन करने में संबद्ध प्राधिकारी असफल रहे हैं । ऐसा प्रसंशनीय उद्देश्य जिसके लिए अधिनियम बनाया गया था, प्राधिकारियों के उदासीन बर्ताव द्वारा विफल हो गया है । यह सही है कि भारत संघ के काउंसेल की दलील के अनुसार अधिनियम के उपबंधों के क्रियान्वयन के लिए राज्य सरकार उत्तरदायी हैं । वहीं, केंद्रीय सरकार अधिनियम के उपबंधों का पालन सुनिश्चित करने में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है । अधिनियम की धारा 21(4) के अनुसार संसद् के समक्ष प्रत्येक वर्ष अधिनियम के प्रभावी क्रियान्वयन के लिए केंद्रीय सरकार और राज्य सरकारों द्वारा लिए गए उपायों की रिपोर्ट प्रस्तुत करने की अपेक्षा है । इस देश के सभी नागरिकों के लिए समानता के संवैधानिक लक्ष्य को तभी प्राप्त किया जा सकता है जब अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के अधिकारों का संरक्षण किया जाए । अभिलेख की पर्याप्त सामग्री से यह

साबित होता है कि संबद्ध प्राधिकारी अधिनियम के उपबंधों को प्रवृत्त न करने के दोषी हैं । अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के सदस्यों की पीड़ा लगातार बनी हुई है । न्यायालय का यह समाधान हो गया है कि केंद्रीय सरकार और राज्य सरकारों को अधिनियम के उपबंधों का कठोरता से पालन करने के लिए निदेश दिया जाना चाहिए और न्यायालय ऐसा करता है । राष्ट्रीय आयोगों को भी अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के संरक्षण के लिए अपने कर्तव्यों के निर्वहन का निदेश दिया जाता है । राष्ट्रीय विधिक सेवा प्राधिकरण से जानकारी फैलाने के लिए समुचित स्कीम बनाने तथा अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के सदस्यों को निःशुल्क विधिक सहायता उपलब्ध कराने का अनुरोध किया जाता है । (पैरा 7, 8, 9, 10, 11 और 12)

निर्दिष्ट निर्णय

पैरा

[2014] (2014) 11 एस. सी. सी. 224 :
सफाई कर्मचारी आंदोलन बनाम **भारत संघ** । 12

आरंभिक (सिविल) अधिकारिता : 2006 की रिट याचिका (सिविल) सं. 140.

संविधान, 1950 के अनुच्छेद 32 के अधीन रिट याचिका ।

पक्षकारों की ओर से सर्वश्री सूर्यनारायण सिंह, ज्येष्ठ अपर महाधिवक्ता, एस. के. पब्बी, एस. एस. शम्शेरी, अपर महाधिवक्ता, कोलिन गोनसाल्वेस, ज्येष्ठ अधिवक्ता, (सुश्री) पल्लवी शर्मा, (सुश्री) ज्योति मेंदीरत्ता, (सुश्री) रेखा पांडेय, विजय प्रकाश, ध्रुव शेरान, करण सेठ, अंश सिंह लुथरा, बी. के. प्रसाद, अजय कुमार सिंह, एस. के. गुप्ता, राज बहादुर यादव, डी. एस. मेहरा, (सुश्री) सुषमा सूरी, एस. उदय कुमार सागर, बासकुला अथिक, अनील के. झा, (सुश्री) प्रियंका त्यागी, गोपाल सिंह, मनीष कुमार,

(सुश्री) श्रेया जैन, (सुश्री) दिशा सिंह, शिवेन्दु गौड़, (सुश्री) प्रगति नीखरा, वी. एन. रघुपति, प्रकाश जाधव, हरिशंकर शरण, डा. मोनिका गोसाईं, के. के. शुक्ला, रितुराज विश्वास, जतिन्दर कुमार भाटिया, आशुतोष कुमार शर्मा, रवि पी. मेहरोत्रा, के. वी. जगदिश्वरन, (श्रीमती) जी. इंदिरा, शुवदीप रॉय, सयुज मोहन दास, सपम विश्वजीत मेतेई, नरेश कुमार गौड़, (सुश्री) लिन्थोइंगम्बी थोंगम, सुरेन्द्र कुमार गुप्ता, अजय सिंह-I, अमीत शर्मा, प्रतिक यादव, अंकित राज, मिलिन्द कुमार, एम. योगेश कन्ना, (सुश्री) नित्या, निशांत कत्लेश्वर्कर, अर्पिता राय, के. एनातोली सेमा, (सुश्री) एडवर्ड बेल्हो, अमीत कुमार सिंह, एल. ल्यूइकंग माइकल, रंजन मुखर्जी, के. वी. खरहैंगडोह, वी. जी. प्रगासम, प्रभू रामासुब्रमण्यन, मिश्र सौरभ, अंकित जी. लाल, (सुश्री) हेमंतिका वाही, (सुश्री) पूजा सिंह, (सुश्री) आगम कौर, (सुश्री) अरुणा माथुर, यूसूफ खान, अवनीश अर्पूथम, (सुश्री) अनुराधा अर्पूथम, अभिजीत सेनगुप्ता, अनील श्रीवास्तव, अभिजीत भट्टाचार्जी, बी. एस. बंथिया, गुन्नाम वेंकटेश्वर राव, ख्वेरकप्पम नोबीन सिंह, मनीष कुमार सरण, (श्रीमती) अनील कटियार, संजय आर. हेगड़े, शिव शंकर मिश्र, टी. वी. जॉर्ज, एम. पी. झा, विश्वजीत सिंह, मैसर्स कार्पोरेट ला ग्रुप, पी. वी. योगेश्वरन

न्यायालय का निर्णय न्यायमूर्ति एल. नागेश्वर राव ने दिया ।

न्या. राव –

"मैं पुनः पैदा नहीं होना चाहता, किंतु यदि मेरा पुनर्जन्म हो तो मैं यह चाहता हूं कि मेरा जन्म एक अछूत हरिजन के रूप में हो जिससे कि मैं उस उत्पीड़न और अपमान के विरुद्ध जीवन भर सतत संघर्ष कर सकूं जो इन वर्ग के लोगों के प्रति कूट-कूट कर भरा हुआ है ।" – **महात्मा गांधी**

याची जो स्वैच्छिक संगठन हैं, अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति के सदस्यों के उद्धार के लिए सतत संघर्षरत हैं । याचियों ने अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति (अत्याचार निवारण) अधिनियम, 1989 (जिसे इसमें इसके पश्चात् "अधिनियम" कहा गया है) और इसके अधीन बनाए गए नियमों के अक्रियान्वयन द्वारा व्यथित होकर निम्नलिखित अनुतोषों की मांग करते हुए यह रिट याचिका फाइल की :–

"(क) अधिनियम के अधीन यथापेक्षित विशेष अधिकारी, नोडल अधिकारी और संरक्षण सेल गठित करने का प्रत्यर्थियों को तत्काल निदेश देते हुए परमादेश की रिट या कोई अन्य समुचित रिट, आदेश या निदेश जारी करें ।

(ख) नोडल अधिकारी को ऐसे प्रत्येक मामले का अन्वेषण करने का जहां उन्हें ऐसे पुलिस अधिकारी की उपेक्षा के बारे में शिकायत की जाती है, जहां प्रथम इत्तिला रिपोर्ट अवैध रूप से रजिस्टर नहीं किए जाते हैं या अनुचित रूप से रजिस्टर किए जाते हैं, जहां आरोप पत्र विलंब से फाइल किए जाते हैं, जहां अन्वेषण उप-पुलिस अधीक्षक की पंक्ति से नीचे की पंक्ति के अधिकारी द्वारा किया जाता है और विधि के अनुसार अधिनियम के उपबंधों के प्रतिकूल कार्य करने के लिए संबद्ध अधिकारी के विरुद्ध कार्रवाई करने का निदेश देते हुए आदेश पारित करें ।

(ग) प्रत्यर्थियों को अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति (अत्याचार निवारण) अधिनियम, 1989 के मामलों में आरोप पत्रों के फाइल करने और वह अवधि जो पिछले पांच वर्षों में ली गई हैं, की प्रास्थिति रिपोर्ट फाइल करने का निदेश देते हुए आदेश पारित करें ।

(घ) प्रत्यर्थियों को छह मास के भीतर प्रत्येक जिलों में पृथक्

विशेष न्यायालय गठित करने का निदेश देते हुए आदेश पारित करें ।

(ङ) प्रत्यर्थी को अधिनियम की धारा 4 के अधीन भ्रष्ट कर्मचारियों के विरुद्ध प्रथम इत्तिला रिपोर्ट के रजिस्ट्रीकरण पर प्रास्थिति रिपोर्ट फाइल करने का निदेश देते हुए आदेश पारित करें ।

(च) प्रत्यर्थियों को अत्याचार संभावित क्षेत्रों की पहचान करने और अधिसूचित करने तथा तत्काल विधि के अनुसार समुचित कार्रवाई करने का निदेश देते हुए आदेश पारित करें ।

(छ) प्रत्यर्थियों को उन मामलों पर प्रास्थिति रिपोर्ट फाइल करने जो उन्होंने अनुसूचित जाति/अनुसूचित जनजाति द्वारा परिवाद दर्ज कराने के पश्चात् अनुसूचित जाति/अनुसूचित जनजाति के विरुद्ध दर्ज किया है और उन मामलों की प्रास्थिति फाइल करने का निदेश देते हुए आदेश पारित करें ।

(ज) न्यायिक अधिकारियों को यह सुनिश्चित करने के लिए उनकी अधिकारिता के भीतर सभी मामलों का सावधानीपूर्वक मानीटर करने की जातिगत अत्याचारों के पीड़ितों के मामलों में उच्च प्राथमिकता और शीघ्र न्याय किया गया है और प्रत्येक छह माह में उच्च न्यायालय को रिपोर्ट करने का निदेश देते हुए आदेश पारित करें ।

(झ) जिला मजिस्ट्रेट को प्रत्येक मास विशेष लोक अभियोजकों के कार्यपालन का पुनर्विलोकन करने के लिए और अपने संबद्ध उच्च न्यायालय को रिपोर्ट करने का निदेश देते हुए आदेश पारित करें ।

(ञ) प्रत्यर्थी को अनुसूचित जाति/अनुसूचित जनजाति से संबंधित लोक अभियोजकों के कार्यपालन की प्रास्थिति रिपोर्ट छह माह की अवधि के भीतर फाइल करने का निदेश देते हुए आदेश पारित करें ।

(ट) जिला मजिस्ट्रेट को अभियोजन के लिए वरिष्ठ अधिवक्ता नियुक्त करने का निदेश देते हुए आदेश पारित करें यदि पीड़ित ऐसा चाहता है ।

(ठ) प्रत्यर्थी को जहां कहीं संभव हो अनुसूचित जाति/अनुसूचित जनजाति में से और यदि संभव हो तो अनुसूचित जाति/अनुसूचित जनजाति महिला अधिवक्ताओं से लोक अभियोजक नियुक्त करने और सावधिक प्रशिक्षण देने का निदेश देते हुए आदेश पारित करें ।

(ड) सभी न्यायिक अधिकारियों को यह सुनिश्चित करने के लिए कि अभियोजन का संचालन स्वयं सक्षम रूप से हो और ऐसा कुछ न हो जिसके परिणामस्वरूप पीड़ितों को हानि हो, विचारण के दौरान सक्रिय भूमिका निभाने का निदेश देते हुए आदेश पारित करें ।

(ढ) प्रत्यर्थियों विशेषकर अभियोजन निदेशकों को पिछले पांच वर्षों में विशेष न्यायालयों द्वारा दोषमुक्त किए गए सभी मामलों का जिनमें अपील नहीं की गई है, पुनर्विलोकन करने और विधि के अनुसार तत्काल कदम उठाने का निदेश देते हुए आदेश पारित करें ।

(ण) सभी न्यायिक अधिकारियों को ऐसे मामलों में विशेष ध्यान देने जहां अभियुक्त को गिरफ्तार नहीं किया गया है, का निदेश देते हुए आदेश पारित करें ।

(त) सभी न्यायिक अधिकारियों को यह सुनिश्चित करने के लिए कि पीड़ितों या उनके साक्षियों पर अभियोजन से उन्हें हटने पर मजबूर करने के लिए किसी भी प्रकार का कोई दबाव नहीं डाला गया है, निदेश देते हुए आदेश पारित करें ।

(थ) प्रत्यर्थियों को, विशेष लोक अभियोजकों को जमानत के रद्दकरण के लिए आवेदन फाइल करने, जहां वह अत्याचार अधिनियम के प्रयोजन और उद्देश्य के प्रतिकूल है, अनुदेश देने का निदेश देते हुए आदेश पारित करें ।

(द) प्रत्यर्थी राज्य/संघ राज्य क्षेत्र के प्रशासकों/मुख्य सचिवों को प्रत्येक जिले के पुलिस अधीक्षक और कलक्टर के कार्यपालन की जांच करने जहां अत्याचारों का बारबार प्रतिवेदन किया जाता है और जहां कहीं न्यायोचित हो तत्परतापूर्वक और विधि के अनुसार कार्य न कर रहे ऐसे अधिकारियों को दंडित करने का निदेश देते हुए आदेश पारित करें ।

(ध) प्रत्यर्थियों को अधिनियम और नियमों के अनुसार तत्काल पुनर्वास पैकेज विरचित करने का निदेश देते हुए आदेश पारित करें ।

(न) प्रत्यर्थियों को दलित अधिवक्ताओं द्वारा प्रचालित और राज्य विधिक सेवा प्राधिकरण द्वारा निधि पोषित दलित विधिक सहायता केंद्र गठित करने का निदेश देते हुए आदेश पारित करें ।

(प) राज्य सरकारों को अनुसूचित जाति और अनुसूचित

जनजाति (अत्याचार निवारण) अधिनियम, 1989 को पूर्णतः (पश्चिमी बंगाल) लागू करने का निदेश देते हुए आदेश पारित करें ।

(फ) पुलिस अधिकारियों को प्रथम इत्तिला रिपोर्ट दर्ज करते समय धारा 3(1)(i) से धारा 3(1)(xv) के सभी उपबंधों पर अपने विवेक का प्रयोग करने का निदेश देते हुए आदेश पारित करें ।

(ब) प्रत्यर्थी को यह निदेश देते हुए आदेश पारित करें कि सामाजिक/आर्थिक बहिष्कार के पीड़ित द्वारा किए गए परिवाद पर, अभियुक्त की जमानत रद्द की जाए और जिला मजिस्ट्रेट तथा पीठासीन अधिकारियों द्वारा कर्मचारियों के विरुद्ध आपराधिक अभियोजन चलाए जाने सहित कठोर कार्रवाई की जाए । (प्रतिकर राज्य द्वारा दिया जाए)

(भ) प्रत्यर्थियों को पिछले पांच वर्षों से अधिनियम के उपबंधों के अधीन संदत्त और संदत्त किए जाने के लिए शेष प्रतिकर और भत्तों पर प्रास्थिति रिपोर्ट फाइल करने तथा प्रतिकर जहां कहीं शोध्य हो तत्काल संदत्त करने का निदेश देते हुए आदेश पारित करें ।

(म) प्रत्यर्थियों को लागू प्रतिकर दरों को वास्तविक और वर्तमान बाजार कीमत शर्तों पर संशोधित करने और बढ़ाने का निदेश देते हुए आदेश पारित करें ।

(य) प्रत्यर्थियों को संपूर्ण राज्य में मानीटरिंग और सतर्कता समितियों में दलित अधिकारों में सक्रिय ख्याति प्राप्त संगठनों के प्रमुख सदस्यों को नियुक्त करने, जिसमें से कम से कम 50 प्रतिशत संपूर्ण राज्य में महिला सदस्य होना चाहिए, का निदेश देते हुए आदेश पारित करें ।

(र) प्रत्यर्थियों को सामूहिक जुर्माने के अधिरोपण से संबंधित उपबंध लागू करने के लिए, जहां कहीं इस अधिनियम के अधीन लागू हो, निदेश देते हुए आदेश पारित करें ।

(ल) प्रत्यर्थियों को राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग रिपोर्ट 2002 के क्रियान्वयन के लिए निदेश देते हुए आदेश पारित करें । ऐसे अन्य आदेश या निदेश या रिट पारित करें जिसे ठीक और उचित समझें ।

2. याचियों की ओर से उपस्थित विद्वान् वरिष्ठ काउंसेल श्री कोलिन गोनसाल्वेस ने यह निवेदन किया कि इस समय वे इस न्यायालय से चार

निदेश देने का अनुरोध कर रहे हैं, जो इस प्रकार है :–

"(क) प्रत्यर्थियों को तत्काल अधिनियम के अधीन यथापेक्षित विशेष अधिकारी, नोडल अधिकारी और संरक्षण सेल गठित करने का निदेश देते हुए परमादेश रिट या कोई अन्य समुचित रिट, आदेश या निदेश जारी करें ।

(च) प्रत्यर्थियों को अत्याचार संभावित क्षेत्रों की पहचान करने और अधिसूचित करने तथा तत्काल विधि के अनुसार समुचित कार्रवाई करने का निदेश देते हुए आदेश पारित करें ।

(ध) प्रत्यर्थियों को अधिनियम और नियमों के अनुसार तत्काल पुनर्वास पैकेज विरचित करने का निदेश देते हुए आदेश पारित करें ।

(भ) प्रत्यर्थियों को पिछले पांच वर्षों से अधिनियम के उपबंधों के अधीन संदत्त और संदत्त किए जाने के लिए शेष प्रतिकर और भत्तों पर प्रास्थिति रिपोर्ट फाइल करने तथा प्रतिकर जहां कहीं शोध्य हो तत्काल संदत्त करने का निदेश देते हुए आदेश पारित करें ।"

3. भारत के संविधान की उद्देशिका अपने सभी नागरिकों को सामाजिक आर्थिक और राजनीतिक न्याय तथा प्रतिष्ठा और अवसर की समता का उपबंध करता है । संविधान का अनुच्छेद 15 धर्म, मूलवंश, जाति, लिंग या जन्मस्थान के आधारों पर विभेद का प्रतिषेध करता है । संविधान के अनुच्छेद 17 द्वारा अस्पृश्यता का अंत किया जाता है और किसी भी रूप में इसके आचरण को निषिद्ध किया गया है । अनुच्छेद 17 के अनुसार अस्पृश्यता से उद्‌भूत किसी निर्योग्यता को लागू करना विधि के अधीन दंडनीय अपराध होगा । अनुच्छेद 46 इस प्रकार है :–

"**अनुच्छेद 46 – अनुसूचित जातियों, अनुसूचित जनजातियों और अन्य दुर्बल वर्गों के शिक्षा और अर्थ संबंधी हितों की अभिवृद्धि** – राज्य, जनता के दुर्बल वर्गों के, विशिष्टतया, अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के शिक्षा और अर्थ संबंधी हितों की विशेष सावधानी से अभिवृद्धि करेगा और सामाजिक अन्याय और सभी प्रकार के शोषण से उसकी संरक्षा करेगा ।"

संविधान का अनुच्छेद 338 और 338क क्रमशः राष्ट्रीय अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति आयोग के गठन का उपबंध करता है । अनुच्छेद 338 और 338क के सुसंगत भाग इस प्रकार हैं :–

338. राष्ट्रीय अनुसूचित जाति आयोग – (1) अनुसूचित जातियों के लिए एक आयोग होगा जो राष्ट्रीय अनुसूचित जाति आयोग के नाम से ज्ञात होगा ।

* * * * *

(5) आयोग का यह कर्तव्य होगा कि वह, –

(क) अनुसूचित जातियों के लिए इस संविधान या तत्समय प्रवृत्त किसी अन्य विधि या सरकार के किसी आदेश के अधीन उपबंधित रक्षोपायों से संबंधित सभी विषयों का अन्वेषण करे और उन पर निगरानी रखे तथा ऐसे रक्षोपायों के कार्यकरण का मूल्यांकन करे ;

(ख) अनुसूचित जातियों को उनके अधिकारों और रक्षोपायों से वंचित करने की बाबत विनिर्दिष्ट शिकायतों की जांच करे ;

(ग) अनुसूचित जातियों के सामाजिक-आर्थिक विकास की योजना प्रक्रिया में भाग ले और उन पर सलाह दे तथा संघ और किसी राज्य के अधीन उनके विकास की प्रगति का मूल्यांकन करे ;

(घ) उन रक्षोपायों के कार्यकरण के बारे में प्रतिवर्ष, और ऐसे अन्य समयों पर, जो आयोग ठीक समझे, राष्ट्रपति को प्रतिवेदन दे ;

(ङ) ऐसे प्रतिवेदनों में उन उपायों के बारे में जो उन रक्षोपायों के प्रभावपूर्ण कार्यान्वयन के लिए संघ या किसी राज्य द्वारा किए जाने चाहिएं, तथा अनुसूचित जातियों के संरक्षण, कल्याण और सामाजिक-आर्थिक विकास के लिए अन्य उपायों के बारे में सिफारिश करे ;

(च) अनुसूचित जातियों के संरक्षण, कल्याण, विकास तथा उन्नयन के संबंध में ऐसे अन्य कृत्यों का निर्वहन करे जो राष्ट्रपति, संसद् द्वारा बनाई गई किसी विधि के उपबंधों के अधीन रहते हुए, नियम द्वारा विनिर्दिष्ट करे ।

(6) राष्ट्रपति ऐसे सभी प्रतिवेदनों को संसद् के प्रत्येक सदन के समक्ष रखवाएगा और उसके साथ संघ से संबंधित सिफारिशों पर की

गई या किए जाने के लिए प्रस्थापित कार्रवाई तथा यदि कोई ऐसी सिफारिश अस्वीकृत की गई है तो अस्वीकृति के कारणों को स्पष्ट करने वाला ज्ञापन भी होगा ।

338क. राष्ट्रीय अनुसूचित जनजाति आयोग – (1) अनुसूचित जनजातियों के लिए एक आयोग होगा जो राष्ट्रीय अनुसूचित जनजाति आयोग के नाम से ज्ञात होगा ।

* * * * *

(5) आयोग का यह कर्तव्य होगा कि वह, –

(क) अनुसूचित जनजातियों के लिए इस संविधान या तत्समय प्रवृत्त किसी अन्य विधि या सरकार के किसी आदेश के अधीन उपबंधित रक्षोपायों से संबंधित सभी विषयों का अन्वेषण करे और उन पर निगरानी रखे तथा ऐसे रक्षोपायों के कार्यकरण का मूल्यांकन करे ;

(ख) अनुसूचित जनजातियों को उनके अधिकारों और रक्षोपायों से वंचित करने के सम्बन्ध में विनिर्दिष्ट शिकायतों की जांच करे ;

(ग) अनुसूचित जनजातियों के सामाजिक-आर्थिक विकास की योजना प्रक्रिया में भाग ले और उन पर सलाह दे तथा संघ और किसी राज्य के अधीन उनके विकास की प्रगति का मूल्यांकन करे ;

(घ) उन रक्षोपायों के कार्यकरण के बारे में प्रतिवर्ष और ऐसे अन्य समयों पर, जो आयोग ठीक समझे, राष्ट्रपति को रिपोर्ट प्रस्तुत करे ;

(ङ) ऐसी रिपोर्टों में उन उपायों के बारे में, जो उन रक्षोपायों के प्रभावपूर्ण कार्यान्वयन के लिए संघ या किसी राज्य द्वारा किए जाने चाहिएं, तथा अनुसूचित जनजातियों के संरक्षण, कल्याण और सामाजिक-आर्थिक विकास के लिए अन्य उपायों के बारे में सिफारिश करे ; और

(च) अनुसूचित जनजातियों के संरक्षण, कल्याण और विकास तथा उन्नयन के संबंध में ऐसे अन्य कृत्यों का निर्वहन करे जो राष्ट्रपति, संसद् द्वारा बनाई गई किसी विधि के उपबंधों

के अधीन रहते हुए, नियम द्वारा विनिर्दिष्ट करे ।

* * * * *

(8) आयोग को, खंड (5) के उपखंड (क) में निर्दिष्ट किसी विषय का अन्वेषण करते समय या उपखंड (ख) में निर्दिष्ट किसी परिवाद के बारे में जांच करते समय, विशिष्टतया निम्नलिखित विषयों के संबंध में, वे सभी शक्तियां होंगी, जो वाद का विचारण करते समय सिविल न्यायालय को हैं, अर्थात् :–

(क) भारत के किसी भी भाग से किसी व्यक्ति को समन करना और हाजिर कराना तथा शपथ पर उसकी परीक्षा करना ;

(ख) किसी दस्तावेज को प्रकट और पेश करने की अपेक्षा करना ;

(ग) शपथपत्रों पर साक्ष्य ग्रहण करना ;

(घ) किसी न्यायालय या कार्यालय से किसी लोक अभिलेख या उसकी प्रति की अध्यपेक्षा करना ;

(ङ) साक्षियों और दस्तावेजों की परीक्षा के लिए कमीशन निकालना ;

(च) कोई अन्य विषय, जो राष्ट्रपति, नियम द्वारा अवधारित करे ।

4. राष्ट्रीय अनुसूचित जाति आयोग द्वारा वर्ष 2014-15 में संसद् को प्रस्तुत वार्षिक रिपोर्ट में यथाकथित राष्ट्रीय अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति आयोग का संक्षिप्त ऐतिहासिक पृष्ठभूमि इस प्रकार है :–

"अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजातियों के कल्याण के लिए संविधान में और विभिन्न अन्य संरक्षक विधानों में उपबंधित विभिन्न सुरक्षोपायों के प्रभावी क्रियान्वयन के लिए संविधान अनुच्छेद 338 के अधीन विशेष अधिकारी की नियुक्ति का उपबंध करता है । ऐसे विशेष अधिकारी जिसे अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति आयुक्त के रूप में अभिहित किया गया, को विभिन्न कानूनों में उपबंधित अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति के लिए सुरक्षोपायों से संबंधित सभी मामलों के अन्वेषण का कार्य और इन सुरक्षोपायों के कार्यकरण पर भारत के राष्ट्रपति को रिपोर्ट प्रस्तुत

करने का दायित्व दिया गया । अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति आयुक्त के कार्यालय के प्रभावी कार्यकरण को सुकर बनाने के लिए, 17 क्षेत्रीय आयुक्तों के कार्यालय भी देश के विभिन्न भागों में गठित किए गए । सांसदों की लगातार मांग पर कि अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति के आयुक्त का कार्यालय ही एकमात्र संवैधानिक सुरक्षोपायों के क्रियान्वयन को मानीटर करने के लिए पर्याप्त नहीं है, एक सदस्यीय व्यवस्था के स्थान पर बहुसदस्यीय व्यवस्था रखने के लिए संविधान (छियालीसवां संशोधन) के अनुच्छेद 338 के संशोधन पर विचार करने के लिए एक प्रस्ताव लाया गया । इसके पश्चात् सरकार ने 1987 में एक संकल्प के माध्यम से एक बहुसदस्यीय आयोग गठित करने का विनिश्चय किया जिसका नाम राष्ट्रीय अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति आयोग रखा गया । तारीख 19 फरवरी, 2004 को संविधान (नवासीवां संशोधन) अधिनियम, 2003 के प्रवृत्त होने के परिणामस्वरूप पूर्व राष्ट्रीय अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति आयोग के स्थान पर (1) राष्ट्रीय अनुसूचित जाति आयोग और (2) राष्ट्रीय अनुसूचित जनजाति आयोग रखा गया । राष्ट्रीय अनुसूचित जाति आयोग के नियम सामाजिक न्याय और अधिकारिता मंत्रालय द्वारा तारीख 20 फरवरी, 2004 को अधिसूचित किया गया ।"[1]

राष्ट्रीय आयोग के कर्तव्यों का उपबंध राष्ट्रीय अनुसूचित जाति आयोग की प्रक्रिया नियम में है । उक्त नियम के अध्याय 3 में आयोग द्वारा अन्वेषण और जांच का उपबंध है । सुसंगत उपबंध इस प्रकार है :–

"7.0 आयोग द्वारा अन्वेषण और जांच

7.1 आयोग देश के भीतर किसी स्थान पर 'सभा' और 'बैठक' आयोजित कर और मुख्यालय में तथा राज्य कार्यालयों में अपने अधिकारियों के माध्यम से भी कार्य करेगा । अध्यक्ष और उपाध्यक्ष सहित आयोग के सदस्य इन नियमों के अधीन विहित प्रक्रिया के अनुसार कार्य करेंगे ।

* * * * *

7.2 (क) सीधे आयोग द्वारा अन्वेषण और जांच

7.2(क)(i) आयोग ऐसी विनिर्दिष्ट शिकायतों पर जांच के लिए

---

[1] राष्ट्रीय अनुसूचित जाति आयोग, वार्षिक रिपोर्ट 2014-15.

अनुसूचित जातियों के सुरक्षोपाय, संरक्षण, कल्याण और विकास से संबंधित मामलों में अन्वेषण करने के लिए बैठकें आयोजित कर सकेगा जिसके लिए आयोग ने सीधे अन्वेषण या जांच करने का विनिश्चय किया है । ऐसी बैठकें आयोग के मुख्यालय में या देश के भीतर किसी अन्य स्थान पर हो सकेंगी ।

* * * * *

7.5 अत्याचारों के मामलों में जांच

7.5.1 जब कभी अनुसूचित जातियों के सदस्यों के विरुद्ध अत्याचार की किसी घटना के बारे में आयोग को सूचना प्राप्त होती है तो आयोग तत्काल घटना के ब्यौरों और जिला प्रशासन द्वारा की गई कार्रवाई को सुनिश्चित करने के लिए राज्य और जिले की विधि प्रवर्तन और प्रशासनिक मशीनरी के संपर्क में आ जाएगा । यदि विस्तृत जांच/अन्वेषण के पश्चात् आयोग अत्याचार से संबंधित अभिकथन/परिवाद में सार पाता है तो आयोग राज्य/जिला के संबद्ध विधि प्रवर्तन अधिकरण से अभियुक्त के विरुद्ध प्रथम इत्तिला रिपोर्ट फाइल करने की सिफारिश कर सकेगा । ऐसे मामलों में राज्य सरकार/जिला प्रशासन/पुलिस कार्मिक को समन द्वारा तीन दिनों के भीतर बुलाया जा सकेगा ।”

नियम का अध्याय VIII आयोग के मानीटरिंग कार्य के बारे में है, जो इस प्रकार है :–

“15.0 आयोग का मानीटरिंग कार्य

15.1 आयोग द्वारा मानीटरिंग के लिए विषय का अवधारण किया जाना

आयोग ऐसे विषयों या मामलों या क्षेत्रों का समय-समय पर अवधारण कर सकेगा जिसका वह संविधान या तत्समय प्रवृत्त किसी अन्य विधि या सरकार के किसी आदेश के अधीन अनुसूचित जातियों के लिए उपबंधित सुरक्षोपायों और अन्य सामाजिक आर्थिक विकास उपायों के संबंध में मानीटरिंग करेगा ।

* * * * *

16.0 अनुवर्ती कार्रवाई

16.1 यह सुनिश्चित करने के लिए कि मानीटरिंग प्रभावी रूप

से की जाए, आयोग उपरोक्त नियमों में यथाविहित सूचना प्राप्त करने के पश्चात् और निष्कर्ष निकालने के पश्चात्, यथासंभव शीघ्र खामियों का उल्लेख करते हुए संबद्ध प्राधिकारी को संसूचित करेगा जो सुरक्षोपायों के क्रियान्वयन में ध्यान में आया और सुधारात्मक उपाय बताएगा । ऐसी संसूचना भेजने का विनिश्चय मुख्यालय के संयुक्त सचिव/सचिव से अन्यून स्तर के अधिकारी द्वारा लिया जाएगा । राज्य कार्यालयों के प्रभारी निदेशक नैमित्तिक मामलों में विनिश्चय ले सकेंगे यद्यपि वे सामुहिक अनुसूचित जातियों के हित को प्रभावित करने वाले महत्वपूर्ण मामलों में परिसर के सचिव और संबद्ध सदस्य का अनुमोदन लेंगे ।

16.2 आयोग नियम 76 के अधीन भेजी गई संसूचनाओं के अनुसरण में की गई कार्रवाई पर संबद्ध प्राधिकारी से टिप्पणी की मांग कर सकेगा ।

16.3 आयोग अपनी वार्षिक रिपोर्ट या किसी विशेष रिपोर्ट में संविधान के अधीन या तत्समय प्रवृत्त किसी अन्य विधि के अधीन या संघ/राज्य सरकार के किसी आदेश के अधीन अनुसूचित जातियों के लिए उपबंधित सुरक्षोपायों और सामाजिक आर्थिक विकास उपायों से संबंधित विषयों की मानीटरिंग की प्रक्रिया के दौरान निकाले गए निष्कर्षों और परिणामों को सम्मिलित करेगा ।

5. संविधान का अनुच्छेद 29क यह सुनिश्चित करने के लिए निःशुल्क विधिक सहायता का उपबंध करता है कि न्याय प्राप्त करने के अवसर से आर्थिक या किसी अन्य निर्योग्यता के कारण कोई नागरिक वंचित न रह जाए । विधिक सेवा प्राधिकरण अधिनियम, 1987 (जिसे इसमें इसके पश्चात् 'एल. एस. ए. अधिनियम' कहा गया है) का अधिनियमन समाज के कमजोर वर्गों को निःशुल्क और सक्षम विधिक सेवाएं उपलब्ध कराने के लिए विशेष प्राधिकारियों के गठन के लिए किया गया था । एल. एस. ए. अधिनियम की धारा 4(ड) स्वैच्छिक सामाजिक कल्याण संस्थाओं, विशेषकर अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति में से, के समर्थन को सूचीबद्ध करने के लिए विशेष प्रयास किए जाने का उपबंध करती है । एल. एस. ए. अधिनियम की धारा 12 अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति को निःशुल्क विधिक सहायता का उपबंध करती है ।

6. संयुक्त राष्ट्र के प्रयोजनों में से एक प्रयोजन मूलवंश, लिंग, भाषा या धर्म का अंतर किए बिना सभी के प्रति सम्मान का संवर्धन और

प्रोत्साहन तथा मानव अधिकार और मूल स्वतंत्रताओं का पालन करना है । सभी प्रकार के मूलवंशीय विभेद के समापन पर अंतरराष्ट्रीय प्रसंविदा, 1966 (आई.सी.ई.आर.डी.) का अनुच्छेद 1 इस प्रकार है :–

अनुच्छेद 1

(1) इस प्रसंविदा में 'मूलवंशीय विभेद' पद से मूलवंश, रंग, उद्भव या राष्ट्रीय या मानव जातीय उद्भव पर आधारित कोई अंतर, अपवर्जन, निर्बंधन या अधिमान अभिप्रेत है जिसका अभिप्राय राजनैतिक, आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक या सार्वजनिक जीवन के किसी अन्य क्षेत्र में मानव अधिकारों और मूल स्वतंत्रताओं के समान स्तर पर मान्यता उपभोग या पालन को अकृत करना या नष्ट करने का प्रयोजन या आशय है ।

(2) यह प्रसंविदा नागरिकों और गैर-नागरिकों के बीच इस प्रसंविदा के राज्य पक्षकार द्वारा किए गए किसी अंतर, अपवर्जन, निर्बंधन या अधिमान को लागू नहीं होगा ।

(3) इस संविदा के किसी उपबंध का निर्वचन राष्ट्रीयता, नागरिकता या देशीकरण से संबंधित राज्य पक्षकारों के विधिक उपबंधों को किसी तरह प्रभावित नहीं करेगा बशर्ते कि ऐसे उपबंध किसी विशिष्ट राष्ट्रीयता के प्रति विभेदकारी न हो ।

(4) मानव अधिकारों और मूल स्वतंत्रताओं के समान उपभोग या प्रयोग को सभी समूहों या व्यक्तियों को सुनिश्चित करने में ऐसे संरक्षण जैसा आवश्यक हो की अपेक्षा करते हुए कतिपय मूलवंशीय या मानव जातीय समूहों या व्यक्तियों के पर्याप्त संवर्धन को सुनिश्चित करने के एकमात्र प्रयोजन के लिए उठाए गए विशेष उपायों को मूलवंशीय विभेद नहीं समझा जाएगा बशर्ते कि ऐसे उपायों के परिणामस्वरूप भिन्न मूलवंशीय समूहों के लिए पृथक् अधिकारों का अनुरक्षण उद्भूत होता हो और यह कि उन्हें ऐसे उद्देश्य जिसके लिए वे बनाए गए थे प्राप्त हो गए हों, के पश्चात् जारी नहीं रखा जाएगा ।"[1]

आई. सी. ई. डी. आर. के अनुच्छेद 1 के कतिपय सिफारिशों को 1

[1] सभी प्रकार के मूलवंशीय विभेद के समापन पर अंतरराष्ट्रीय प्रसंविदा को सामान्य सभा संकल्प 2106 (xx) द्वारा 21 दिसंबर, 1965 को अंगीकार किया गया और हस्ताक्षर तथा अनुसमर्थन के लिए खोला गया, अनुच्छेद 19 के अनुसार 4 जनवरी, 1969 से प्रविष्टि प्रवृत्त हुई ।

नवंबर, 2002 को अंगीकार किया गया जो इस प्रकार है :–

> "समिति के सतत मत को पुष्ट करते हुए कि अनुच्छेद 1, पैरा 1 के 'उद्भव' पद को प्रसंविदा एकमात्र 'मूलवंश' को निर्दिष्ट नहीं करता और इसका यह अर्थ है जो विभेद के अन्य प्रतिषिद्ध आधारों का पूरक है ।
>
> दृढ़तापूर्वक पुनः पुष्ट करते हुए कि 'उद्भव' पर आधारित विभेद जाति और वंशगत प्रास्थिति की समतुल्य प्रणाली जो मानव अधिकारों के उनके समतुल्य उपभोग को अकृत करता है या नष्ट करता है जैसे सामाजिक स्तर के प्ररूपों पर आधारित समुदायों के सदस्यों के प्रति विभेद को सम्मिलित करता है,"[1]

ये सिफारिशें भी दृढ़तापूर्वक जाति आधारित विभेद के समान उद्भव आधारित विभेद की निन्दा करते हैं । यह महत्वपूर्ण है कि यह भी सिफारिश थी कि पहले से ही प्रवृत्त विधानों और अन्य उपायों का कड़े रूप से पालन किया जाए ।

7. अनुच्छेद 17 को इसके सही भाषा और भाव में प्रभावी बनाने के लिए संसद् ने अस्पृश्यता (अपराध) अधिनियम, 1955 का अधिनियमन किया । उक्त अधिनियम की धारा 3 से 7 अस्पृश्यता के आधार पर धार्मिक, सामाजिक या किसी अन्य तरह की निर्योग्यताओं को प्रवृत्त करने के लिए दंड विहित करते हैं । उक्त अधिनियम की खामियों और कमियों के बारे में समाज के विभिन्न क्षेत्रों से कई शिकायतें प्राप्त कीं । उक्त अधिनियम में कई संशोधन किए गए जिसे 'सिविल अधिकार संरक्षण अधिनियम, 1955' के रूप में पुनः नामित किया गया । मुख्य मरम्मत के बावजूद, यह ध्यान में आया है कि सिविल अधिकार संरक्षण अधिनियम, 1955 और भारतीय दंड संहिता, 1860 अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों पर किए गए अत्याचारों को रोकने के लिए अपर्याप्त हैं । यह तथ्य कि अनुसूचित जातियां और अनुसूचित जनजातियां उनके सामाजिक आर्थिक दशा को सुधारने के लिए कई उपायों को लागू करने के बावजूद एक संवेदनशीलन समूह बना हुआ है जो संसद् के लिए एक गहरी चिंता का विषय है । संसद् ने यह स्वीकार किया कि अनुसूचित जातियां और अनुसूचित जनजातियां शाश्वतः विभिन्न अपराधों, अपमानों, अनादरों और

---

[1] प्रसंविदा (उद्भव) ए./57/18(2002)111 के अनुच्छेद 1, पैरा 1 पर सी. ई. आर. डी. सामान्य सिफारिश xxix .

प्रताड़नाओं के अधीन थे । अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों को उनके प्राण और संपत्ति से वंचित करने वाले क्रूरता और अत्याचार की अनेक घटनाएं संसद् के लिए चिंता का कारण थीं । इस तथ्य पर विचार करते हुए कि अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के विरुद्ध अत्याचार होने की विक्षुब्धकारी प्रवृत्ति में वृद्धि हो रही है, संसद् ने अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति (अत्याचार निवारण) अधिनियम, 1989 का अधिनियमन किया । अधिनियम की उद्देशिका इस प्रकार है :–

> "अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के सदस्यों के विरुद्ध अत्याचार के अपराधों के निवारण, ऐसे अपराधों के विचारों के लिए और ऐसे अपराधों के पीड़ितों को राहत और पुनर्वास के लिए विशेष न्यायालयों की व्यवस्था करने और उससे संबद्ध या आनुषंगिक विषयों के लिए अधिनियम ।"

8. अधिनियम ऐसे अत्याचारों के कई कार्यों या लोपों को शामिल कर आपराधिक दायित्व की व्याप्ति की वृद्धि करता है जो भारतीय दंड संहिता या सिविल अधिकार संरक्षण अधिनियम, 1955 के अधीन नहीं आते थे । अधिनियम सामाजिक निर्योग्यता, संपत्ति का दुर्भावपूर्ण अभियोजन, राजनैतिक अधिकारों और आर्थिक शोषण को प्रभावित करने वाले विभिन्न अत्याचारों के लिए अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के लिए संरक्षण का भी उपबंध करता है । अधिनियम अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के विरुद्ध अपराधों के किए जाने के लिए दंड की वृद्धि का भी उपबंध करता है । लोकसेवक द्वारा किए गए कार्यों की उपेक्षा के लिए न्यूनतम दंड में भी वृद्धि की गई है । अत्याचारों के पीड़ितों और उनके विधिक वारिसों को न्यूनतम राहत और प्रतिकर देने के लिए भी उपबंध किए गए हैं । अधिनियम के अन्य महत्वपूर्ण लक्षणों में अनुसूचित क्षेत्रों और जनजातीय क्षेत्रों से संभाव्य अपराधियों का बहिष्करण तथा अभियुक्त की संपत्तियों की कुर्की का शामिल किया जाना है । अधिनियम अभियुक्त को अग्रिम जमानत देने का प्रतिषेध करता है और अपराधी परिवीक्षा अधिनियम, 1958 को अधिनियम पर लागू न होने योग्य बनाया गया है । अधिनियम में उपबंधित कतिपय निवारण उपायों में संभाव्य अपराधियों के आयुध अनुज्ञप्तियों का रद्दकरण और आत्मरक्षा के उपाय के रूप में अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों को आयुध अनुज्ञप्तियों का मंजूर किया जाना भी शामिल है ।

9. हमने अनुसूचित जातियों के विरुद्ध अत्याचार पर राष्ट्रीय

मानवाधिकार आयोग की रिपोर्ट[1] न्यायमूर्ति के. पुन्नैया आयोग की रिपोर्ट[2] राष्ट्रीय अनुसूचित जाति आयोग की छठी रिपोर्ट[3] और याची सं. 1 द्वारा प्रकाशित "क्रियान्वयन की प्रास्थिति और अत्याचार निवारण में संशोधन की आवश्यकता" शीर्षक पत्र की परीक्षा की । याचियों द्वारा यह दलील दी गई कि अधिनियम का क्रियान्वयन पूर्णतः अप्रभावी रहा है और यह कि दलित अब भी अधिनियम के विभिन्न उपबंधों के अननुपालन के कारण अत्याचारों से ग्रस्त हैं । राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग अपनी रिपोर्ट में यह मत व्यक्त किया कि "जघन्य अपराधों की बाबत भी कई राज्यों में पुलिस तंत्र जानबूझकर अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति (अत्याचार निवारण) अधिनियम, 1989 से बच रही है ।" रिपोर्ट में आगे मामलों के गैर-रजिस्ट्रीकरण और अधिनियम के अधीन मामलों को दर्ज करने से दलितों को हतोत्साहित करने हेतु पुलिस द्वारा अपनाए गए विभिन्न अन्य साजिशों को उजागर किया गया है । याचियों ने भी अधिनियम के सीमित उपबंधों के अधीन मामलों के गैर-रजिस्ट्रीकरण की लगातार समस्या, आरोपपत्र फाइल करने में विलंब, अभियुक्त का गिरफ्तार न किया जाना, गंभीर जोखिमग्रस्त अपराधियों को जमानत पर छोड़ा जाना और दलित अपराधियों के विरुद्ध मिथ्या और प्रति मामलों के फाइल किए जाने को भी उजागर किया है । याचियों ने पीड़ितों और उनके विधिक वारिसों को प्रतिकर के असंदाय की भी शिकायत की । याची ने यह दर्शित करने के लिए राष्ट्रीय आयोग की छठी रिपोर्ट के निष्कर्षों का भी अवलंब लिया कि अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों की विधिक सहायता तक कोई पहुंच नहीं है । विभिन्न स्तरों पर अधिनियम द्वारा अनुध्यात विभिन्न समितियां सक्रिय नहीं हैं ।

10. याचियों ने यह निवेदन किया कि अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति (अत्याचार निवारण) नियम, 1995 (जिसे इसमें इसके पश्चात् "नियम" कहा गया है) के नियम 3, 8, 9, 10, 15(1), 16 और

---

[1] अनुसूचित जातियों के विरुद्ध अत्याचार, राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग, 25 नवंबर, 2002.

[2] आंध्र प्रदेश सरकार ने आंध्र प्रदेश उच्च न्यायालय के सेवानिवृत्त न्यायाधीश श्री न्यायमूर्ति के. पुन्नैया को अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के विरुद्ध अस्पृश्यता और अत्याचारों के व्यवहार की जांच करने और अस्पृश्यता के उन्मूलन और अत्याचार के निवारण के लिए उपाय सुझाने हेतु एकल सदस्यीय जांच आयोग नियुक्त की ।

[3] राष्ट्रीय अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति आयोग रिपोर्ट 2000-2001.

17 का संबद्ध प्राधिकारियों द्वारा कठोरता से पालन किया जाना चाहिए । अत्याचार संभावित क्षेत्रों की पहचान और लिए जाने वाले उपायों का उल्लेख नियम 3 में उपबंधित है । नियम 8 चिह्नित क्षेत्रों के सर्वेक्षण करने के लिए विशेष सेल गठित करने, चिह्नित क्षेत्रों की विधि और व्यवस्था पर नोडल अधिकारियों और विशेष अधिकारियों को सूचित करने, अन्वेषण और तत्काल निरीक्षण के बारे में जांच करने, विभिन्न प्राधिकारियों की जानबूझकर उपेक्षा और रजिस्ट्रीकृत मामलों की स्थिति का पुनर्विलोकन करने को निर्दिष्ट करता है । नियम 9 और 10 नोडल अधिकारियों और विशेष अधिकारियों की नियुक्ति के संबंध में है । अधिनियम के उपबंधों के क्रियान्वयन के लिए आकस्मिकता योजना का उल्लेख नियम 15(1) में है । राज्य और जिला स्तर पर अधिनियम के उपबंधों के क्रियान्वयन का पुनर्विलोकन करने के लिए सतर्कता और मानीटरिंग समितियों के गठन का उल्लेख नियम 16 और 17 के अधीन किया गया है । अधिनियम की धारा 14 के अनुसार, अभिहित विशेष न्यायालयों और अनन्य विशेष न्यायालयों की स्थापना अधिनियम के अधीन अपराधों के शीघ्र विचारण के लिए किया जाना है ।

11. अधिनियम, 1989 में बनाया गया क्योंकि संसद् को यह पता चला कि सिविल अधिकार संरक्षण अधिनियम, 1955 के उपबंध अपर्याप्त थे और दलितों के विरुद्ध अत्याचारों के बुरे आचरण को रोका नहीं गया था । याचियों की शिकायत है कि यद्यपि अधिनियम सामाजिक बुराई से निपटने के लिए सम्यक्तः पर्याप्त है किंतु इसका क्रियान्वयन पूर्णतः अप्रभावी रहा है । मामलों की लगातार बढ़ती संख्या यह भी दर्शाती है कि अधिनियम और नियमों के उपबंधों का पालन करने में प्राधिकारियों की ओर से पूर्ण असफलता बरती गई है । राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग रिपोर्ट और अन्य रिपोर्टों का अवलंब लेते हुए याचियों ने अधिनियम और नियमों के प्रभावी क्रियान्वयन के लिए इस न्यायालय से परमादेश की ईप्सा की है ।

12. हमने अभिलेख की सामग्री की सावधानीपूर्वक परीक्षा की और हमारी यह राय है कि अधिनियम और नियमों के उपबंधों का पालन करने में संबद्ध प्राधिकारी असफल रहे हैं । ऐसा प्रसंशनीय उद्देश्य जिसके लिए अधिनियम बनाया गया था, प्राधिकारियों के उदासीन बर्ताव द्वारा विफल हो गया है । यह सही है कि भारत संघ के काउंसेल की दलील के अनुसार अधिनियम के उपबंधों के क्रियान्वयन के लिए राज्य सरकार उत्तरदायी हैं । वहीं, केंद्रीय सरकार अधिनियम के उपबंधों का पालन सुनिश्चित करने में

एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है । अधिनियम की धारा 21(4) के अनुसार संसद् के समक्ष प्रत्येक वर्ष अधिनियम के प्रभावी क्रियान्वयन के लिए केंद्रीय सरकार और राज्य सरकारों द्वारा लिए गए उपायों की रिपोर्ट प्रस्तुत करने की अपेक्षा है । इस देश के सभी नागरिकों के लिए समानता के संवैधानिक लक्ष्य को तभी प्राप्त किया जा सकता है जब अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के अधिकारों का संरक्षण किया जाए । अभिलेख की पर्याप्त सामग्री से यह साबित होता है कि संबद्ध प्राधिकारी अधिनियम के उपबंधों को प्रवृत्त न करने के दोषी हैं । अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के सदस्यों की पीड़ा लगातार बनी हुई है । हमारा यह समाधान हो गया है कि केंद्रीय सरकार और राज्य सरकारों को अधिनियम के उपबंधों का कठोरता से पालन करने के लिए निदेश दिया जाना चाहिए और हम ऐसा करते हैं । राष्ट्रीय आयोगों को भी अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के संरक्षण के लिए अपने कर्तव्यों के निर्वहन का निदेश दिया जाता है । राष्ट्रीय विधिक सेवा प्राधिकरण से जानकारी फैलाने के लिए समुचित स्कीम बनाने तथा अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के सदस्यों को निःशुल्क विधिक सहायता उपलब्ध कराने का अनुरोध किया जाता है । **सफाई कर्मचारी आंदोलन** बनाम **भारत संघ**[1] वाले मामले में इस न्यायालय के समक्ष ऐसी ही स्थिति पैदा हुई थी । उसमें याचियों ने सफाई कर्मचारी नियोजन और शुष्क शौचालय सन्निर्माण (प्रतिषेध) अधिनियम, 1993 के उपबंधों के प्रवर्तन की ईप्सा करते हुए रिट याचिका फाइल की थी । इस न्यायालय ने इस प्रकार अभिनिर्धारित किया :–

> "24. इस न्यायालय द्वारा जारी विभिन्न निदेशों के अलावा उपरोक्त निर्दिष्ट अधिनियम और नियम के विभिन्न उपबंधों के आलोक में, हम सभी राज्य सरकारों और संघ राज्य क्षेत्रों को इसे पूर्णतः क्रियान्वित करने और 2013 के अधिनियम में अंतर्विष्ट उपबंधों के गैर-क्रियान्वयन तथा अतिक्रमण के लिए समुचित कार्रवाई करने का भी निदेश देते हैं । चूंकि 2013 का अधिनियम संपूर्ण क्षेत्र पर अभिभावी होता है अतः, हमारा यह मत है कि इस न्यायालय द्वारा आगे किसी मानीटरिंग की अपेक्षा नहीं है । तथापि, हम एक बार पुनः दोहराते हैं कि सभी राज्यों और संघ राज्य क्षेत्रों को पूर्णतः लागू करने और अतिक्रमणकारियों के विरुद्ध कार्रवाई करने का कर्तव्य अधिरोपित

[1] (2014) 11 एस. सी. सी. 224.

किया गया है । अतः व्यथित व्यक्तियों को पहली नजर में ही संबद्ध प्राधिकारियों से और उसके पश्चात् अधिकारिता रखने वाले उच्च न्यायालय के समक्ष निवेदन करने की अनुज्ञा दी जाती है ।"

13. याची अपनी शिकायत, यदि कोई है, के प्रतितोष के लिए संबद्ध प्राधिकारियों और तत्पश्चात् उच्च न्यायालयों के समक्ष निवेदन करने के लिए स्वतंत्र हैं । उपरोक्त को ध्यान में रखते हुए, रिट याचिका का निपटान किया जाता है । खर्चे के संबंध में कोई आदेश नहीं दिया गया ।

रिट याचिका निपटाई गई ।

पां.

संसद् के अधिनियम

पर्यावरण संरक्षण अधिनियम, 1986

(1986 का अधिनियम संख्यांक 29)

[23 मई, 1986]

पर्यावरण के संरक्षण और सुधार का और उनसे संबंधित विषयों का उपबंध करने के लिए अधिनियम

संयुक्त राष्ट्र के मानवीय पर्यावरण सम्मेलन में जो जून, 1972 में स्टाकहोम में हुआ था और जिसमें भारत ने भाग लिया था, यह विनिश्चय किया गया था कि मानवीय पर्यावरण के संरक्षण और सुधार के लिए समुचित कदम उठाए जाएं ;

यह आवश्यक समझा गया है कि पूर्वोक्त निर्णयों को, जहां तक उनका संबंध पर्यावरण संरक्षण और सुधार से तथा मानवों, अन्य जीवित प्राणियों, पादपों और संपत्ति को होने वाले परिसंकट के निवारण से है, लागू किया जाए ;

भारत गणराज्य के सैंतीसवें वर्ष में संसद् द्वारा निम्नलिखित रूप में यह अधिनियमित हो :-

अध्याय 1

प्रारंभिक

1. संक्षिप्त नाम, विस्तार और प्रारंभ – (1) इस अधिनियम का संक्षिप्त नाम पर्यावरण (संरक्षण) अधिनियम, 1986 है ।

(2) इसका विस्तार सम्पूर्ण भारत पर है ।

(3) यह उस तारीख को प्रवृत्त होगा, जो केन्द्रीय सरकार राजपत्र में अधिसूचना द्वारा, नियत करे और इस अधिनियम के भिन्न-भिन्न उपबंधों के लिए और भिन्न-भिन्न क्षेत्रों के लिए भिन्न-भिन्न तारीखें नियत की जा सकेंगी ।

2. परिभाषाएं – इस अधिनियम में, जब तक कि संदर्भ से अन्यथा अपेक्षित न हो, –

(क) "पर्यावरण" के अंतर्गत जल, वायु और भूमि है और वह अंतर-

संबंध है जो जल, वायु और भूमि तथा मानवों, अन्य जीवित प्राणियों, पादपों और सूक्ष्मजीव और संपत्ति के बीच विद्यमान है ;

(ख) "पर्यावरण प्रदूषक" से ऐसा ठोस, द्रव या गैसीय पदार्थ अभिप्रेत है जो ऐसी सांद्रता में विद्यमान है जो पर्यावरण के लिए क्षतिकर हो सकता है या जिसका क्षतिकर होना संभाव्य है ;

(ग) "पर्यावरण प्रदूषण" से पर्यावरण में पर्यावरण प्रदूषकों का विद्यमान होना अभिप्रेत है ;

(घ) किसी पदार्थ के संबंध में, "हथालना" से ऐसे पदार्थ का विनिर्माण, प्रसंस्करण, अभिक्रियान्वयन, पैकेज, भंडारकरण, परिवहन, उपयोग, संग्रहण, विनाश, संपरिवर्तन, विक्रय के लिए प्रस्थापना, अंतरण या वैसी ही संक्रिया अभिप्रेत है ;

(ङ) "परिसंकटमय पदार्थ" से ऐसा पदार्थ या निर्मित अभिप्रेत है जो अपने रासायनिक या भौतिक-रासायनिक गुणों के या हथालने के कारण मानवों, अन्य जीवित प्राणियों, पादपों, सूक्ष्मजीव, संपत्ति या पर्यावरण को अपहानि कारित कर सकती है ;

(च) किसी कारखाने या परिसर के संबंध में "अधिष्ठाता" से कोई ऐसा व्यक्ति अभिप्रेत है जिसका कारखाने या परिसर के कामकाज पर नियंत्रण है और किसी पदार्थ के संबंध में ऐसा व्यक्ति इसके अंतर्गत है जिसके कब्जे में वह पदार्थ भी है ;

(छ) "विहित" से इस अधिनियम के अधीन बनाए गए नियमों द्वारा विहित अभिप्रेत है ।

अध्याय 2

केन्द्रीय सरकार की साधारण शक्तियां

3. केन्द्रीय सरकार की पर्यावरण के संरक्षण और सुधार के लिए, उपाय करने की शक्ति – (1) इस अधिनियम के उपबंधों के अधीन रहते हुए, केन्द्रीय सरकार को ऐसे सभी उपाय करने की शक्ति होगी जो वह पर्यावरण के संरक्षण और उसकी क्वालिटी में सुधार करने तथा पर्यावरण प्रदूषण के निवारण, नियंत्रण और उपशमन के लिए आवश्यक समझे ।

(2) विशिष्टतया और उपधारा (1) के उपबंधों की व्यापकता पर प्रतिकूल प्रभाव डाले बिना, ऐसे उपायों के अंतर्गत निम्नलिखित सभी या

किन्हीं विषयों के संबंध में उपाय हो सकेंगे, अर्थात् :–

(i) राज्य सरकारों, अधिकारियों और अन्य प्राधिकरणों की, –

(क) इस अधिनियम या इसके अधीन बनाए गए नियमों के अधीन ; या

(ख) इस अधिनियम के उद्देश्यों से संबंधित तत्समय प्रवृत्त किसी अन्य विधि के अधीन,

कार्रवाइयों का समन्वय ;

(ii) पर्यावरण प्रदूषण के निवारण, नियंत्रण और उपशमन के लिए राष्ट्रव्यापी कार्यक्रम की योजना बनाना और उसको निष्पादित करना ;

(iii) पर्यावरण के विभिन्न आयामों के संबंध में उसकी क्वालिटी के लिए मानक अधिकथित करना ;

(iv) विभिन्न स्रोतों से पर्यावरण प्रदूषकों के उत्सर्जन या निस्सारण के मानक अधिकथित करना :

परन्तु ऐसे स्रोतों से पर्यावरण प्रदूषकों के उत्सर्जन या निस्सारण की क्वालिटी या सम्मिश्रण को ध्यान में रखते हुए, भिन्न-भिन्न स्रोतों से उत्सर्जन या निस्सारण के लिए इस खंड के अधीन भिन्न-भिन्न मानक अधिकथित किए जा सकेंगे ;

(v) उन क्षेत्रों का निर्बन्धन जिनमें कोई उद्योग संक्रियाएं या प्रसंस्करण या किसी वर्ग के उद्योग, संक्रियाएं या प्रसंस्करण नहीं चलाए जाएंगे या कुछ रक्षोपायों के अधीन रहते हुए चलाए जाएंगे ;

(vi) ऐसी दुर्घटनाओं के निवारण के लिए प्रक्रिया और रक्षोपाय अधिकथित करना जिनसे पर्यावरण प्रदूषण हो सकता है और ऐसी दुर्घटनाओं के लिए उपचारी उपाय अधिकथित करना ;

(vii) परिसंकटमय पदार्थों को हथालने के लिए प्रक्रिया और रक्षोपाय अधिकथित करना ;

(viii) ऐसी विनिर्माण प्रक्रियाओं, सामग्री और पदार्थों की परीक्षा करना जिनसे पर्यावरण प्रदूषण होने की संभावना है ;

(ix) पर्यावरण प्रदूषण की समस्याओं के संबंध में अन्वेषण और

अनुसंधान करना और प्रायोजित करना ;

(x) किसी परिसर, संयंत्र, उपस्कर, मशीनरी, विनिर्माण या अन्य प्रक्रिया, सामग्री या पदार्थों का निरीक्षण करना और ऐसे प्राधिकरणों, अधिकारियों या व्यक्तियों को, आदेश द्वारा, ऐसे निदेश देना जो वह पर्यावरण प्रदूषण के निवारण, नियंत्रण और उपशमन के लिए कार्यवाही करने के लिए आवश्यक समझे ;

(xi) ऐसे कृत्यों को कार्यान्वित करने के लिए पर्यावरण प्रयोग-शालाओं और संस्थाओं की स्थापना करना या उन्हें मान्यता देना, जो इस अधिनियम के अधीन ऐसी पर्यावरण प्रयोगशालाओं और संस्थाओं को सौंपे जाएं ;

(xii) पर्यावरण प्रदूषण से संबंधित विषयों की बाबत जानकारी एकत्र करना और उसका प्रसार करना ;

(xiii) पर्यावरण प्रदूषण के निवारण, नियंत्रण और उपशमन से संबंधित निर्देशिकाएं, संहिताएं या पथप्रदर्शिकाएं तैयार करना ;

(xiv) ऐसे अन्य विषय जो केन्द्रीय सरकार इस अधिनियम के उपबंधों का प्रभावपूर्ण कार्यान्वयन सुनिश्चित करने के प्रयोजन के लिए आवश्यक या समीचीन समझे ।

(3) यदि केन्द्रीय सरकार इस अधिनियम के प्रयोजनों के लिए ऐसा करना आवश्यक या समीचीन समझती है तो वह, राजपत्र में प्रकाशित आदेश द्वारा, इस अधिनियम के अधीन केन्द्रीय सरकार की ऐसी शक्तियों और कृत्यों के (जिनके अंतर्गत धारा 5 के अधीन निदेश देने की शक्ति भी है) प्रयोग और निर्वहन के प्रयोजनों के लिए और उपधारा (2) में निर्दिष्ट ऐसे विषयों की बाबत उपाय करने के लिए जो आदेश में उल्लिखित किए जाएं, प्राधिकरण या प्राधिकरणों का ऐसे नाम या नामों से गठन कर सकेगी जो आदेश में विनिर्दिष्ट किए जाएं और केन्द्रीय सरकार के अधीक्षण और नियंत्रण तथा ऐसे आदेश के उपबंधों के अधीन रहते हुए, ऐसा प्राधिकरण या ऐसे प्राधिकरण ऐसी शक्तियों का प्रयोग या ऐसे कृत्यों का निर्वहन कर सकेंगे या ऐसे आदेश में इस प्रकार उल्लिखित उपाय ऐसे कर सकेंगे मानों ऐसा प्राधिकरण या ऐसे प्राधिकरण उन शक्तियों का प्रयोग या उन कृत्यों का निर्वहन करने या ऐसे उपाय करने के लिए इस अधिनियम द्वारा सशक्त किए गए हों ।

4. अधिकारियों की नियुक्ति तथा उनकी शक्तियां और कृत्य – (1) धारा 3 की उपधारा (3) के उपबंधों पर प्रतिकूल प्रभाव डाले बिना, केन्द्रीय सरकार, इस अधिनियम के प्रयोजनों के लिए, ऐसे पदाभिधानों सहित ऐसे अधिकारियों की नियुक्ति कर सकेगी और उन्हें इस अधिनियम के अधीन ऐसी शक्तियां और कृत्य सौंप सकेगी जो वह ठीक समझे ।

(2) उपधारा (1) के अधीन नियुक्त अधिकारी केन्द्रीय सरकार के या यदि उस सरकार द्वारा इस प्रकार निदेश दिया जाए तो, धारा 3 की उपधारा (3) के अधीन गठित प्राधिकरण या प्राधिकरणों, यदि कोई हों, के अथवा किसी अन्य प्राधिकरण या अधिकारी के भी साधारण नियंत्रण और निदेशन के अधीन होंगे ।

5. निदेश देने की शक्ति – केन्द्रीय सरकार, किसी अन्य विधि में किसी बात के होते हुए भी, किन्तु इस अधिनियम के उपबंधों के अधीन रहते हुए, इस अधिनियम के अधीन अपनी शक्तियों के प्रयोग और अपने कृत्यों के निर्वहन में किसी व्यक्ति, अधिकारी या प्राधिकरण को निदेश दे सकेगी और ऐसा व्यक्ति, अधिकारी या प्राधिकरण ऐसे निदेशों का अनुपालन करने के लिए आबद्ध होगा ।

स्पष्टीकरण – शंकाओं को दूर करने के लिए यह घोषित किया जाता है कि इस धारा के अधीन निदेश देने की शक्ति के अंतर्गत, –

(क) किसी उद्योग, संक्रिया या प्रक्रिया को बन्द करने, उसका प्रतिषेध या विनियमन करने का निदेश देने की शक्ति है ; या

(ख) विद्युत या जल या किसी अन्य सेवा के प्रदाय को रोकने या विनियमन करने का निदेश देने की शक्ति है ।

[1][**5क. राष्ट्रीय हरित अधिकरण को अपील** – कोई व्यक्ति जो, राष्ट्रीय हरित अधिकरण अधिनियम, 2010 (2010 का 19) के प्रारंभ होने पर या उसके पश्चात् धारा 5 के अधीन जारी किन्हीं निदेशों से व्यथित है, वह राष्ट्रीय हरित अधिकरण अधिनियम, 2010 की धारा 3 के अधीन स्थापित राष्ट्रीय हरित अधिकरण को, उस अधिनियम के उपबंधों के अनुसार, अपील फाइल कर सकेगा ।]

6. पर्यावरण प्रदूषण का विनियमन करने के लिए नियम – (1) इस

[1] 2010 के अधिनियम सं. 19 की धारा 36 और अनुसूची 3 द्वारा अंतःस्थापित ।

अधिनियम के उपबंधों के अधीन रहते हुए, केन्द्रीय सरकार, राजपत्र में अधिसूचना द्वारा, धारा 3 में निर्दिष्ट सभी या किन्हीं विषयों की बाबत नियम बना सकेगी ।

(2) विशिष्टतया और पूर्वगामी शक्ति की व्यापकता पर प्रतिकूल प्रभाव डाले बिना, ऐसे नियमों में निम्नलिखित सभी या किन्हीं विषयों के लिए उपबंध किया जा सकेगा, अर्थात् :–

(क) विभिन्न क्षेत्रों और प्रयोजनों के लिए वायु, जल या मृदा की क्वालिटी के मानक ;

(ख) भिन्न-भिन्न क्षेत्रों के लिए विभिन्न पर्यावरण प्रदूषकों की (जिनके अंतर्गत शोर भी है) सांद्रता की अधिकतम अनुज्ञेय सीमा ;

(ग) परिसंकटमय पदार्थों के हथालने के लिए प्रक्रिया और रक्षोपाय ;

(घ) भिन्न-भिन्न क्षेत्रों में परिसंकटमय पदार्थों के हथालने पर प्रतिषेध और निर्बन्धन ;

(ङ) भिन्न-भिन्न क्षेत्रों में प्रक्रिया और संक्रियाएं चलाने वाले उद्योगों के अवस्थान पर प्रतिषेध और निर्बन्धन ;

(च) ऐसी दुर्घटनाओं के निवारण के लिए जिससे पर्यावरण प्रदूषण हो सकता है और ऐसी दुर्घटनाओं के लिए उपचार उपायों का उपबंध करने के लिए प्रक्रिया और रक्षोपाय ।

अध्याय 3

पर्यावरण प्रदूषण का निवारण, नियंत्रण और उपशमन

7. उद्योग चलाने, संक्रिया, आदि करने वाले व्यक्तियों द्वारा मानकों से अधिक पर्यावरण प्रदूषकों का उत्सर्जन या निस्सारण न होने देना – कोई ऐसा व्यक्ति जो कोई उद्योग चलाता है या कोई संक्रिया या प्रक्रिया करता है, ऐसे मानकों से अधिक जो विहित किए जाएं किसी पर्यावरण प्रदूषक का निस्सारण या उत्सर्जन नहीं करेगा अथवा निस्सारण या उत्सर्जन करने की अनुज्ञा नहीं देगा ।

8. परिसंकटमय पदार्थों को हथालने वाले व्यक्तियों द्वारा प्रक्रिया संबंधी रक्षोपायों का पालन किया जाना – कोई व्यक्ति किसी परिसंकटमय पदार्थ को ऐसी प्रक्रिया के अनुसार और ऐसे रक्षोपायों का अनुपालन करने

के पश्चात् ही, जो विहित किए जाएं, हथालेगा या हथालने देगा, अन्यथा नहीं ।

9. कुछ मामलों में प्राधिकरणों और अभिकरणों को जानकारी का दिया जाना – (1) जहां किसी दुर्घटना या अन्य अप्रत्याशित कार्य या घटना के कारण किसी पर्यावरण प्रदूषक का निस्सारण विहित मानकों से अधिक होता है या होने की आशंका है वहां ऐसे निस्सारण के लिए उत्तरदायी व्यक्ति और उस स्थान का, जहां ऐसा निस्सारण होता है या होने की आशंका है, भारसाधक व्यक्ति, ऐसे निस्सारण के परिणामस्वरूप हुए पर्यावरण प्रदूषण का निवारण करने या उसे कम करने के लिए आबद्ध होगा, और ऐसे प्राधिकरणों को या अभिकरणों को जो विहित किए जाएं, –

(क) ऐसी घटना के तथ्य की या ऐसी घटना होने की आशंका की जानकारी तुरन्त देगा ; और

(ख) यदि अपेक्षा की जाए तो, सभी सहायता देने के लिए आबद्ध होगा ।

(2) उपधारा (1) में निर्दिष्ट प्रकार की किसी घटना के तथ्य की या उसकी आशंका के संबंध में सूचना की प्राप्ति पर चाहे ऐसी सूचना उस उपधारा के अधीन जानकारी द्वारा मिले या अन्यथा, उपधारा (1) में निर्दिष्ट प्राधिकरण या अभिकरण, यावत्साध्य शीघ्र, ऐसे उपचारी उपाय कराएंगे जो पर्यावरण प्रदूषण का निवारण करने या उसे कम करने के लिए आवश्यक हैं ।

(3) उपधारा (2) में निर्दिष्ट उपचारी उपाय करने के संबंध में किसी प्राधिकरण या अभिकरण द्वारा उपगत व्यय, यदि कोई हों, उस तारीख से जब व्ययों के लिए मांग की जाती है उस तारीख तक के लिए जब उनका संदाय कर दिया जाता है ब्याज सहित (ऐसी उचित दर पर जो सरकार आदेश द्वारा, नियत करे) ऐसे प्राधिकरण या अभिकरण द्वारा संबंधित व्यक्ति से भू-राजस्व की बकाया या लोक मांग के रूप में वसूल किए जा सकेंगे ।

10. प्रवेश और निरीक्षण की शक्तियां – (1) इस धारा के उपबंधों के अधीन रहते हुए, केन्द्रीय सरकार द्वारा इस निमित्त सशक्त किसी व्यक्ति को यह अधिकार होगा कि वह सभी युक्तियुक्त समयों पर ऐसी सहायता के साथ जो वह आवश्यक समझे किसी स्थान में निम्नलिखित प्रयोजन के लिए प्रवेश करे, अर्थात् :–

(क) उसे सौंपे गए केन्द्रीय सरकार के कृत्यों में से किसी का पालन करना ;

(ख) यह अवधारित करने के प्रयोजन के लिए कि क्या ऐसे किन्हीं कृत्यों का पालन किया जाना है और यदि हां तो किस रीति से किया जाना है या क्या इस अधिनियम या इसके अधीन बनाए गए नियमों के किन्हीं उपबंधों का या इस अधिनियम के अधीन तामील की गई सूचना, निकाले गए आदेश, दिए गए निर्देश या अनुदत्त प्राधिकार का पालन किया जा रहा है या किया गया है ;

(ग) किसी उपस्कर, औद्योगिक संयंत्र, अभिलेख, रजिस्टर, दस्तावेज या किसी अन्य सारवान् पदार्थ की जांच या परीक्षा करने के प्रयोजन के लिए अथवा किसी ऐसे भवन की तलाशी लेने के लिए, जिसके संबंध में उसके पास यह विश्वास करने का कारण है कि उसके भीतर इस अधिनियम या इसके अधीन बनाए गए नियमों के अधीन कोई अपराध किया गया है या किया जा रहा है या किया जाने वाला है और ऐसे किसी उपस्कर, औद्योगिक संयंत्र, अभिलेख, रजिस्टर, दस्तावेज या अन्य सारवान् पदार्थ का उस दशा में अभिग्रहण करने के लिए, जब उसके पास यह विश्वास करने का कारण है कि उससे इस अधिनियम या इसके अधीन बनाए गए नियमों के अधीन दंडनीय किसी अपराध के लिए किए जाने का साक्ष्य दिया जा सकेगा अथवा ऐसा अभिग्रहण पर्यावरण प्रदूषण का निवारण करने या उसे कम करने के लिए आवश्यक है ।

(2) प्रत्येक व्यक्ति जो कोई उद्योग चलाता है, कोई संक्रिया या प्रक्रिया करता है, या कोई परिसंकटमय पदार्थ हथालता है, ऐसे व्यक्ति को सभी सहायता देने के लिए आबद्ध होगा, जिसे उपधारा (1) के अधीन केन्द्रीय सरकार ने उस उपधारा के अधीन कृत्यों को करने के लिए सशक्त किया है और यदि वह किसी युक्तियुक्त कारण या प्रतिहेतु के बिना ऐसा करने में असफल रहेगा तो वह इस अधिनियम के अधीन अपराध का दोषी होगा ।

(3) यदि कोई व्यक्ति उपधारा (1) के अधीन केन्द्रीय सरकार द्वारा सशक्त किसी व्यक्ति को, उसके कृत्यों के निर्वहन में जानबूझकर विलम्ब करेगा या बाधा पहुंचाएगा तो वह इस अधिनियम के अधीन अपराध का दोषी होगा ।

(4) दण्ड प्रक्रिया संहिता, 1973 (1974 का 2) के उपबन्ध या जम्मू-कश्मीर राज्य या किसी ऐसे क्षेत्र में जिसमें वह संहिता प्रवृत्त नहीं है, उस राज्य या क्षेत्र में प्रवृत्त किसी तत्स्थानी विधि के उपबन्ध, जहां तक हो सके, इस धारा के अधीन किसी तलाशी या अभिग्रहण को वैसे ही लागू होंगे जैसे वे, यथास्थिति, उक्त संहिता की धारा 94 के अधीन या उक्त विधि के तत्स्थानी उपबन्ध के अधीन जारी किए गए वारण्ट के प्राधिकार के अधीन की गई किसी तलाशी या अभिग्रहण को लागू होते हैं ।

11. नमूने लेने की शक्ति और उसके संबंध में अनुसरण की जाने वाली प्रक्रिया – (1) केन्द्रीय सरकार या उसके द्वारा इस निमित्त सशक्त किसी अधिकारी को विश्लेषण के प्रयोजन के लिए किसी कारखाने, परिसर या अन्य स्थान से वायु, जल, मृदा या अन्य पदार्थ के नमूने ऐसी रीति से लेने की शक्ति होगी, जो विहित की जाए ।

(2) उपधारा (1) के अधीन लिए गए किसी नमूने के किसी विश्लेषण का परिणाम किसी विधिक कार्यवाही में साक्ष्य में तब तक ग्राह्य नहीं होगा जब तक उपधारा (3) और उपधारा (4) के उपबंधों का अनुपालन नहीं किया जाता है ।

(3) उपधारा (4) के उपबन्धों के अधीन रहते हुए, उपधारा (1) के अधीन नमूना लेने वाला व्यक्ति –

(क) इस प्रकार विश्लेषण कराने के अपने आशय की सूचना की ऐसे प्ररूप में जो विहित किया जाए, अधिष्ठाता या उसके अभिकर्ता या उस स्थान के भारसाधक व्यक्ति पर तुरन्त तामील करेगा ;

(ख) अधिष्ठाता या उसके अभिकर्ता या व्यक्ति की उपस्थिति में विश्लेषण के लिए नमूना लेगा ;

(ग) नमूने को आधान या आधानों में रखवाएगा जिसे चिन्हित और सील बन्द किया जाएगा और उस पर नमूना लेने वाला व्यक्ति और अधिष्ठाता या उसका अभिकर्ता या व्यक्ति दोनों हस्ताक्षर करेंगे ;

(घ) आधान या आधानों को धारा 12 के अधीन केन्द्रीय सरकार द्वारा स्थापित या मान्यताप्राप्त प्रयोगशाला को अविलम्ब भेजेगा ।

(4) जब उपधारा (1) के अधीन विश्लेषण के लिए कोई नमूना लिया जाता है और नमूना लेने वाला व्यक्ति अधिष्ठाता या उसके अभिकर्ता या

व्यक्ति पर उपधारा (3) के खंड (क) के अधीन सूचना की तामील करता है तब –

(क) ऐसे मामले में जहां अधिष्ठाता उसका अभिकर्ता या व्यक्ति जानबूझकर अनुपस्थित रहता है वहां नमूना लेने वाला व्यक्ति विश्लेषण के लिए नमूना आधान या आधानों में रखवाने के लिए लेगा, जिसे चिन्हित और सील बन्द किया जाएगा और नमूना लेने वाला व्यक्ति भी उस पर हस्ताक्षर करेगा ; और

(ख) ऐसे मामले में जहां नमूना लिए जाने के समय अधिष्ठाता या उसका अभिकर्ता या व्यक्ति उपस्थित रहता है, किन्तु उपधारा (3) के खंड (ग) के अधीन अपेक्षित रूप में नमूने के चिन्हित और सील बन्द आधान या आधानों पर हस्ताक्षर करने से इनकार करता है वहां चिन्हित और सील बन्द आधान या आधानों पर नमूना लेने वाला व्यक्ति हस्ताक्षर करेगा,

और नमूना लेने वाला व्यक्ति आधान और आधानों को धारा 12 के अधीन स्थापित या मान्यताप्राप्त प्रयोगशाला को विश्लेषण के लिए अविलम्ब भेजेगा और ऐसा व्यक्ति धारा 13 के अधीन नियुक्त या मान्यताप्राप्त सरकारी विश्लेषक को अधिष्ठाता या उसके अभिकर्ता या व्यक्ति के, यथास्थिति, जानबूझकर अनुपस्थित रहने अथवा आधान या आधानों पर हस्ताक्षर करने से उसके इनकार करने के बारे में लिखित जानकारी देगा ।

12. पर्यावरण प्रयोगशालाएं – (1) केन्द्रीय सरकार, राजपत्र में अधिसूचना द्वारा, –

(क) एक या अधिक पर्यावरण प्रयोगशालाएं स्थापित कर सकेगी ;

(ख) इस अधिनियम के अधीन किसी पर्यावरण प्रयोगशाला को सौंपे गए कृत्य करने के लिए एक या अधिक प्रयोगशालाओं या संस्थाओं को पर्यावरण प्रयोगशालाओं के रूप में मान्यता दे सकेगी ।

(2) केन्द्रीय सरकार, राजपत्र में अधिसूचना द्वारा, निम्नलिखित को विनिर्दिष्ट करने के लिए नियम बना सकेगी, अर्थात् :–

(क) पर्यावरण प्रयोगशाला के कृत्य ;

(ख) विश्लेषण या परीक्षण के लिए वायु, जल, मृदा या अन्य पदार्थ के नमूने उक्त प्रयोगशाला को भेजने के लिए प्रक्रिया, उस पर

प्रयोगशाला की रिपोर्ट का प्ररूप और ऐसी रिपोर्ट के लिए संदेय फीस ;

(ग) ऐसे अन्य विषय जो उस प्रयोगशाला को अपने कृत्य करने के लिए समर्थ बनाने के लिए आवश्यक या समीचीन हैं ।

13. सरकारी विश्लेषक – केन्द्रीय सरकार, राजपत्र में अधिसूचना द्वारा, ऐसे व्यक्तियों को, जिन्हें वह ठीक समझे और जिनके पास विहित अर्हताएं हैं, धारा 12 की उपधारा (1) के अधीन स्थापित या मान्यताप्राप्त किसी पर्यावरण प्रयोगशाला को विश्लेषण के लिए भेजे गए वायु, जल, मृदा या अन्य पदार्थ के नमूनों के विश्लेषण के प्रयोजन के लिए सरकारी विश्लेषक नियुक्त कर सकेगी या मान्यता दे सकेगी ।

14. सरकारी विश्लेषकों की रिपोर्टें – किसी ऐसी दस्तावेज का, जिसका किसी सरकारी विश्लेषक द्वारा हस्ताक्षरित रिपोर्ट होना तात्पर्यित हैं, इस अधिनियम के अधीन किसी कार्यवाही में उसमें कथित तथ्यों के साक्ष्य के रूप में उपयोग किया जा सकेगा ।

15. अधिनियमों तथा नियमों, आदेशों और निदेशों के उपबंधों के उल्लंघन के लिए शास्ति – (1) जो कोई इस अधिनियमों के उपबन्धों या इसके अधीन बनाए गए नियमों या निकाले गए आदेशों या दिए गए निदेशों में से किसी का पालन करने में असफल रहेगा या उल्लंघन करेगा वह ऐसी प्रत्येक असफलता या उल्लंघन के संबंध में कारावास से, जिसकी अवधि पांच वर्ष तक की हो सकेगी, या जुर्माने से, जो एक लाख रुपए तक का हो सकेगा, या दोनों से, और यदि ऐसी असफलता या उल्लंघन चालू रहता है तो अतिरिक्त जुर्माने से, जो ऐसी प्रथम असफलता या उल्लंघन के लिए दोषसिद्धि के पश्चात् ऐसे प्रत्येक दिन के लिए जिसके दौरान असफलता या उल्लंघन चालू रहता है, पांच हजार रुपए तक का हो सकेगा, दण्डनीय होगा ।

(2) यदि उपधारा (1) में निर्दिष्ट असफलता या उल्लंघन दोषसिद्धि की तारीख के पश्चात् एक वर्ष की अवधि से आगे भी चालू रहता है तो अपराधी, कारावास से, जिसकी अवधि सात वर्ष तक की हो सकेगी, दण्डनीय होगा ।

16. कंपनियों द्वारा अपराध – (1) जहां इस अधिनियम के अधीन कोई अपराध किसी कंपनी द्वारा किया गया है वहां प्रत्येक व्यक्ति जो उस अपराध के किए जाने के समय उस कंपनी के कारबार के संचालन के

लिए उस कंपनी का सीधे भारसाधक और उसके प्रति उत्तरदायी था और साथ ही वह कंपनी भी, ऐसे अपराध के दोषी समझे जाएंगे और तद्नुसार अपने विरुद्ध कार्यवाही किए जाने और दंडित किए जाने के भागी होंगे :

परन्तु इस उपधारा की कोई बात किसी ऐसे व्यक्ति को इस अधिनियम के अधीन उपबंधित किसी दण्ड का भागी नहीं बनाएगी, यदि वह यह साबित कर देता है कि अपराध उसकी जानकारी के बिना किया गया था या उसने ऐसे अपराध के किए जाने का निवारण करने के लिए सब सम्यक् तत्परता बरती थी ।

(2) उपधारा (1) में किसी बात के होते हुए भी, जहां इस अधिनियम के अधीन कोई अपराध किसी कंपनी द्वारा किया गया है और यह साबित हो जाता है कि वह अपराध कंपनी के किसी निदेशक, प्रबंधक, सचिव या अन्य अधिकारी की सहमति या मौनानुकूलता से किया गया है या उस अपराध का किया जाना उसकी किसी उपेक्षा के कारण माना जा सकता है वहां ऐसा निदेशक, प्रबंधक, सचिव या अन्य अधिकारी भी उस अपराध का दोषी समझा जाएगा और तद्नुसार अपने विरुद्ध कार्यवाही किए जाने और दंडित किए जाने का भागी होगा ।

स्पष्टीकरण – इस धारा के प्रयोजनों के लिए, –

(क) "कंपनी" से कोई निगमित निकाय अभिप्रेत है और इसके अन्तर्गत फर्म या व्यष्टियों का अन्य संगम है ; तथा

(ख) फर्म के संबंध में, "निदेशक" से उस फर्म का भागीदार अभिप्रेत है ।

17. सरकारी विभागों द्वारा अपराध – (1) जहां इस अधिनियम के अधीन कोई अपराध सरकार के किसी विभाग द्वारा किया गया है वहां विभागाध्यक्ष उस अपराध का दोषी समझा जाएगा और तद्नुसार अपने विरुद्ध कार्यवाही किए जाने और दंडित किए जाने का भागी होगा :

परन्तु इस धारा की कोई बात किसी विभागाध्यक्ष को दण्ड का भागी नहीं बनाएगी, यदि वह यह साबित कर देता है कि अपराध उसकी जानकारी के बिना किया गया था या उसने ऐसे अपराध के किए जाने का निवारण करने के लिए सब सम्यक् तत्परता बरती थी ।

(2) उपधारा (1) में किसी बात के होते हुए भी, जहां इस अधिनियम

के अधीन कोई अपराध किसी विभागाध्यक्ष द्वारा किया गया है और यह साबित हो जाता है कि वह अपराध विभागाध्यक्ष से भिन्न किसी अधिकारी की सहमति या मौनानुकूलता से किया गया है या उस अपराध का किया जाना उसकी किसी उपेक्षा के कारण माना जा सकता है वहां ऐसा अधिकारी भी उस अपराध का दोषी समझा जाएगा और तद्नुसार अपने विरुद्ध कार्यवाही किए जाने और दंडित किए जाने का भागी होगा ।

अध्याय 4
प्रकीर्ण

18. सद्भावपूर्वक की गई कार्रवाई के लिए संरक्षण – इस अधिनियम या इसके अधीन बनाए गए नियमों या निकाले गए आदेशों या दिए गए निदेशों के अनुसरण में सद्भावपूर्वक की गई या की जाने के लिए आशयित किसी बात के लिए कोई वाद, अभियोजन या अन्य विधिक कार्यवाही सरकार या सरकार के किसी अधिकारी या अन्य कर्मचारी अथवा इस अधिनियम के अधीन गठित किसी प्राधिकरण या ऐसे प्राधिकरण के किसी सदस्य, अधिकारी या अन्य कर्मचारी के विरुद्ध नहीं होगी ।

19. अपराधों का संज्ञान – कोई न्यायालय इस अधिनियम के अधीन किसी अपराध का संज्ञान निम्नलिखित द्वारा किए गए परिवाद पर ही करेगा अन्यथा नहीं, अर्थात् :–

(क) केन्द्रीय सरकार या उस सरकार द्वारा इस निमित्त प्राधिकृत कोई प्राधिकरण या अधिकारी ; या

(ख) कोई ऐसा व्यक्ति जिसने अभिकथित अपराध की और परिवाद करने के अपने आशय की, विहित रीति से, कम से कम साठ दिन की सूचना केन्द्रीय सरकार या पूर्वोक्त रूप में प्राधिकृत प्राधिकरण या अधिकारी को दे दी है ।

20. जानकारी, रिपोर्टें या विवरणियां – केन्द्रीय सरकार इस अधिनियम के अधीन अपने कृत्यों के संबंध में समय-समय पर किसी व्यक्ति, अधिकारी, राज्य सरकार या अन्य प्राधिकरण से अपने को या किसी विहित प्राधिकरण या अधिकारी से रिपोर्टें, विवरणियां, आंकड़े, लेखे और अन्य जानकारी देने की अपेक्षा कर सकेगी और ऐसा व्यक्ति, अधिकारी, राज्य सरकार या अन्य प्राधिकरण ऐसा करने के लिए आबद्ध होगा ।

21. धारा 3 के अधीन गठित प्राधिकरण के सदस्यों, अधिकारियों

और कर्मचारियों का लोक सेवक होना – धारा 3 के अधीन गठित प्राधिकरण के, यदि कोई हो ; सभी सदस्य और ऐसे प्राधिकरण के सभी अधिकारी और अन्य कर्मचारी जब वे इस अधिनियम के किसी उपबन्ध या इसके अधीन बनाए गए किसी नियम या निकाले गए किसी आदेश या दिए गए निदेश के अनुसरण में कार्य कर रहे हों या जब उसका ऐसा कार्य करना तात्पर्यित हो, भारतीय दण्ड संहिता (1860 का 45) की धारा 21 के अर्थ में लोक सेवक समझे जाएंगे ।

22. अधिकारिता का वर्जन – किसी सिविल न्यायालय को केन्द्रीय सरकार या किसी अन्य प्राधिकरण या अधिकारी द्वारा इस अधिनियम द्वारा प्रदत्त किसी शक्ति के अनुसरण में या इसके अधीन कृत्यों के संबंध में की गई किसी बात, कार्रवाई या निकाले गए आदेश या दिए गए निदेश के संबंध में कोई वाद या कार्यवाही ग्रहण करने की अधिकारिता नहीं होगी ।

23. प्रत्यायोजन करने की शक्ति – धारा 3 की उपधारा (3) के उपबन्धों पर प्रतिकूल प्रभाव डाले बिना, केन्द्रीय सरकार, राजपत्र में अधिसूचना द्वारा, ऐसी शर्तों और निर्बन्धनों के अधीन रहते हुए ; जो अधिसूचना में विनिर्दिष्ट किए जाएं, इस अधिनियम के अधीन अपनी ऐसी शक्तियों और कृत्यों को [उस शक्ति को छोड़कर जो धारा 3 की उपधारा (3) के अधीन किसी प्राधिकरण का गठन करने और धारा 25 के अधीन नियम बनाने के लिए है], जो वह आवश्यक या समीचीन समझे, किसी अधिकारी, राज्य सरकार या प्राधिकरण को प्रत्यायोजित कर सकेगी ।

24. अन्य विधियों का प्रभाव – (1) उपधारा (2) के उपबन्धों के अधीन रहते हुए, इस अधिनियम और इसके अधीन बनाए गए नियमों या निकाले गए आदेशों के उपबन्ध, इस अधिनियम से भिन्न किसी अधिनियमिति में उससे असंगत किसी बात के होते हुए भी, प्रभावी होंगे ।

(2) जहां किसी कार्य या लोप से कोई ऐसा अपराध गठित होता है जो इस अधिनियम के अधीन और किसी अन्य अधिनियम के अधीन भी दण्डनीय है वहां ऐसे अपराध का दोषी पाया गया अपराधी अन्य अधिनियम के अधीन, न कि इस अधिनियम के अधीन, दण्डित किए जाने का भागी होगा ।

25. नियम बनाने की शक्ति – (1) केन्द्रीय सरकार, इस अधिनियम के प्रयोजनों को कार्यान्वित करने के लिए नियम, राजपत्र में अधिसूचना द्वारा, बना सकेगी ।

(2) विशिष्टतया और पूर्वगामी शक्ति की व्यापकता पर प्रतिकूल प्रभाव डाले बिना, ऐसे नियमों में निम्नलिखित सभी या किन्हीं विषयों के लिए उपबन्ध किया जा सकेगा, अर्थात् :–

(क) वे मानक जिनसे अधिक पर्यावरण प्रदूषकों का धारा 7 के अधीन निस्सारण या उत्सर्जन नहीं किया जाएगा ;

(ख) वह प्रक्रिया जिसके अनुसार और वे रक्षोपाय जिनके अनुपालन में परिसंकटमय पदार्थों को धारा 8 के अधीन हथाला जाएगा या हथलवाया जाएगा ;

(ग) वे प्राधिकरण या अभिकरण जिनको विहित मानकों से अधिक पर्यावरण प्रदूषकों के निस्सारण होने की या उसके होने की आशंका के तथ्य की सूचना दी जाएगी और जिनको धारा 9 की उपधारा (1) के अधीन सभी सहायता दिया जाना आबद्धकर होगा ।

(घ) वह रीति जिससे विश्लेषण के प्रयोजनों के लिए वायु, जल, मृदा या अन्य पदार्थों के नमूने धारा 11 की उपधारा (1) के अधीन लिए जाएंगे ;

(ङ) वह प्ररूप जिसमें किसी नमूने का विश्लेषण कराने के आशय की सूचना धारा 11 की उपधारा (3) के खण्ड (क) के अधीन दी जाएगी ;

(च) पर्यावरण प्रयोगशालाओं के कृत्य ; विश्लेषण या परीक्षण के लिए वायु, जल, मृदा और अन्य पदार्थों के नमूने ऐसी प्रयोगशालाओं को भेजने के लिए प्रक्रिया ; प्रयोगशाला रिपोर्ट का प्ररूप ; ऐसी रिपोर्ट के लिए संदेय फीस और धारा 12 की उपधारा (2) के अधीन अपने कृत्य करने के लिए प्रयोगशालाओं को समर्थ बनाने के लिए अन्य विषय ;

(छ) धारा 13 के अधीन वायु, जल, मृदा या, अन्य पदार्थों के नमूनों के विश्लेषण के प्रयोजन के लिए नियुक्त या मान्यताप्राप्त सरकारी विश्लेषक की अर्हताएं ;

(ज) वह रीति जिससे अपराध की और केन्द्रीय सरकार को परिवाद करने के आशय की सूचना धारा 19 के खण्ड (ख) के अधीन दी जाएगी ;

(झ) वह प्राधिकरण या अधिकारी जिसको रिपोर्टें, विवरणियां, आंकड़े, लेखे और अन्य जानकारी धारा 20 के अधीन दी जाएगी ;

(ञ) कोई अन्य विषय जो विहित किया जाना अपेक्षित है या किया जाए ।

26. इस अधिनियम के अधीन बनाए गए नियमों का संसद् के समक्ष रखा जाना – इस अधिनियम के अधीन बनाया गया प्रत्येक नियम, बनाए जाने के पश्चात् यथाशीघ्र, संसद् के प्रत्येक सदन के समक्ष, जब वह सत्र में हो, कुल तीस दिन की अवधि के लिए रखा जाएगा । यह अवधि एक सत्र में अथवा दो या अधिक आनुक्रमिक सत्रों में पूरी हो सकेगी । यदि उस सत्र के या पूर्वोक्त आनुक्रमिक सत्रों के ठीक बाद के सत्र के अवसान के पूर्व दोनों सदन उस नियम में कोई परिवर्तन करने के लिए सहमत हो जाएं तो तत्पश्चात् वह ऐसे परिवर्तित रूप में ही प्रभावी होगा । यदि उक्त अवसान के पूर्व दोनों सदन सहमत हो जाएं कि वह नियम नहीं बनाया जाना चाहिए तो तत्पश्चात् वह निष्प्रभाव हो जाएगा । किन्तु नियम के ऐसे परिवर्तित या निष्प्रभाव होने से उसके अधीन पहले की गई किसी बात की विधिमान्यता पर प्रतिकूल प्रभाव नहीं पड़ेगा ।

कार्यालय आदेश तारीख 13 फरवरी, 2017 के अनुसार विधि साहित्य प्रकाशन द्वारा प्रकाशित पाठ्य पुस्तकों पर छूट देने की सूची

क्रम सं.	पुस्तक का नाम, लेखक का नाम व प्रकाशन वर्ष (संस्करण)	पुस्तक की मुद्रित कीमत (रुपयों में)	7 वर्ष से पुराने संस्करण पर 35% छूट के पश्चात् कीमत (रुपयों में)	8 से 15 वर्ष पुराने संस्करण पर 50% छूट के पश्चात् कीमत (रुपयों में)	15 वर्ष से अधिक पुराने संस्करण पर 75% छूट के पश्चात् कीमत (रुपयों में)
1.	भारत का विधिक इतिहास - श्री सुरेन्द्र मधुकर - 1989	30	—	—	8
2.	माल विक्रय और परक्राम्य लिखत विधि - डा. एन. वी. परांजपे - 1990	40	—	—	10
3.	वाणिज्य विधि - डा. आर. एल. भट्ट - 1993	108	—	—	27
4.	अपकृत्य विधि के सिद्धांत - श्री शर्मन लाल अग्रवाल - 1993	40	—	—	10
5.	अन्तर्राष्ट्रीय विधि के प्रमुख निर्णय - डा. एस. सी. खरे - 1996	115	—	—	29
6.	श्रम विधि - श्री गोपी कृष्ण अरोड़ा - 1996	452	—	—	113
7.	संविदा विधि - डा. रामगोपाल चतुर्वेदी - 1998	275	—	—	69
8.	चिकित्सा न्यायशास्त्र और विष विज्ञान - डा. सी. के. पारिख - 1999	293	—	—	74
9.	आधुनिक पारिवारिक विधि - श्री राम शरण माथुर - 2000	429	—	—	108
10.	भारतीय स्वातंत्र्य संग्राम (कालजयी निर्णय) - विधि साहित्य प्रकाशन - 2000	225	—	—	57
11.	हिन्दू विधि - डा. रवीन्द्र नाथ - 2001	425	—	—	106
12.	भारतीय भागीदारी अधिनियम - श्री माधव प्रसाद - 2001	165	—	—	41
13.	प्रशासनिक विधि - डा. कैलाश चन्द्र जोशी - 2001	200	—	—	50
14.	भारतीय दंड संहिता - डा. रवीन्द्र नाथ - 2002	741	—	—	185
15.	विधिक उपचार - डा. एस. के. कपूर - 2002	311	—	—	78
16.	विधि शास्त्र - डा. शिवदत्त शर्मा - 2005	580	—	290	—
17.	मानव अधिकार - डा. शिवदत्त शर्मा - 2006	120	—	60	—

विधि साहित्य प्रकाशन
(विधायी विभाग)
विधि और न्याय मंत्रालय
भारत सरकार
भारतीय विधि संस्थान भवन,
भगवान दास मार्ग, नई दिल्ली-110001

सादर

विधि साहित्य प्रकाशन द्वारा तीन मासिक निर्णय पत्रिकाओं – उच्चतम न्यायालय निर्णय पत्रिका, उच्च न्यायालय सिविल निर्णय पत्रिका और उच्च न्यायालय दांडिक निर्णय पत्रिका का प्रकाशन किया जाता है । उच्चतम न्यायालय निर्णय पत्रिका में उच्चतम न्यायालय के चयनित निर्णयों को और उच्च न्यायालय सिविल निर्णय पत्रिका तथा उच्च न्यायालय दांडिक निर्णय पत्रिकाओं में देश के विभिन्न उच्च न्यायालयों के क्रमशः चयनित सिविल और दांडिक निर्णयों को हिन्दी में प्रकाशित किया जाता है । इन पत्रिकाओं को और अधिक आकर्षक बनाने के लिए इनमें जनवरी, 2010 के अंक से महत्वपूर्ण केन्द्रीय अधिनियमों का प्राधिकृत हिन्दी पाठ पाठकों की सुविधा के लिए शृंखलाबद्ध रूप से प्रकाशित किया जा रहा है । तीनों निर्णय पत्रिकाओं की वार्षिक कीमत केवल ₹ 495/- है । उच्चतम न्यायालय निर्णय पत्रिका की वार्षिक कीमत ₹ 225/- है, उच्च न्यायालय सिविल निर्णय पत्रिका की वार्षिक कीमत ₹ 135/- है और उच्च न्यायालय दांडिक निर्णय पत्रिका की वार्षिक कीमत ₹ 135/- है । तीनों मासिक निर्णय पत्रिकाओं के नियमित ग्राहक बनकर हिन्दी के प्रचार-प्रसार के इस महान यज्ञ के भागी बन कर अनुगृहीत करें ।

विधि साहित्य प्रकाशन

(विधायी विभाग)

विधि और न्याय मंत्रालय

भारत सरकार

भारतीय विधि संस्थान भवन,

भगवान दास मार्ग, नई दिल्ली-110001

दूरभाष : 011-23387589, 23385259, 23382105